राजभाषा पत्रिका

सोयवृतिका

2026–अंक 7

कृषि उत्पाद व मूल्य संवर्धन विशेषांक II

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान

खंडवा रोड, इंदौर-452001 (मध्य प्रदेश)

ISO 9001:2015

Website : icar-nsri.res.in

संरक्षक
डॉ. कुंवर हरेन्द्र सिंह
निदेशक

प्रधान सम्पादक
डॉ. पुनम कुचलान
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी (राजभाषा)

उप सम्पादक
डॉ. मृणाल कुचलान
वरिष्ठ वैज्ञानिक (बीज प्रौद्योगिकी)

डॉ. बी.यू. दुपारे
प्रधान वैज्ञानिक (कृषि विस्तार)

श्री आई.आर. खान
राजभाषा सचिव

पूर्णिमा लांडे
युवा पेशेवर

प्रकाशक
डॉ. कुंवर हरेन्द्र सिंह, निदेशक
भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान
खण्डवा रोड़, इन्दौर - 452001 दूरभाष: 0731-2476188
ईमेल: dsrdirector@gmail.com

सही उद्धरण :
कुचलान पुनम, कुचलान मृणाल, दुपारे बी.यू., खान आई.आर. एवं लांडे पूर्णिमा (2026).
राजभाषा पत्रिका सोयवृतिका, अंक 7, प्रकाशन : भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर
आई एस बी एन : 978-93-5779-772-6, पृष्ठ : 111

अस्वीकरण

राजभाषा पत्रिका सोयवृतिका : अर्धवार्षिकांक 2026 अंक 7 में प्रकाशित
समस्त रचना एवं लेख रचनाकार की स्वयं की अभिव्यक्ति है।
अतः लेखकगण लेख हेतु स्वयं उत्तरदायी होंगे।

मुद्रक : यश स्टेशनर्स एण्ड प्रिंटर्स, 12, कुँअर मंडली, खजूरी बाजर, इन्दौर (मो : 9977877073)

राजभाषा पत्रिका

सोयवृतिका

2026–अंक 7

कृषि उत्पाद व मूल्य संवर्धन
विशेषांक II

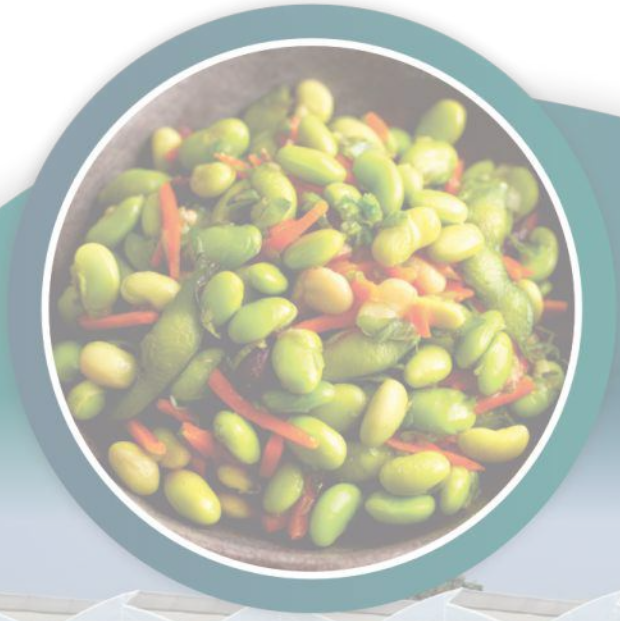

भा.कृ.अनु.प. ICAR

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान

खंडवा रोड, इंदौर-452001 (मध्य प्रदेश)

ISO 9001:2015

Website : icar-nsri.res.in

भाकृअनुप
ICAR

निदेशक की कलम से...

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, सोयाबीन की उन्नत कृषि प्रणाली, वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी नवाचारों के प्रति सदैव संकल्पित रहा है। 'पीला सोना' के रूप में विख्यात सोयाबीन ने देश के लाखों लघु एवं सीमांत कृषकों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान में एक मील के पत्थर की भूमिका निभाई है।संस्थान की उत्कृष्ट शोध नीतियों का ही परिणाम है कि वर्ष 1970-71 में मात्र 30 हजार हेक्टेयर से शुरू हुई यह फसल आज देश के कृषि मानचित्र पर एक विशाल स्वरूप धारण कर चुकी है। आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2024-25 के दौरान सोयाबीन का रकबा 129.52 लाख हेक्टेयर रहा, जिससे1179 किग्रा/हेक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ कुल 152.68 लाख टन का रिकॉर्ड उत्पादन प्राप्त हुआ है। यह उपलब्धि हमारे वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम और किसानों की प्रगतिशील सोच को दर्शाती है।

हमारा संस्थान न केवल अनुसंधान तक सीमित है, बल्कि तकनीकी ज्ञान को जन-भाषा हिंदी में किसानों तक पहुँचाने के लिए भी प्रतिबद्ध है। किसान मेलों, संगोष्ठियों, बीज दिवस और संस्थान के डिजिटल प्लेटफॉर्म (यूट्यूब फेसबुक, ट्विट्टर व इन्स्टाग्राम) के माध्यम से हम जटिल वैज्ञानिक पद्धतियों को सरल वीडियो और संवादात्मक वेबिनार के जरिए प्रसारित कर रहे हैं।इसी सूचना-प्रसार की कड़ी में, राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से हम अपनी अर्ध वार्षिक पत्रिका **"सोयवृतिका"** का **सातवां** अंक प्रकाशित कर रहे हैं। यह अंक **"कृषि उत्पाद व मूल्य संवर्धन"** (Value Addition) के महत्वपूर्ण विषय पर केंद्रित है। जहाँ एक ओर सोयाबीन का उत्पादन बढ़ाना हमारी प्राथमिकता है, वहीं दूसरी ओर मूल्य संवर्धन के माध्यम से सोयबीन के उत्पादों को अधिक उपयोगी बनाना और उनका प्रसार करना जिससे किसानों की आय मे विद्धि हो यह हमारा प्रमुख लक्ष्य है । इस अंक में सोयाबीन फसल के अतिरिक्त अन्य कृषि फसल से सम्बंधित वैज्ञानिकों के शोध निष्कर्षों के साथ-साथ साहित्य प्रेमियों की मौलिक रचनाओं का भी सुंदर समन्वय किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि **"सोयवृतिका"** का यह अंक वैज्ञानिकों, नीति-निर्धारकों, उद्यमियों और विशेषकर हमारे किसान भाइयों के लिए एक मार्गदर्शिका सिद्ध होगा। मैं संपादकों को बहुत बहुत बधाई देता हूँ, जिन्होने पत्रिका को संपादित कर एक मानक स्तर प्रदान किया।

शुभकामनाओं सहित...

(कुँवर हरेन्द्र सिंह)

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर

भाकृअनुप
ICAR

संपादकीय...

भाषा और कृषि : प्रगति के दो अटूट स्तंभ

हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारत की सामासिक संस्कृति को पिरोने वाला वह सूत्र है जो उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम के भाषाई अवरोधों को समाप्त कर राष्ट्रीय एकात्मकता का मार्ग प्रशस्त करता है। शासन-प्रशासन से लेकर साहित्य और सिनेमा तक, हिंदी हमारी पहचान और विरासत की संवाहिका है। आज के वैश्विक परिदृश्य में, हिंदी में दक्षता न केवल सांस्कृतिक गौरव है, बल्कि आर्थिक और शैक्षणिक विकास के नए द्वार खोलने वाला एक अनिवार्य कौशल भी बन चुकी है।मानव सभ्यता की आधारशिला 'कृषि' आज जलवायु परिवर्तन और शहरीकरण जैसी अभूतपूर्व चुनौतियों के मुहाने पर खड़ी है। ऐसे में 'द्वितीयक कृषि' (Secondary Agriculture) और मूल्य संवर्धन की अवधारणा एक नई आशा बनकर उभरी है। यह केवल फसल उगाने तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रसंस्करण, पैकेजिंग, कृषि-पर्यटन और पर्यावरण-अनुकूल पद्धतियों के माध्यम से कच्चे माल को 'संपदा' में बदलने का सेतु है।

इसी दृष्टि को समर्पित करते हुए, संस्थान की राजभाषा पत्रिका **"सोयवृतिका"** का सातवाँ अंक **"कृषि उत्पाद व मूल्य संवर्धन विशेषांक-II"** के रूप में आपके सम्मुख है। इस अंक के अध्याय तकनीकी नवाचारों से लेकर आर्थिक स्थिरता तक के व्यापक फलक को समेटे हुए हैं। हमारा विश्वास है कि यह अंक शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और प्रगतिशील कृषकों के लिए एक मार्गदर्शक संसाधन सिद्ध होगा।सोयवृतिका' के इस सप्तम अंक की ज्ञान-सामग्री को हमने तीन विशिष्ट खंडों में समाहित किया है, जो पाठक को एक व्यापक और संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करते हैं| प्रथम खंड तकनीकी नवाचार पर केंद्रित शोधपूर्ण तकनीकी आलेखों का संग्रह है। द्वितीय खंड में भाषाई विविधता के उद्देश्य से अन्य भारतीय भाषाओं के तकनीकी आलेखों को स्थान दिया गया है। हमारा प्रयास है कि जटिल वैज्ञानिक ज्ञान स्थानीय भाषाओं के माध्यम से जन-जन तक सुलभ हो सके, एवं तृतीय खंड में संस्थान की राजभाषा संबंधी गतिविधियों के साथ-साथ प्रेरक कविताओं और रचनाओं को सम्मिलित किया गया है, जो हिंदी लेखन के प्रति अभिरुचि और उत्साह का संचार करती हैं।

मैं उन सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपने शोधपूर्ण आलेखों से इस अंक को समृद्ध किया है। साथ ही, संपादक मंडल के अथक परिश्रम की मैं सराहना करती हूँ, जिनके सहयोग से यह अंक इस स्वरूप में संभव हो पाया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'सोयवृतिका' का यह प्रयास वैज्ञानिक चेतना और हिंदी साहित्य के संगम से राजभाषा की उन्नति में मील का पत्थर साबित होगा।

सादर,

पुनम कुचलान
राजभाषा अधिकारी

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	खण्ड - क : तकनीकी आलेख		
1	सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे): भविष्य का हरा पावरहाउस	डॉ. पुनम कुचलान एवं डॉ. मृणाल कुचलान डॉ. नेहा पांडे, डॉ. एम रत्नापरखे एवं डॉ. के एच सिंह	1
2	पपीते द्वारा पपेन उत्पादन करके भरपूर मुनाफा कमाएं	डॉ. मुकुन्द कुमार, डॉ. ब्रह्म प्रकाश एवं डॉ. ओम प्रकाश	6
3	बागवानी फसलों का श्रेणीकरण एवं पैकेजिंग	डॉ. नेहा पाण्डे	12
4	द्वितीय हरित क्रांति के संवर्धन में आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की भूमिका: भारतीय दृष्टिकोण	डॉ.विराज कांबले, डॉ.मिलिंद रत्नापरखे, डॉ.गिरिराज कुमाव, डॉ.मच्छिंद्र निर्गुडे, डॉ.विशाल थोरात, डॉ.नेहा पांडे, डॉ.वंगाला डॉ.राजेश, डॉ.संजीव कुमार, डॉ.लोकेश कुमार मीणा एवं डॉ.पुनम कुचलान	18
5	कुसुम एक फसल.... उपयोग अनेक	डॉ.दिलीप कुमार वर्मा, रविन्द्र पंवार एवं उपेन्द्र सिंह चौधरी	26
6	अंगूर गीत	श्री वी.डी. गायकवाड़	32
7	सोयाबीन के प्रमुख हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन	डॉ.लोकेश कुमार मीणा, डॉ.वन्गाला राजेश, डॉ.विराज काम्बले, डॉ.संजीव कुमार, डॉ.महावीर प्रसाद शर्मा, डॉ.हेमंत सिंह महेश्वरी एवं डॉ.पुनम कुचलान	33
8	अर्थव्यवस्था पर आयात का असर	डॉ विशाल थोरात एवं डॉ बी. यु. दुपारे	37
9	सोया प्रोटीन : शाकाहरियों का "सुपरफूड" और भविष्य का पोषण	डॉ.नेहा पांडे, डॉ.पुनम कुचलान, डॉ.विराज कांबले एवं डॉ. के एच सिंह	39
10	पादप प्रजनन में कृत्रिम बुध्दिमत्ता : फसल सुधार का नया युग	डॉ. वंगाला राजेश, डॉ. संजय गुप्ता, डॉ. ज्ञानेश कुमार सातपुते, डॉ. वी. नटराज, डॉ. आलोक शिव, डॉ. गिरिराज कुमावत, डॉ. मिलिंद. रत्नापारखे, डॉ. विराज कांबले, डॉ. लोकेश मीणा, डॉ. संजीव कुमार, डॉ. के. एच. सिंह	44
11	आनुवंशिक अभियांत्रिकी एवं जीएम फसलें; विकास, तकनीक और वैश्विक प्रभाव	ज्योति काग, पलक सोलंकी, मेघा कटारे, मुकेश, डॉ. संजीव कुमार, डॉ.हेमंत माहेश्वरी,	46
12	मैं, मेरी सोयाबीन और मेरा सोया संस्थान	डॉ बुद्धेश्वर यु. दुपारे	48
13	भविष्य की फसलें विकसित करने हेतु अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ	डॉ. संगीता श्रीवास्तव एवं डॉ. प्रियंका श्रीवास्तव	49
14	ग्लाइसिन सोजा (जंगली सोयाबीन): सोयाबीन सुधार में इसका महत्व	मीनल बघेल डॉ.वंगाला राजेश डॉ.प्रीति व्यास डॉ.संजय गुप्ता एवं डॉ.लोकेश कुमार मीणा	53
15	जलवायु परिवर्तन और सोयाबीन रोग: बदलता मौसम, बदलते रोगजनक	पलक सोलंकी, ज्योति काग, डॉ.हेमंत माहेश्वरी, डॉ.लोकेश मीना, डॉ.संजीव कुमार	55
16	कृषि उद्यमिता: इंदौर के ग्रामीण क्षेत्र में सोयाबीन खेती और इसके मूल्य संवर्धित उत्पादों की सफलता की कहानी	डॉ.दीपक मौर्य एवं बी डी कुशवाहा	57
17	"उच्च क्षमता फीनोटाइपिंग (High Throughput Phenotyping) हेतु फिनोमिक्स और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एकीकृत उपयोग	डॉ.आलोक शिव, डॉ.वी.नटराज, डॉ.गिरिराज कुमावत, डॉ.वंगाला राजेश, डॉ. हेमंत सिंह माहेश्वरी, डॉ. संजीव कुमार, डॉ. विराज जी. कांबले, डॉ.ज्ञानेश कुमार सातपुते, डॉ.मिलिंद रत्नापारखे, डॉ. संजय गुप्ता एवं डॉ. के.एच.सिंह	59
	खण्ड - ख : क्षेत्रीय भाषायी तकनीकी आलेख		
18	सोयाबीनः पौष्टीक महत्व व खाद्य उपयोग (मराठी)	डॉ. बी.यू. दुपारे	62
19	सोयाबीनमध्ये तण कीट, रोग नियंत्रण, कापनी, मळणी आणि साठवणूक (मराठी)	डॉ बी.यू. दुपारे डॉ राकेश कुमार वर्मा, डॉ. लोकेश कुमार मीना डॉ. संजीव कुमार, डॉ. पुनम कुचलान आणि डॉ. के.एच.सिंह	65
20	कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धन: संकल्पना, गरज आणि क्षमता	पूर्णिमा लांडे	72
21	सोयाबीन: स्वर्ण फसल अणि प्रोटीन रो खजानों	अशोक जायसवाल, डॉ.आलोक शिव एवं डॉ.चंदू सिंह	75
	खण्ड - ग : राजभाषा सामान्य		
22	संस्थान की राजभाषा से संबंधित गतिविधियाँ एवं अक्टूबर 2025 से मार्च 2026 के दौरान हुए विभिन्न कार्यक्रमों की झलक	डॉ. पुनम कुचलान	79
23	देवनागरी लिपि का संवैधानिक एवं वर्तमान स्वरूप	श्याम किशोर वर्मा	87
24	किसान का दर्द	अरिया दुपारे	95
25	कर्मयोगी मिशन का महत्व: कृषि क्षेत्र में एक नई दिशा	डॉ.संगीता श्रीवास्तव एवं डॉ.प्रियंका श्रीवास्तव	96
26	निर्भया की शक्ति और निर्भया की प्रतिज्ञा	श्याम किशोर वर्मा	98
27	शिक्षा का महत्त्व	डॉ बुद्धेश्वर यु. दुपारे	100
28	इंदौर एक समृद्ध शहर	डॉ. दिलीप कुमार वर्मा एवं रविन्द्र पंवार	101

खण्ड क "तकनीकी आलेख"

सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे): भविष्य का हरा पावरहाउस

डॉ. पुनम कुचलान एवं डॉ. मृणाल कुचलान, डॉ. नेहा पांडे, डॉ. एम् रत्नापरखे एवं डॉ. के एच सिंह
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर
संवादी लेखक ईमेल: punam124@rediffmail.com

सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे)

सब्जी वाली सोयाबीन, जिसे "एडाममे" भी कहा जाता है, आजकल एक बहुत ही महत्वपूर्ण फसल बनती जा रही है। इसकी मुख्य वजह इसकी बढ़ती मांग और इसमें मौजूद ढेर सारे पोषक तत्व हैं। इसमें भरपूर मात्रा में प्रोटीन, आयरन, कैल्शियम और पोटेशियम जैसे तत्व पाए जाते हैं जो सेहत के लिए बहुत अच्छे हैं। एडाममे असल में सोयाबीन की हरी फलियाँ हैं, जिनका स्वाद अनोखा होता है। इन्हें ताजी फ्रोजन (frozen) सब्जी के रूप में खाया जा सकता है। चीन, जापान और अमेरिका इसके उत्पादन में सबसे आगे हैं, जबकि भारत अभी भी इसकी संभावनाओं को तलाश रहा है। इसे अलग-अलग देशों में कई नामों से जाना जाता है जैसे जापान में एडाममे, कोरिया में पूट कोंग (Poot kong), चीन में इसे माओदौ (Maodou) के नाम से

और अन्य जगहों पर इसे हरी सोयाबीन या खाने वाली सोयाबीन के नाम से भी पुकारा जाता है। है।सब्जी वाली सोयाबीन पूर्वी एशियाई देशों के व्यंजनों में बहुत लोकप्रिय है। साधारण सोयाबीन का इस्तेमाल मुख्य रूप से तेल निकालने या जानवरों के चारे के लिए किया जाता है, वहीं सब्जी वाली सोयाबीन की कच्ची और हरी फलियों को (R6 स्टेज पर जब फली पूर्ण रूप से भर जाती है) तोड़ लिया जाता है। इन्हें बाज़ार में ताजी सब्जी, जमी हुई (फ़्रोजन frozen) या डिब्बाबंद (canned) उत्पादों के रूप में बेचा जाता है। आजकल पूरी दुनिया में इसे एक 'स्वास्थ्यवर्धक स्नैक या नाश्ते के रूप में पसंद किया जा रहा है, खासकर उन लोगों के बीच जो शाकाहारी प्रोटीन की तलाश में हैं। सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे) में पचने वाले प्रोटीन और जरूरी अमीनो एसिड का एक बेहतरीन संतुलन है। यह उन लोगों के लिए प्रोटीन का एक शानदार शाकाहारी स्रोत है जो वीगन (Vegan) या शाकाहारी डाइट का पालन करते हैं। १०० ग्राम ताजी सब्जी वाली सोयाबीन में पानी 68% से 71%, प्रोटीन: 11.5-14%,कार्बोहाइड्रेट 8%, फैटी एसिड 7.81%, फाइबर 5%, शुगर (चीनी) 2.47% एवं ऊर्जा135 कैलोरी (kcal) मिलती है । इसमें 'लिनोलेइक' और 'लिनोलेनिक' एसिड के साथ-साथ जिंक (11.60%) और आयरन (18.01%) जैसे महत्वपूर्ण खनिज भी पाए जाते हैं। इसमें शरीर के लिए जरूरी सभी अमीनो एसिड, फाइबर, विटामिन, मिनरल्स और 'आइसोफ्लेवोन्स' जैसे फायदेमंद तत्व पाए जाते हैं। आइसोफ्लेवोन्स (Isoflavones) के फायदे ये हैं कि इसमें 'डेडेज़िन' और 'जेनस्टीन' जैसे तत्व होते हैं जो इंसानों के लिए बहुत फायदेमंद हैं। यह हार्मोनल संतुलन और दिल की सेहत में मदद करते हैं। हड्डियों को मजबूती देते हैं और कैंसर के खतरे को कम करने में सहायक हो सकते हैं। यह फसल मिट्टी की सेहत के लिए बहुत अच्छी है। यह हवा से नाइट्रोजन सोखकर मिट्टी को उपजाऊ बनाती है और बहुत कम समय में 70-90 दिनों में तैयार हो जाती है। इसी कारण इसे अलग-अलग तरह की फसलों के साथ भी उगाया जा सकता है।

एडाममे क्यों खास है?

एडाममे को "कम्प्लीट प्रोटीन" (Complete Protein) माना जाता है। इसका मतलब है कि इसमें वे सभी 9 आवश्यक अमीनो एसिड मौजूद हैं जो हमारा शरीर खुद नहीं बना सकता।

• फाइबर से भरपूर: यह पाचन में मदद करता है और पेट को लंबे समय तक भरा रखता है।

• हृदय स्वास्थ्य: इसमें कोलेस्ट्रॉल नहीं होता और यह आइसोफ्लेवोन्स (Isoflavones) से भरपूर होता है, जो दिल के लिए अच्छा है।

• लो ग्लाइसेमिक इंडेक्स: यह ब्लड शुगर को अचानक नहीं बढ़ाता, इसलिए डायबिटीज रोगियों के लिए भी बेहतरीन है।

निम्नलिखित तालिका मे प्रोटीन की तुलना (प्रति 100 ग्राम पकी हुई मात्रा) दी गई है।

तालिका 1. एडाममे, मटर व दालों मे प्रोटीन एवं अन्य पोषक तत्वो का तुलनात्मक विवरण

पोषक तत्व	एडाममे (सोया)	हरी मटर	दालें
प्रोटीन (ग्राम)	11.9	5.36	9.0
फाइबर (ग्राम)	5.2	5.5	7.9
फैट (ग्राम)	5.2	0.22	0.5
कैलोरी	121	84	116
आयरन (मिलीग्राम)	2.27	1.54	3.3
कैल्शियम (मिलीग्राम)	63	27	19
पूर्ण प्रोटीन? (Complete)	हाँ	नहीं	नहीं

स्रोत: Foodstruct और FDA अध्ययनों से संकलित डेटा। https://foodstruct.com/compareimages/pea-vs-edamame.

तालिका 2. वेजीटेबल सोयाबीन एवं हरी मटर के पोषक तत्वों का तुलनात्मक विश्लेषण।

पोषक तत्व / घटक मात्रा (प्रति 100 ग्राम)	एडाममे (सोया)	हरी मटर
विटामिन B5	0.39mg	0.6mg
विटामिन A	298IU	801
विटामिन B3	0.915mg	2.02mg
फोस्फोरस	169mg	117mg
आयरन	2.27mg	1.54mg
पोटाशियम	436mg	271mg
मैग्नीशियम	64mg	39mg
कोलिन	56.3mg	29.7mg
कैल्शियम	63mg	29.7
शर्करा	2.18	5.93

स्रोत: Foodstruct और FDA अध्ययनों से संकलित डेटा। https://foodstruct.com/compareimages/pea-vs-edamame.

सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे) के मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ

वेजिटेबल सोयाबीन का ताजा उपयोग सीमित समय तक संभव होता है, इसलिए प्रसंस्करण के माध्यम से इसका शेल्फ लाइफ बढ़ाना और बाजार मूल्य बढ़ाना आवश्यक है। भारतीय परिदृश्य में निम्नलिखित मूल्य संवर्धन उत्पाद विकसित किए जा सकते हैं:

1. फ्रोजन एडामामे

फ्रोजन एडामामे वेजिटेबल सोयाबीन का एक अत्यंत लोकप्रिय और उच्च मूल्य वाला उत्पाद है। इसमें हरे, कोमल दानों को ब्लांचिंग के बाद तुरंत फ्रीज किया जाता है, जिससे उनका प्राकृतिक रंग, स्वाद और पोषण संरक्षित रहता है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में इसकी मांग तेजी से बढ़ रही है, विशेषकर हेल्थ-फूड और प्लांट-प्रोटीन सेगमेंट में।

उबालकर (ब्लांचिंग) तुरंत फ्रीज करना

फ्रोजन एडामामे बनाने की प्रक्रिया में निम्न प्रमुख चरण शामिल हैं:

(i) कटाई:

हरी अवस्था (आर6 स्टेज) में फलियों की कटाई की जाती है, जब दाने पूर्ण विकसित लेकिन कोमल होते हैं।

(ii) ग्रेडिंग एवं छिलाई:

समान आकार और गुणवत्ता वाले दानों का चयन किया जाता है।

(iii) ब्लांचिंग (2–3 मिनट, 90–100°C):

- एंजाइम निष्क्रिय करता है
- हरा रंग बनाए रखता है
- सूक्ष्मजीव भार कम करता है
- बनावट स्थिर करता है

(iv) तुरंत ठंडा करना:

ब्लांचिंग के बाद दानों को ठंडे पानी या चिल्ड एयर से तुरंत ठंडा किया जाता है।

(v) फ्रीजिंग:

- सामान्यतः -18°C या उससे कम तापमान पर भंडारण किया जाता है
- आई क्यू. ऍफ़. तकनीक से दाने अलग-अलग फ्रीज होते हैं
- पोषण और टेक्सचर सुरक्षित रहता है

(vi)पैकेजिंग:

वैक्यूम पैक या फूड-ग्रेड पाउच में पैकिंग कर कोल्ड स्टोरेज में रखा जाता है।

फ्रोजन एडामामे की मांग निम्न क्षेत्रों में अधिक है:

- स्टार होटल एवं एशियन रेस्टोरेंट
- आधुनिक सुपरमार्केट एवं रिटेल चेन
- सलाद बार एवं हेल्थ कैफे
- स्कूल/कॉरपोरेट कैफेटेरिया (हाई-प्रोटीन स्नैक)

यह "रेडी टू कुक" और "रेडी टू ईट" दोनों रूपों में उपलब्ध कराया जा सकता है। जापान, दक्षिण कोरिया, अमेरिका और यूरोप में एडामामे की मांग लगातार बढ़ रही है। भारत में यदि गुणवत्ता मानकों और कोल्ड चेन अवसंरचना को मजबूत किया जाए, तो निर्यात एक बड़ा अवसर बन सकता है।

शेल्फ लाइफ एवं भंडारण

- -18°C पर 8–12 माह तक सुरक्षित
- पोषण एवं स्वाद में न्यूनतम हानि
- निरंतर कोल्ड चेन आवश्यक

फ्रोजन एडामामे भारतीय कृषि-प्रसंस्करण उद्योग के लिए एक उभरता हुआ अवसर है। यह पोषण सुरक्षा, किसानों की आय वृद्धि और निर्यात संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कटाई (हरी अवस्था)
↓
ग्रेडिंग एवं सफाई
↓
छिलाई (Shelling)
↓
ब्लांचिंग (2–3 मिनट)
↓
तुरंत ठंडा करना (Cooling)
↓
फ्रीजिंग (-18°C)
↓
पैकेजिंग (वैक्यूम / MAP)
↓
कोल्ड स्टोरेज एवं विपणन

चित्र 1. फ्रोजन एडामामे हेतु प्रक्रिया

2. डिब्बाबंद वेजिटेबल सोयाबीन

डिब्बाबंद वेजिटेबल सोयाबीन, जिसे अंतरराष्ट्रीय बाजार में एडामामे के रूप में भी जाना जाता है, मूल्य संवर्धन का एक महत्वपूर्ण रूप है। ताज़े हरे दानों की उपलब्धता सीमित समय के लिए होती है, इसलिए कैनिंग तकनीक के माध्यम से इसकी शेल्फ लाइफ बढ़ाकर वर्षभर उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। यह उत्पाद विशेष रूप से शहरी उपभोक्ताओं, सुपरमार्केट श्रृंखलाओं और होटल-रेस्टोरेंट उद्योग के लिए अत्यंत उपयोगी है।

नमकयुक्त पानी में पैकिंग

डिब्बाबंदी प्रक्रिया में छिले हुए हरे सोयाबीन दानों को पहले 2–3 मिनट तक ब्लांच किया जाता है ताकि एंजाइम निष्क्रिय हो जाएँ और प्राकृतिक हरा रंग सुरक्षित रहे। इसके बाद दानों को स्वच्छ टिन या फूड-ग्रेड कैन में भरकर 1–2% नमकयुक्त पानी (ब्राइन सॉल्यूशन) डाला जाता है।

ब्राइन सॉल्यूशन के लाभ:

- स्वाद में हल्की नमकीनता और संतुलन
- सूक्ष्मजीव वृद्धि पर नियंत्रण
- बनावट (टेक्सचर) को बनाए रखने में सहायक
- पोषक तत्वों की आंशिक सुरक्षा

इसके पश्चात कैन को सील कर उच्च तापमान (स्टेरिलाइजेशन) प्रक्रिया से गुजारा जाता है, जिससे हानिकारक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं और उत्पाद सुरक्षित बनता है।

स्टेरिलाइजेशन और एयरटाइट सीलिंग के कारण डिब्बाबंद वेजिटेबल सोयाबीन की शेल्फ लाइफ 6 माह से 1 वर्ष या उससे अधिक हो सकती है, बशर्ते भंडारण ठंडी और सूखी जगह पर किया जाए।

लंबी शेल्फ लाइफ के लाभ:

- वर्षभर बाजार उपलब्धता
- परिवहन एवं निर्यात में सुविधा
- किसानों और प्रोसेसर के लिए कम नुकसान
- खाद्य अपव्यय में कमी

भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में, जहाँ ताजे उत्पाद शीघ्र खराब हो जाते हैं, यह तकनीक विशेष रूप से उपयोगी है। शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य-जागरूक उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ रही है। डिब्बाबंद वेजिटेबल सोयाबीन को निम्न रूपों में उपयोग किया जाता है:

- सलाद एवं सूप में
- नूडल्स, फ्राइड राइस और पास्ता में
- हेल्दी स्नैक के रूप में सीधे सेवन
- प्रोटीन सप्लीमेंट फूड के रूप में

बड़े रिटेल चेन और आधुनिक सुपरमार्केट में "प्रोटीन युक्त", "वीगन", "ग्लूटेन मुक्त" जैसे लेबल के साथ इसे आकर्षक पैकेजिंग में प्रस्तुत किया जाता है।

डिब्बाबंद वेजिटेबल सोयाबीन छोटे और मध्यम उद्यमियों के लिए एक लाभकारी व्यवसाय हो सकता है। उचित गुणवत्ता नियंत्रण, खाद्य सुरक्षा मानकों का पालन और आकर्षक ब्रांडिंग के माध्यम से इसे घरेलू बाजार के साथ-साथ निर्यात बाजार में भी स्थापित किया जा सकता है।

हरी फलियों की कटाई
↓
सफाई एवं ग्रेडिंग
↓
ब्लांचिंग
↓
कैन में भरना + नमक घोल
↓
सीलिंग
↓
स्टेरिलाइजेशन
↓
लेबलिंग एवं भंडारण

चित्र 3: डिब्बाबंद एदमामे उत्पाद हेतु प्रक्रिया

3. रेडी-टू-ईट स्नैक्स: वेजिटेबल सोयाबीन (एडामामे) से तैयार रेडी-टू-ईट स्नैक्स वर्तमान समय में एक उभरता हुआ हेल्दी फूड सेगमेंट है। शहरी जीवनशैली, त्वरित भोजन की आवश्यकता और प्रोटीन युक्त आहार के प्रति जागरूकता ने इस उत्पाद की मांग को बढ़ाया है। हल्का मसाला मिलाकर भुना हुआ एडामामे स्वाद और पोषण का संतुलित संयोजन प्रस्तुत करता है, जो पारंपरिक तले हुए स्नैक्स का बेहतर विकल्प बन सकता है।

इस उत्पाद के निर्माण में पहले हरे दानों को ब्लांच कर सुखाया जाता है, फिर नियंत्रित तापमान पर रोस्टिंग (भुनाई) की जाती है। भुनाई के बाद हल्का नमक, काली मिर्च, चाट मसाला, पुदीना या अन्य प्राकृतिक मसाले मिलाए जाते हैं।

रोस्टेड एडाममे

प्रसंस्करण के प्रमुख चरण:

कटाई → छिलाई → ब्लांचिंग → ड्राइंग → रोस्टिंग → मसाला कोटिंग → पैकेजिंग

लाभ:

- कुरकुरा टेक्सचर
- प्राकृतिक स्वाद बरकरार
- कम तेल या बिना तेल विकल्प
- आकर्षक फ्लेवर विविधता

प्रोटीन युक्त हेल्दी स्नैक विकल्प: भुना हुआ एडामामे 100 ग्राम में लगभग 35–40% (सूखे आधार पर) प्रोटीन प्रदान कर सकता है, जो इसे उच्च प्रोटीन स्नैक बनाता है। यह शाकाहारी और वीगन आहार के लिए उपयुक्त है। प्रोटीन युक्त, कोलेस्ट्रॉल रहित व कम वसा होने के कारण जिम जाने वालों और स्वास्थ्य-जागरूक युवाओं के लिए आदर्श है।

4. अन्य उत्पाद:

सोया पेस्ट और स्प्रेड वेजिटेबल सोयाबीन या प्रोसेस्ड सोया प्रोटीन से तैयार किए जाने वाले उच्च प्रोटीन युक्त उत्पाद हैं, जिनका उपयोग डिप्स, सूप, सॉस, सैंडविच स्प्रेड और हेल्दी ब्रेकफास्ट विकल्पों के रूप में किया जा सकता है। इनमें मसालों, जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक फ्लेवर का समावेश कर इन्हें स्वादिष्ट एवं पौष्टिक बनाया जाता है, जिससे यह फंक्शनल फूड सेगमेंट में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं। वहीं, सोया आधारित रेडी-टू-कुक मिक्स जैसे सोया पुलाव मिक्स, सोया नूडल्स मिक्स या सब्जी मिश्रण शहरी व्यस्त जीवनशैली के लिए

सुविधाजनक विकल्प प्रदान करते हैं। इनमें निर्जलित (ड्राइड) सोया दाने या ग्रैन्यूल्स मिलाकर पोषण मूल्य बढ़ाया जाता है, जिससे यह इंस्टेंट फूड उद्योग में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। ये उत्पाद न केवल प्रोटीन संवर्धन का माध्यम हैं, बल्कि स्वास्थ्य-जागरूक उपभोक्ताओं और स्टार्टअप उद्यमियों के लिए भी व्यापक बाजार संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

सब्जी वाली सोयाबीन (एडाममे) के प्रमुख लक्षण और कटाई का सही समय

सोयाबीन कम दिनों वाले पौधे हैं, जो लंबी रातों में फूल देना शुरू करते हैं। जब सोयाबीन का पौधा फूल देने लगता है, तो वह 'प्रजनन चरण' (Reproductive Stage - R) में प्रवेश करता है। चरण R1 से R4 तक: पौधे पर्यावरण की स्थिति के आधार पर फूलों और छोटी फलियों की संख्या को समायोजित करते हैं।चरण R5 और R6 (महत्वपूर्ण चरण): R5 चरण के तुरंत बाद बीजों का भरना शुरू हो जाता है और R6 चरण शुरू होता है। यह समय फसल प्रबंधन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से सिंचाई (पानी देना) और कीट नियंत्रण के लिए, क्योंकि यह एक नाज़ुक समय होता है (Kuchlan et al.,2023)। सब्जी वाली सोयाबीन की कटाई का सबसे अच्छा समय तब होता है जब दाने R6 चरण पर पहुँच जाते हैं, फलियाँ 80-90% भर जाती हैं और उनका रंग चमकीला हरा होता है। यदि फली पीली होने लगती है, तो इसका मतलब है कि बीज की पोषण गुणवत्ता कम हो रही है, (चीनी स्टार्च में बदल रही है, जिससे स्वाद उपभोक्ताओं के लिए खराब हो जाता है) और वह ताजे बाजार के लिए अनुपयुक्त है । कटाई का समय और योजना: सब्जी वाली सोयाबीन आम तौर पर एक साथ पकती है, जिससे पूरी फसल एक साथ कटाई के लिए तैयार हो जाती है। कटाई का सही समय अक्सर केवल 7 से 15 दिनों तक ही रहता है, इसलिए सर्वोत्तम गुणवत्ता और उपज सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक योजना और त्वरित कार्रवाई की आवश्यकता होती है (Masuda, 2004)। हालाँकि, फली की बनावट (फली की सतह पर रोएँ/रूएँ न होना) भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है , जिसे उपभोक्ता ज्यादा पसंद करते हैं क्योंकि पकाने के बाद यह साफ-सुथरी दिखती है (Shanmugasundaram et.al., 2015)। इसके अतिरिक्त, पोषक तत्वों की मात्रा और खाने की गुणवत्ता जैसे कि मिठास, बनावट (टेक्सचर) और स्वाद सबसे ज्यादा मायने रखते हैं। नई किस्में विकसित करते समय इन गुणों को ध्यान में रखने से उपभोक्ताओं के बीच इसकी स्वीकार्यता बढ़ सकती है, जिससे भारत और अन्य देशों में इसकी मांग पर सकारात्मक असर पड़ेगा।

स्रोत: राष्टीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर खरीफ २०२४ के दौरान आयोजित क्षेत्र प्रयोगों से ली गयी R6 स्टेज में सब्जी सोयाबीन की तस्वीरें

चुनौतियाँ और बाधाएँ: इतने फायदों के बावजूद, भारत में इसकी खेती अभी शुरुआती दौर में है। इसके उत्पादन में कुछ मुख्य समस्याएं हैं, अलग-अलग इलाकों और स्थानीय स्वाद के हिसाब से नई किस्मों का अभाव। अंकुरण की समस्या एवं बीमारी के प्रति असहिष्णु होना इसके सही ढंग से उगने में बाधा डालते हैं (Kuchlan et al., 2023)।

सब्जी वाली सोयाबीन: वैश्विक उत्पादन और बाज़ार

सब्जी वाली सोयाबीन की पूर्वी एशिया के देश जैसे चीन, जापान और ताइवान इसके उत्पादन में सबसे आगे हैं।इसके प्रमुख उपभोक्ता चीन, जापान, कोरिया, अमेरिका, ताइवान, थाईलैंड और यूरोप हैं जहाँ एडाममे सबसे ज्यादा खाया जाता है। थाईलैंड और ताइवान एडाममे के बड़े निर्यातक देश हैं, जो यूरोप और उत्तरी अमेरिका को फ्रोजन वेजिटेबल सोयाबीन (Frozen) सप्लाई करते हैं।थाईलैंड में एडाममे खेती के लिए एक व्यवस्थित 'कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग' (अनुबंध खेती) का तरीका अपनाया गया है, जिससे निर्यात में बहुत सफलता मिली है। अमेरिका में सब्जी वाली सोयाबीन दूसरी सबसे ज्यादा खाई जाने वाली सोया-फूड बन गई है, जहाँ हर साल लगभग 25,000 से 30,000 टन की खपत होती है।

निष्कर्ष: सब्जी वाली सोयाबीन सुनहरे भविष्य की ओर

यह फसल भारत और वैश्विक स्तर पर कृषि विविधीकरण (Agricultural Diversification) के लिए अपार संभावनाएं प्रस्तुत करती है। लेकिन, वास्तविक सफलता प्राप्त करने के लिए चुनौतियों का डटकर सामना करने, किसानों के ज्ञान को बढ़ाने और एक सुदृढ़ आपूर्ति श्रृंखला (Robust Supply Chain) के निर्माण की आवश्यकता है।बीज अंकुरण की समस्याओं के मूल कारणों को समझकर, हम सब्जी वाली सोयाबीन के प्रदर्शन और फसल स्थापना को सुधारने के लिए प्रभावी रणनीतियां अपना सकते हैं। प्रजनकों

(Breeders) को भारतीय मिट्टी और जलवायु के अनुकूल उच्च-क्षमता वाली किस्में विकसित करने के साथ-साथ, बीज प्रसंस्करण और भंडारण की स्थितियों को अनुकूलित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।उचित मिट्टी की तैयारी सहित प्रभावी रोपण तकनीक और खेत प्रबंधन, जोरदार विकास (Vigorous Growth) को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, एक विश्वसनीय आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी प्रबंधन प्रथाओं को स्थापित करने हेतु और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है। अनुसंधान और बुनियादी ढांचे (Infrastructure) में रणनीतिक निवेश पोषण सुरक्षा और ग्रामीण आय को मजबूत कर सकता है।चूँकि लेग्यूम (दलहन) नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करते हैं, इसलिए टिकाऊ खेती के लिए सोयाबीन का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। पर्याप्त समर्थन मिलने पर, सब्जी वाली सोयाबीन किसानों के लिए एक लाभदायक फसल और उपभोक्ताओं के लिए एक पौष्टिक विकल्प बन सकती है, जो भारत के कृषि परिदृश्य और अर्थव्यवस्था को नई ऊंचाइयों पर ले जाएगी।

संदर्भ :

1. Indian Institute of Soybean Research, वार्षिक रिपोर्ट।
2. FAO (Food and Agriculture Organization) – Soybean Nutritional Database.
3. USDA Nutrient Database – Soybean (Green & Mature) fdc.nal.usda.gov.
4. Foodstruct और FDA अध्ययनों से संकलित डेटा। https://foodstruct.com/compareimages/pea-vs-edamame.
6. Kuchlan, M.K., Kuchlan, P., Srivastava, M. (2023) Improvement in seed germination potential and adaptability of vegetable soybean (Glycine maxMerr.). Journal of Oilseed Research, 40 (Special issue):408-409
7. Shanmugasundaram, S., The role of secondary metabolites in the flavor and marketability of vegetable soybeans. Food Res. Int., 1991, 24(6), 599-604.
8. Masuda, R., Edamame: Soybean's Sweet Secret. Soybean Genetics Newsletter, 2004, 31, 1-6.

सच्ची बुद्धिमत्ता तो यही है कि आप जानते हैं कि आप कुछ नहीं जानते।"

– सुकरात

पपीते द्वारा पपेन उत्पादन करके भरपूर मुनाफा कमाएं

डॉ. मुकुन्द कुमार, डॉ. ब्रह्म प्रकाश एवं डॉ. ओम प्रकाश
भा.कृ.अनु.प. - भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
संवादी लेखक का ई-मेल:mukundkumar27@gmail.com

परिचय

किसी भी फसल से अधिकाधिक मुनाफा कमाना कृषकों का विशेष उद्देश्य होता है। यही बात पपीते पर भी लागू होती है। पपीते की खेती प्रायः फलों के लिए ही की जाती है। परंतु तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर द्वारा पपीते का जूस ड्रिंक तैयार करने की तकनीक विकसित की गई है। पपाया कैंडी तथा टूटी फ्रूटी की व्यावसायिक बिक्री कोयंबटूर, बेंगलुरु तथा जलगाँव में काफी वर्षों से हो रही है। बेकरी तथा कंफेक्शनरी उद्योग में इस उत्पाद की काफी मांग है। पपीते से पपेन भी बनाया जाता है। पपेन दूधिया पदार्थ होता है, जो हरे फल के काटने से प्राप्त होता है।बाजार में पपेन को पपायोटिन, पपायड एवं कैरायड जैसे नामों से भी जाना जाता है। व्यापारिक दृष्टिकोण से यह एक अत्यंत लाभकारी पदार्थ है जिसे घरों, भोजनालयों एवं विभिन्न उद्योगों में विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। अमेरिका में जौ की चिलप्रूफ बियर के उत्पादन में इसे प्रयोग में लाया जाता है। वस्त्र धुलाई उद्योग में कपड़ों से धूल, जमा हुआ मेल, चिकनाई तथा धब्बे साफ करने में भी उपयोग में लाया जाता है। वस्त्र उद्योग में ऊन एवं रेशम को सिकुड़ने, खरोंच से बचाने तथा चमक बनाए रखने हेतु भी पपेन का प्रयोग किया जाता है। यह दूध एवं कंफेक्शनरी उद्योगों में बेहतरीन पनीर बनाने एवं च्यूइंगम उत्पादन में भी कारगर होता है। दाद, दानेदार खुजली, एक्ज़िमा, झुर्रियां एवं जख्मों के घाव भरने जैसे रोगों के उपचार में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

परिचर्चा

पपीता (कैरिका पपाया) विटामिन ए तथा सी, पोटेशियम एवं रेशे से समृद्ध एक अत्यंत पौष्टिक फल है। पपीता में उपस्थित विटामिन ए तथा सी शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में विशेष भूमिका निभाने के साथ ही साथ मनुष्य को स्वस्थ रखने में मददगार होते हैं। पपीता में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट्स कोशिका क्षति तथा ऑक्सीडेटिव तनाव के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करते हैं। पपीता आहारीय रेशे का भी प्रचुर स्त्रोत होता है जो पाचन तथा कब्ज को दूर करके मल त्याग को सुगम बनाने में सहायक होता है। पपीता में उपस्थित पपेन एंजाइम्स पाचन में मदद करके पेट फूलने की समस्या से राहत देता है। पपीते में एंटीइन्फ़्लेमेट्री यौगिक होते हैं, जो सूजन को कम करने तथा गठिया जैसी रोग को दूर करने में सहायक होते हैं। पपीते में उपस्थित एंजाइमेटिक तथा एंटीओक्सीडेंट्स गुण घाव को भरने तथा ऊतकों की मरम्मत में सहायक होते हैं। कम कैलोरी का फल होने के बावजूद यह अत्यंत पौष्टिक फल होता है जो शारीरिक भार के प्रबंधन के आहार के लिए भी उत्तम होता है। पपीते को कच्चा, पकाकर अथवा जूस, स्मूदी तथा जैम बनाकर सेवन किया जा सकता है। इसके सेवन से त्वचा स्वस्थ रहती है तथा आयु के लक्षण त्वचा पर शीघ्र दृष्टिगोचरनहीं होते हैं।

पपीता उत्पादन की वैश्विक स्थिति

पपीते का उत्पादन विश्व के बहुत से देशों में होता है। भारत को विश्व में सर्वाधिक पपीता उत्पादन करने वाला देशहोने का अग्रणी स्थान प्राप्त है। विश्व के सर्वाधिक पपीता उत्पादन करने वाले कुछ देशों के वर्ष 2020, 2021 तथा 2022 के उत्पादन के आंकड़े तालिका 1 में प्रदर्शित किए गए हैं:

तालिका 1 : विश्व के सर्वाधिक पपीता उत्पादन करने वाले देश

राष्ट्र		पपीता उत्पादन (टन)	
	2022	2021	2020
भारत	53,41,000	55,40,000	57,80,000
डोमिनिकन गणराज्य	12,81,726	11,56,667	10,94,495
मेक्सिको	11,39,121	11,34,753	11,17,437
ब्राज़ील	11,07,761	12,59,684	12,34,639
इन्डोनेशिया	10,89,578	11,68,266	10,16,388
नाइजीरिया	8,77,009	8,66,682	8,86,752
कोंगों प्रजातांत्रिक गणराज्य	2,09,416	2,09,954	2,10,492
चीन	1,99,030	1,18,834	1,38,333
पेरु	1,76,931	1,90,069	1,88,166
थाइलेंड	1,65,605	1,65,666	1,65,580
फिलीपाइन्स	1,59,173	1,65,912	1,63,299
वेनेजुएला	1,56,533	1,56,598	1,57,177
बांग्लादेश	1,47,,350	1,25,758	1,30,679

भारत में पपीता उत्पादन की वर्तमान स्थिति

वर्ष 2021 में भारत में पपीते की खेती के अंतर्गत 1,46,000 हेक्टेयर क्षेत्र था, जिससे 38 टन प्रति हेक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ 55,40,000 मेट्रिक टन पपीता का उत्पादन प्राप्त हुआ था। इतने अधिक क्षेत्रफल में पपीते की खेती किए जाने के बावजूद,भारत में रोजगार तथा किसानों की आमदनी में वृद्धि करने हेतु पपेन का उत्पादन बहुत कम ही हो पाता है। भारत पपीते के कुल वैश्विक उत्पादन में लगभग 38 प्रतिशत का उल्लेखनीय योगदान देता है। भारत में पपीते की व्यावसायिक खेती मुख्यतः आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, ओडिशा, गुजरात, महाराष्ट्र, असम, बिहार, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में की जाती है।भारत में पपीता के अंतर्गत सर्वाधिक क्षेत्र गुजरात, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल जैसे राज्यों में होता है जबकि सर्वाधिक उत्पादन आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक राज्यों में होता है। पपीते की सर्वाधिक औसत उत्पादकता आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा तेलंगाना राज्यों में प्राप्त होती है।

विश्व में पपीते का सबसे बड़ा उत्पादक देश होने के कारण भारत विदेशों में पपीते का निर्यात भी करता है। नेपाल, यूनाइटेड किंग्डम, कतर, ओमान,सिंगापुर,इटली, स्विट्जरलेंड,नीदरलेंड, भूटान, फ्रांस, मालदीव्स, बहरीन, ताइवान जैसे देश भारत के पपीते के प्रमुख आयातक देश हैं। वर्ष 2020-21 में भारत ने कुल 1888.10 लाख रुपए मूल्य का 7667.47 टन पपीते का निर्यात किया था। छोटी जोत रखने वाले किसान भाइयों को पपीते की खेती अवश्य करनी चाहिए।पपीता उत्पादक किसान पपीते से पपेन बनाकर अपनी आमदनी में सार्थक वृद्धि कर सकते हैं। परंतु अभी भी भारतीय कृषकों को पपीते में पाए जाने वाले पपेन के औषधीय तथा व्यवसायिक उपयोग की पर्याप्त जानकारी नहीं है।इस कारण, वे पपीते से पपेन बनाकर अपनी आय को बढ़ाने में असमर्थ रह रहे हैं। पपीते के हरे एवं पके फलों को खरोचने से जो दूधिया रंग का चिपचिपा पदार्थ निकलता है उसमें काफी मात्रा में पपेन पाया जाता है। यह पपेन एक बहुउपयोगी तथा मूल्यवान कृषि उत्पाद है जिसका उपयोग विभिन्न औषधियों के

निर्माण एवं विभिन्न उद्योगों में किया जाता है। पपीते से पपेन बनाने को प्रोत्साहन देकर ग्रामीण क्षेत्र के हजारो बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

भारत में पपीता के मुख्य उत्पादक राज्य

भारत में आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र,कर्नाटक,मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ प्रमुख पपीता उत्पादक राज्य हैं। उपरोक्त राज्यों में पपीते का वार्षिक उत्पादन एवं देश के कुल पपीता उत्पादन में उन राज्यों के योगदान को तालिका 2 में दर्शाया गया है:

तालिका 2. भारत के विभिन्न राज्यों के पपीता उत्पादन एवं राष्ट्रीय उत्पादन मे योगदान

राज्य	कुल उत्पादन (मेट्रिक टन)	कुल राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान (प्रतिशत)
आंध्र प्रदेश	1503.18	26.17
गुजरात	1107.88	19.29
महाराष्ट्र	496.12	8.64
कर्नाटक	491.95	8.56
मध्य प्रदेश	489.08	8.51
छतीसगढ़	379.56	6.61

पपेन क्या है?

पपीते के हरे तथा परिपक्व फलों को खरोंचने से एक चिपचिपे दूधिया रस निकलता है जिसको सुखाने पर एक सफ़ेद चूर्ण प्राप्त होता है,यही पपेन कहलाता है। पपेन एक प्रोटियोलिटिक एंजाइम होता है। बाजार में पपेन को पपायनिन, पपायड तथा कैरामद आदि नामों से भी जाना जाता है।

कच्चे पपीते से पपेन निकालने का तरीका

पपीते से पपेन निकालने हेतु कच्चे, स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित फलों का ही चुनाव किया जाता है। आधे से तीन चौथाई परिपक्व पपीते (फल लगने से 70 से 100 दिन की अवधि) के पपीते पपेन उत्पादन के लिए उपयुक्त होते हैं। पपीते से दूध निकालने के लिए हरे फलों का चयन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि फल एक दूसरे से अलग-अलग रहे। पपेन निकालने के लिए फलों के नीचे डोरी या क्लैंप की सहायता से स्टील की ट्रे लटका दी जाती है। उसके पश्चात स्टेनलेस स्टील के चाकू या ब्लेड अथवा बांस की पट्टी से फल में चार या पांच स्थानों पर हल्का चीरा लगा दिया जाता है। चीरा लगाते समय ध्यान रखना चाहिए कि हर एक चीरे की गहराई 0.3सें.मी.से ज्यादा नहीं होनी चाहिए क्योंकि अधिक गहरा चीरा लगाने पर फल के खराब होने की आशंका बढ़ जाती है। चीरा लगाने की यह प्रक्रिया एक फल पर तीन से चार दिनों के अंतराल पर तीन से चार बार अवश्य की जाती है। ऐसा करने से फल का सारा दूध निकल जाता है। चीरा लगाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए ।

- कच्चे फलों से दूध निकालने से दो दिन पूर्व बाग की सिंचाई कर देने से फलों से दूध अधिक मात्रा में निकलता है।
- चीरा लगाने हेतु लोहे के चाकू का उपयोग नहीं करना चाहिए, इससे दूध के काला पड़ जाने की संभावना बढ़ जाती है। इसी कारण स्टेनलेस स्टील के बने चाकू के प्रयोग करने की संस्तुति की जाती है।
- चीरा लगाने का कार्य सुबह-सुबह करना बेहतर रहता है क्योंकि इस समय दूध का स्त्राव अधिक मात्रा में और तेजी के साथ होता है।
- चीरा लगाते समय तथा दूध निकालते समय रबड़ के दस्ताने पहनने की संस्तुति की जाती है, जिससे निकालने वाले व्यक्ति की अंगुलियों पर दूध का कुप्रभाव न हो।

पपीते से निकाले गए दूध को घरेलू स्तर पर सुखाने की विधि

पपीते पर चाकू से चीरा लगाते ही पपीते के फलों से दूध निकलना आरंभ हो जाता है। इसको इकट्ठा करके सूखाने से पूर्व उसके वजन के अनुसार 0.5% पोटेशियम मेटाबाईसल्फेट मिला दिया जाता है। इसके परिरक्षक का काम करने के कारण पपेन खराब नहीं होता है। पोटेशियम मेटाबाईसल्फेट मिश्रित दूध को साफ-सुथरी तथा अच्छी गुणवत्ता के पॉलिथीन पर फैलाकर छाएदार स्थान में सुखा लेना चाहिए। धूप तथा खुली वायु में सुखाने से पपेन का गुण बड़ी सीमा तक नष्ट हो जाता है। अतः दूध को छाएदार स्थान पर ही सुखाना चाहिए या आर्टिफ़िशियल ड्रायर में 50-55 डिग्री सेल्सियस तापमान पर सुखा लेना चाहिए। उपयुक्त विधियों द्वारा भली-भांति सुखाने के साथ पपेन को लकड़ी के बेलन से पीसकर हल्के पीले रंग का चूर्ण (पाउडर) बना लिया जाता है। तत्पश्चात इस सूखे हुए हल्के पीले रंग के चूर्ण को सूखी बोतलों अथवा पॉलीथिन में भरकर सील कर दिया जाता है। यह छह महीनों तक सुरक्षित रूप से भंडारित किया जा सकता है। पपेन की मांग बढ़ने का कारण पपीते का सबसे मूल्यवान तत्व पपेन होता है जो पपीते

के फल वृक्ष के हर एक भाग में पाया जाता है जो कि सशक्त प्रोटीन व पाचक तत्व है।

पपेन उत्पादन के लिए उपयुक्त पपीता की किस्में

वाशिंगटन: तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर द्वारा पपीते की यह किस्म विकसित की गई है। यह एक संकर किस्म है जो सीओ 1 (मादा पौधा) तथा वाशिंगटन क्रासेस (नर जनक) के संकरण से उत्पन्न हुई है। इसके फल का रंग चमकीला पीला, आकार मध्यम, एक फल का औसतन वजन डेढ़ से दो किलोग्राम तक तथा स्वाद मीठा होता है। महाराष्ट्र में पपेन उत्पादन के लिए यह एक अत्यंत उपयुक्त तथा लोकप्रिय किस्म है।

सीओ 5:तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर द्वारा पपीते की यह किस्म वाशिंगटन से एक इंब्रेड चयन द्वारा जो मुख्यतया पपेन के उच्च उत्पादन के लिए विकसित की गई है। इसमें नर एवं मादा पौधे अलग अलग होते हैं, जो इस किस्म को पपेन उत्पादन के लिए आदर्श बनाता है। सीओ 5 किस्म प्रति फल से औसतन 14-15 ग्राम शुष्क पपेन उत्पादित करती है तथा दो वर्ष में इसमें प्रति वृक्ष 75-80फल लगते हैं, जिससे औसतन उपज 1,500-1,600 किलोग्राम शुष्क पपेन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाता है।

पूसा मेजेस्टी: यह किस्म भाकृअनुप- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के पूसा (बिहार) क्षेत्रीय केंद्र द्वारा विकसित किस्म है जिसको परंपरागत प्रजनन विधियों द्वारा विकसित किया गया है। भारत में बौने आकार की उच्च उत्पादन क्षमता वाली विषाणु रोगरोधी तथा लोकप्रिय किस्म है। उच्च पपेन की उत्पादकता एवं जड़गांठ सूत्रकृमि प्रतिरोधी तथा द्विलिंगी किस्म है। इसमें पौध की रोपाई के 146 दिन बाद फल आना आरंभ हो जाते हैं।

पपेन की उत्पादकता

पपीते से प्राप्त होने वाले पपेन की उत्पादकता पपीते की किस्म तथा पपेन निकालने के लिए उपयोग में प्रयुक्त हुई उत्पादन तकनीक पर निर्भर करती है। पपीते की बागवानी करके एक हेक्टेयर क्षेत्र से 35,000 रुपए के मूल्य का पपेन उत्पादन हो जाता है। पपेन के निकालने के पश्चात, पपेन निकाले गए फलों को तोड़ कर बेच दिया जाता है। इससे 15,000 रुपए की अतिरिक्त आय हो जाती है। तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर ने पपेन उत्पादन के लिए पपेन की उच्च मात्रा युक्त सीओ 2 (कच्चे पपेन की उपज: 600 किलोग्राम/हेक्टेयर) तथा सीओ 5 (कच्चे पपेन की उपज: 800 किलोग्राम/हेक्टेयर जैसी पपीते की दो अत्यंत लोकप्रिय किस्में विकसित की है।

भारत से पपेन का निर्यात

पपीता उत्पादन की तरह भारत पपेन का भी सबसे बड़ा उत्पादक राष्ट्र हैं, जहां से विश्व के कुल निर्यात का 68 प्रतिशत 5,014 शिपमेंट्स के साथ निर्यात होता है। भारत से पपेन का निर्यात मुख्यतया संयुक्त अरब अमीरात, भूटान, पनामा, नीदरलेण्ड्स तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को किया जाता है। भारत से निर्यात किए जाने वाले पपेन का मूल्य उत्पाद के रूप पर निर्भर करता है। द्रव अवस्था में पपेन का 100 किलोग्राम कच्चे माल का मूल्य 698.43 डॉलर होता है जबकि पपेन के 500 किलोग्राम अल्ट्रारिफाइंड पपेन पाउडर का मूल्य 40,623 डॉलर होता है। फ्रूजाइम बायोटेक इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, तुलसी मेडिकल जनरल स्टोर्स तथा यूनिकेम लैबोरेट्रीज़ लिमिटेड भारत से पपेन के मुख्य निर्यातकर्ता हैं। सम्पूर्ण विश्व में पपेन की मांग खाद्य, फार्मास्युटिकल्स तथा प्रसाधन सामग्री उद्योग में होने के कारण भारतीय निर्यातकर्ताओं को संभावित निर्यात अवसरों को जानने के लिए उभरते हुए नवीन बाज़ारों की पहचान करने, विभिन्न बाजारों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कच्चा माल, पाउडर तथा द्रव अवस्था सहित पपेन उत्पादों की विविधतापूर्ण रेंज उपलब्ध कराने तथा स्थायी आपूर्ति श्रृंखला को सुनिश्चित करने हेतु क्रेताओं तथा आपूर्तिकर्ताओं के मध्य मजबूत संबंध स्थापित करने पर ज़ोर देना चाहिए।

पपेन के लाभ

क) प्रोटिओलिटिक क्रिया :

- पापेन द्वारा प्रोटीन को विखंडित करने के कारण इसके विभिन्न वस्तुओं में काम आने के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध होता है।

ख) प्राकृतिक स्त्रोत

- पपीते जैसे प्राकृतिक स्त्रोत से निकाले जाने के कारण प्राकृतिक अवयवों को प्राथमिकता देने वाले विभिन खाद्य उद्योगों की यह सर्वप्रथम प्राथमिकता होती है।

पपेन के उपयोग

इसके फल में लगभग 20%मात्रा पपेन की होती है जो निम्नलिखित उद्देश्यों हेतु काम में आती है:

क) खाद्य उद्योग

- पपेन को विभिन्न खाद्य पदार्थों के प्रसंस्करण में उपयोग में लाया जाता है।

ख) औषधि उद्योग

इन दिनों चिकित्सा विशेषज्ञोंद्वारा कई असाध्य बीमारियों के इलाज

में पपेन का प्रयोग आश्चर्यजनक रूप से प्रभावी सिद्ध हुआ है। वास्तव मे पपेन क उपस्थिति के कारण ही पपीता शारीरिक विकास तथा पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण फल माना जाता है।

- अजीर्ण जैसे पेट के विभिन्न रोगों तथा भूख बढ़ाने के लिए पपेन या इससे निर्मित दवाइयों का लगातार सेवन करने से फायदा होता है।
- पपेन से कैंसर, डिप्थीरिया, अल्सर तथा खूनी बवासीर की औषधियाँ बनती है।
- अल्सर तथा तिल्ली बढ़ने आदिबीमारियों की औषधियों को बनाने में भी लाभकारी है।
- कफ को नाश करने तथा वायु रोग के प्रकोप को खत्म करने में भी पपेन का उपयोग बेहद ही फायदेमंद पाया गया है।
- शरीर में किसी प्रकार की चोट से हुए घावों को भरने की औषधि बनाने में पपेन का उपयोग किया जाता है।
- पानी में मिलाकर कुल्ले करने से बड़े हुए टांसिल में अत्यंत आराम मिलता है।
- पपेनको पानी में घोल बनाकर कुल्ले करने से बड़े हुए टांसिल में बहुत आराम का अनुभव होता है।
- पाचन अंगों के रोगों में पपीता खाना उपयोगी है। कब्ज़व बवासीर जैसे पुरानी बीमारियों के लिए पापेन का लगातार सेवन करने से लाभ होता है।
- पीलिया के रोगी के लिए भीपपेन का सेवन अच्छा पाया गया है।
- पपेन के सेवन से हृदय रोग के साथ मूत्र रोगों में भी लाभ पहुंचता है।

भारत में पपेन उत्पादन का भविष्य

क) बढ़ती मांग

खाद्य, औषधि तथा प्रसाधन सामग्री जैसे विभिन्न उद्योगों में प्राकृतिक एंजाइम्स की बढ़ती मांग पपेन उत्पादन के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं को जन्म देती है।

ख) उपयुक्त प्रजातियाँ

भारत ने पपेन उत्पादन के लिए उपयुक्त पपीते की सीओ 2,सीओ 5, सीओ 6, वाशिंगटन तथा पूसा मेजेस्टी जैसी विशेष किस्में विकसित की हैं।

ग) शोध एवं विकास

वर्तमान में की जा रही शोध पपेन उत्पादन की प्रक्रियाओं तथा प्रयोगों में सुधार ला सकती है।

घ) विभिन्न उपयोग

खाद्य, औषधि तथा प्रसाधन सामग्री जैसे विभिन्न उद्योगों में पपेन के प्रोटिओलिटिक गुणों के कारण विभिन्न उपयोग किए जा रहे हैं।

ड़) भारत से पपेन का निर्यात

अपने उपरोक्त गुणों के कारण पपेन की मांग भारत के अलावा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी बहुत बढ़ गई है। भारत से कई देशों को पपेन का निर्यात किया जाता है। भारत 4662 शिपमेंट्स के साथ विश्व का सबसे बड़ा पपेन निर्यातक देश है। भारत से 24,584,299डॉलर मूल्य का पपेन निर्यात किया जा रहा है। भारत से निर्यात होने वाले पपेन का औसत मूल्य 5.03 डॉलर है। भारत के कुल निर्यात का 42.48% संयुक्त राज्य अमेरिका तथा 14.46% लातविया को किया जाता है। भारत से पपेन का निर्यात नावा शेवा समुद्र, चेन्नई एयर कार्गो तथा तूतीकोरिन इनलैंड कंटेनर डिपो (आईसीडी) बन्दरगाह से किया जाता है।

उपरोक्त कारणों से पपेन उत्पादन रोजगार का एक बेहतर विकल्प बनकर उभरा है। पपीते के सभी पौष्टिक गुणों को दृष्टिगत रखते हुए आप पपीता घर पर उगाएँ। पपीता का पेड़ घर में कम जगह पर भी सुगमता से उगाया जा सकता है। इसके नर तथा मादा वृक्षअलग-अलग होते हैं। अतः फलदार मादा वृक्षोंके साथ नरवृक्ष भी जरूर लगाना चाहिए। यदि पपीते की पपेन के लिए विशिष्ट रूप से विकसित क़िस्मों को उन्नत उत्पादन तकनीक का प्रयोग करके उत्पादित किया जाए तो पपेन की उच्च उपज जरूर प्राप्त होगी। इस प्रकार, पपेन का उत्पादन तथा विदेशों में निर्यात करके कृषक भाई पपीते की खेती से भरपूर मौद्रिक लाभ कमा सकेंगे।

निष्कर्ष

पपेन के व्यावसायिक उत्पादन हेतु हरे एवं बड़े आकार के पूरी तरह से विकसित फलों में स्टेनलेस स्टील के विशेष चाकू का उपयोग कर 2.5 से 3.0 मिलीमीटर गहरा चीरा लगा लेते हैं। फल पर हर बार लंबाई में 3 अथवा 4 चीरे लगाकर सप्ताह में दो बार दूध निकालते हैं। इस प्रकार, फल के सम्पूर्ण जीवनकाल में 13-14 बार दूध निकाला जाता है। जो छाते तथा फलों पर चिपक जाता है। इस दूध को रबड़ अथवा प्लास्टिक के करछे द्वारा बाल्टी में एकत्रित कर लेते है तथा दूध में भार के अनुसार सोडियम मेटाबाइसल्फाइट मिलाकर खूब चलाते हैं तथा छाएदार स्थान पर सूखा लेते हैं अथवा प्रेशर से चलने वाली वायु भट्टी में 500 सेन्टीग्रेड तापमान पर सुखाकर तथा उसके बाद पीसकर बारीक पाउडर बना लेते हैं। जमा हुआ गीला दूध सूखने के पश्चात लगभग 25 प्रतिशत रह जाता है। इसमें छठा भाग अर्थात 15-16 प्रतिशत ही पपेन होता है। पपेन को स्थानीय बाजार अथवा विदेशों में निर्यात करके अतिरिक्त आय कमाई जा सकती है।

संदर्भ

ब्रह्म प्रकाश (2003) भारत में फल एवं सब्जी प्रसंस्करण उद्योग: प्रगति, बढ़ाएँ तथा भविष्य। उद्यमिता 11(9): 5-16.

ब्रह्म प्रकाश (2001) बागवानी उत्पादों के निर्यात की संभावनाएं। खेत और बाजार 2(1): 5-10। स

Anonymous (2025) TNAU Agritech Portal. https://agritech.tnau.ac.in › horti_fruits_papaya.

Choudhary, R., Kaushik, R., Chawla, P. and Manna, S. (2025) Exploring the extraction, functional properties and industrial application of papain from Carica papaya. Journal of the Science of Food and Agriculture 105 (3): 1533-1554.

Desai, U.T. and Wagh, A.N. (1995) Papaya. In: Salunke, D.J. and Kadam, S.S. (Eds.) Handbook of Fruit Science and Technology: Production, Composition, Storagem and Processing. Marcel Dekker, New York, pp. 4-314.

Khatun, M.N., Saeid, A., Mozumder, N.H.M.R. and Ahmed, M. (2023) Extraction, purification and characterization of papain enzyme from papaya. Food Research 7 (2): 241 - 247 (April 2023)

Saran, P.L. and Choudhary, R. (2019) Advances in papaya cultivation. Book Chapter In: Professor Elhadi M. Yahia (Ed.). Achieving Sustainable Cultivation of Tropical Fruits), Edition: 1st, Publisher: Burleigh Dodds Science Publishing Limited, 82, High Street, Sawston, Cambridge, CB 22 3 HJ. DOI:10.19103/AS.2019.0054.15

"केवल एक ही अच्छाई है, ज्ञान, और एक ही बुराई है, अज्ञान।"

– सुकरात

बागवानी फसलों का श्रेणीकरण एवं पैकेजिंग

डॉ. नेहा पाण्डे
भा.कृ. अनु. प.-राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसन्धान संस्थान, खंडवा रोड, इंदौर, म.प्र.
संवादी लेखक का ईमेल : nehapandey.ft06@gmail.com

संशिप्त विवरण

भारत फल व सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है, पर प्रतिवर्ष हमें लगभग 30% फल व सब्जियों के नुकसान का सामने करना पड़ता है। इसका पहला कारण इनमें नमी की व पोषक तत्वों की अधिकता है जो की इनको सुक्ष्मिजियो की बढोतरी के अनुकूल पर्यावरण प्रदान करता है। साथ ही साथ इनमे चयापचय की प्रक्रिया भी काफी तेज होती है। अतः इनका सही प्रबंधन खेतो से होना इनकी गुणवत्ता बनाने के लिए अनिवार्य है। ऐसी फसल होने के साथ भारत में अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा जैसे कि पर्याप्त कोल्ड स्टोरेज, परिवहन नेटवर्क और हैंडलिंग उपकरण की कमी, खंडित आपूर्ति श्रृंखला, बिचौलिए, खराब संचार और परिवहन व प्रसंस्करण में देरी, अनुचित कटाई तकनीक, अपर्याप्त पैकेजिंग और परिवहन के दौरान खराब हैंडलिंग, किसानों को सीमित बाज़ार पहुँच और बाज़ार की जानकारी और उपज बेचने के कुशल तरीकों तक पहुँच की कमी, बागवानी फसलों के ख़राब होने की समस्या को और बड़ा देते है। भारत में बहुत कम फल और सब्जियां (लगभग 2%) संसाधित होते हैं, जिससे उनकी शेल्फ लाइफ कम हो जाती है। इन समस्याओ के समाधान के लिए जिन तकनीकों की आवश्यकता है इस के माध्यम से बताने का प्रयास किया गया है।

परिचय

भारत की कृषि जलवायु परिस्थितियाँ कृषि और बागवानी के लिए आदर्श हैं। हमारे देश की अर्थव्यवस्था भी मुख्य रूप से कृषि प्रधान है। यह फल व सब्जियों के उत्पादन में विश्व में दुसरे स्थान पर है। राष्ट्रीय बागवानी डेटाबेस 2020-21 के अनुसार भारत ने 102.48 मिलियन मेट्रिक टन फल व 200.45 मिलियन मेट्रिक टन सब्ब्जियों का उत्पादन किया। ऍफ़.ए.ओ. 2021 के अनुसार भारत अदरक व भिन्डी का सबसे बड़ा उत्पादक है, आलू, प्याज, गोभी, बंगाल आदि के उत्पादन में इसका दूसरा स्थान है। फलों में देश केले, आम, व पपीते का बड़ा निर्यातक है।

बागवानी फसलें जैसे फल व सब्जियां जीवित कोशिकाओं से बने होते हैं जो कटाई के बाद भी अपना मेटाबोलिज्म कायम रखते हैं। मेटाबोलिज्म के दौरान ये फल व सब्जियां प्राणवायु (ऑक्सीजन) का उपभोग कर कार्बोहाइड्रेट को तोड़ पानी व कार्बन डाई ऑक्साइड का निर्माण करते हैं। यदि आक्सीजन की कमी होती है तो अल्कोहल उत्पन्न होने से दुर्गंद व स्वाद ख़राब हो सकता है। फल व सब्जियों में नमी बहुत अधिक होती है (75-95%) व आद्रता करीब 98% तक होती है, अतः किसी भी सामान्य स्थिति में ये शीघ्रता से सूखते व सिकुड़ते हैं। अतः इनका सही प्रबंधन खेतो से होना इनकी गुणवत्ता बनाने के लिए अनिवार्य है। ऐसी फसल होने के साथ भारत में अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा; खंडित आपूर्ति श्रृंखला, बिचौलिए, खराब संचार और परिवहन व प्रसंस्करण में देरी; अनुचित कटाई तकनीक, अपर्याप्त पैकेजिंग और परिवहन के दौरान खराब हैंडलिंग; किसानों को सीमित बाज़ार पहुँच और जानकारी के कारण बाज़ार की जानकारी और उपज बेचने के कुशल तरीकों तक पहुँच की कमी, बागवानी फसलों के ख़राब होने की समस्या को और बड़ा देते है। भारत में और तो और बहुत कम फल और सब्जियां (लगभग 2%) संसाधित होते हैं, जिससे उनकी शेल्फ लाइफ कम हो जाती है। किसानों को वित्तीय नुकसान: किसानों की आय का नुकसान, आर्थिक अस्थिरता में वृद्धि। इसका सीधा परिणाम खाद्य असुरक्षा जैसे की भोजन की उपलब्धता में कमी से भुखमरी और कुपोषण बढ़ता है। साथ ही इससे खाद्य लागत में वृद्धि होती है जिससे, उपभोक्ताओं के लिए खाद्य कीमतें बढ़ती हैं। पर्यावरण की नज़र से भी बर्बाद हुए भोजन का अर्थ है उत्पादन में लगे संसाधनों जैसे पानी, भूमि और ऊर्जा की बर्बादी। इससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन भी होता है।

समाधान के प्रयास

- बुनियादी ढांचे में निवेश: अधिक कोल्ड स्टोरेज, बेहतर परिवहन नेटवर्क और आधुनिक हैंडलिंग व प्रसंस्करण इकाइयों का विकास।
- कुशल आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन को बढ़ावा देना: किसानों और बाजारों के बीच सीधा संबंध स्थापित करना, किसान सहकारी समितियों को बढ़ावा देना।
- हैंडलिंग प्रथाओं में सुधार: किसानों को कटाई, पैकेजिंग और हैंडलिंग तकनीकों पर प्रशिक्षण प्रदान करना।
- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का समर्थन: निवेश को बढ़ावा देना और मूल्य-वर्धित उत्पादों के विकास को प्रोत्साहित करना।
- प्रौद्योगिकी का उपयोग: IoT-आधारित निगरानी, मांग पूर्वानुमान और कोल्ड चेन लॉजिस्टिक्स जैसी तकनीकों का उपयोग करना। इन चुनौतियों का समाधान करके, भारत फल और सब्जियों में कटाई के

बाद के नुकसान को काफी कम कर सकता है, जिससे खाद्य सुरक्षा बढ़ेगी, किसानों को आर्थिक लाभ होगा और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित होगी।

सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इन बागवानी उत्पादों की सही कटाई, प्रबंधन व पैकेजिंग की तकनीकों का अनुकरण करने की आवश्यकता है।

चित्र 1: ताज़े फलों और सब्जियों को खेत से उपभोक्ता तक पहुचने की श्रंखला:

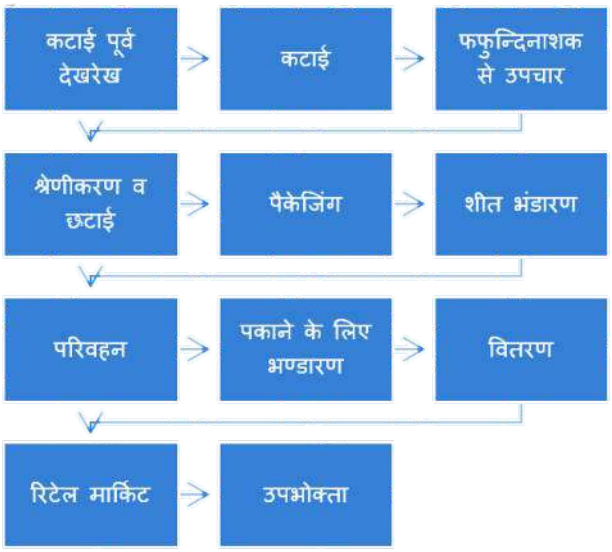

फलों व सब्जियों की कटाई

उत्पादन उपरांत फलों व सब्जियों की कटाई इन उत्पादों को किसान से उपभोक्ता तक पहुचने का प्रथम चरण है। परिपक्वता फल व सब्जियों का फसल के लिए तैयार होने का संकेत है। इस बिंदु पर, फल या सब्जी का खाने योग्य हिस्सा पूरी तरह से आकार में विकसित हो जाता है, अतः इसकी उपभोग या अन्य प्रसंस्करण क्रियाओं के लिए कटनी की जा सकती है। हर बागवानी उत्पाद की कटाई का तरीका भिन्न होता है जो की उस उत्पाद के संरचना पर निर्भर करता है। कुछ फल व सब्जियां हाथ से चुनी जा सकती हैं, जबकि कुछ की कटाई के लिए खास क्लिपर की आवश्यकता होती है। कुछ फल जैसे आम लम्बे हुक या क्लिपर वाले उपकरणों के साथ चुने जाते हैं। आजकल अधिकांश कटाई यंत्रो की सहायता से की जाती है, कटाई के दौरान इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि फलों (खट्टे फल) को चोट न पहुँचे अन्यथा इनके जीवन काल पर बुरा असर पड़ता है । इसी प्रकार सब्जियों को परिपक्व होने के सही समय पर न काटने से उनमे रेशे की मात्रा बढ़ जाती है जो इसके बाजारी मूल्य पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

बागवानी उत्पाद जलवायु से बहुत आसानी से प्रभावित होते हैं और उनकी प्रकृति जल्दी खराब होने वाली होती है। कटाई सही प्रकार से होने के बाद भी अधिक नमी व सुपाच्य पोषक तत्व होने के कारण ये फल व सब्जियां अधिक समय तक भंडारित नहीं की जा सकती चूकी इनमे सूक्ष्मजीव पनप कर इन्हें ख़राब कर सकते हैं। बागवानी उपज एक जीवित ऊतक है, कटाई के बाद भी, उच्च श्वसन दर और परिपक्वता से जुड़ी अन्य चयापचय प्रक्रियाएं इनमें से कुछ उत्पाद के पूरे मार्केटिंग चक्र के दौरान भी जारी रहती हैं। यह ताजा उपज के भंडारण और पैकेजिंग में एक विशेष समस्या पैदा करता है। बागवानी उत्पादों के लिए उपयुक्त पैकेज विकसित करने के लिए उपज का जीव विज्ञान समझना जरूरी है। एक पैकेजिंग प्रणाली विकसित करते समय, निम्नलिखित उत्पाद विशेषताओं पर विचार किया जाना चाहिए।

श्वसन: ताजी उपज कटाई के बाद भी सांस लेती है। इस प्रक्रिया के दौरान, ऑक्सीजन का उपयोग किया जाता है और कार्बन डाइऑक्साइड निकलता है। खराब होने की दर उच्च श्वसन दर के समानुपाती होती है। तेजी से सांस लेने से उपज तेजी से पकती है। अगर ऑक्सीजन की उपलब्धता है, इसके परिणामस्वरूप रासायनिक प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन, कोशिकाओं का टूटना, फलो व सब्जियों का बेस्वाद होना और अंत में क्षय हो सकती है।

नमी: फलों और सब्जियों में नमी की मात्रा बहुत अधिक होती है - 75% से 95%। परिवेशी परिस्थितियों में, नमी की कमी से उत्पाद तेजी से सूख जाता है जिससे इसमें मुरझाना, सिकुड़ना, कठोरता और अन्य नुकसान हो सकते है । नमी की कमी से भंडारण और परिवहन के दौरान वजन घटता है।

सूक्ष्म जीव: ताजे फलों और सब्जियों की खराब होने का एक अन्य सामान्य कारण सूक्ष्म जीवों का प्रकार होता है जैसे खमीर, बैक्टीरिया, मोल्ड। यदि फल, की सतह पर चोट है, सूक्ष्म जीव इसके माध्यम से आक्रमण कर, आंतरिक क्षय का कारण बन सकते हैं। इसलिए पैकेजिंग से पहले, फलों और सब्जियों की छंटाई जरूरी है।

रंग, बनावट, गंध और स्वाद में परिवर्तन: सामान्य पकने के दौरान, ताज़ा उत्पादों के रंग, बनावट, गंध और स्वाद में परिवर्तन होता है। पकने के आदर्श बिंदु से परे इसकी गुणवत्ता बिगड़ जाती है। इसलिए, लक्ष्य फलों को पकने की सही अवस्था में उपभोक्ताओं तक पहुंचाना होता है।

तापमान: श्वसन की प्रक्रिया तापमान पर निर्भर करती है, इसलिए इसे धीमा करना आवश्यक है। प्रशीतन के तहत उपज का भंडारण करके श्वसन दर को कम रखा जाता है। प्रत्येक फल का एक आदर्श भंडारण

तापमान होता है। बहुत कम तापमान ठंड लगने वाली चोटों का कारण बनता है जो ताजा उपज के नाजुक ऊतकों को नुकसान पहुंचाता है।

वाष्पशील: कुछ ताजी उपज पकने के दौरान इथिलीन जैसे वाष्पशील यौगिक छोड़ती हैं। अगर ये वाष्पशील पदार्थों को बाहर निकलने नहीं दिया जाता है, अस्वीकार्य गंध विकसित होती है और उपज तेज़ी से पकती है।

हवादार: चूंकि बागवानी उत्पाद कटाई के बाद भी सांस लेते हैं, इसलिए परिवहन के दौरान छेद युक्त पैकेज प्रदान किया जाना चाहिए जिनके माध्यम से ठंडी हवा लगातार परिचालित होती रहे।

उपभोक्ता तक पहुचने पर ताजा बागवानी उपज की गुणवत्ता, निम्नलिखित बिन्दुयों पर निर्भर करती है:

• फसल की प्रारंभिक गुणवत्ता

• भौतिक हस्तांतरण के दौरान बरती जाने वाली सावधानी

• कटाई के बाद से अब तक की अवधि

• भंडारण वातावरण

बागवानी फसलों की कटाई का सही समय:

- दिन के ठन्डे प्रहर के दौरान (6-8 ए.ऍम)
- गर्मी में कटाई से फसल मुरझा जाती है।
- बारिश के समय व तुरंत बाद कटाई न करेंइससे उनकी शेल्फ जीवन पर बुरा असर पड़ता है।

कटाई उपरांत बागवानी फसल प्रबंधन

संतरों व अन्य खट्टे फलो की गलत देखभाल से आयल रिसाव होता है जिस से फफूंदी की उत्पति की सम्भावना बड जाती है। कई फलों में जैसे भिन्डी, केले आदि में क्षति पहुचने से भूरे व काले धब्बे आ जाते हैं, जिससे वे अनाकर्षक हो जाते हैं तथा इनमें गंध व बुरा स्वाद उत्पन्न हो सकता है। चोटिल फलों व सब्जियों में श्वसन दर अधिक देखा गया है, जिस से उनका जीवनकाल भी घट जाता है।

भारत में कटाई व प्रबंधन में होने वाली लापरवाही से प्रति वर्ष 6-15% फल व 4.9-11.6% सब्ब्जियाँ ख़राब हो जाती हैं (नाबार्ड कंसल्टेंसी सर्विस प्राईवेट लिमिटेड स्टडी, 2022)। इस उच्च स्तर की बर्बादी और मूल्य हानि, काफी हद तक भण्डारण व प्रबंधन सुविधायों के बुनियादी ढांचे में कमी के कारण होती है। हमारे देश की जलवायु भी इन उत्पादों के जीवन काल को कम करने में एक अहम् भूमिका निभाती है। इस प्रकार फलों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता घटकर लगभग प्रति दिन 80 ग्राम रह जाती है, जो संतुलित आहार के लिए आवश्यक मात्रा की लगभग आधी है। इसलिए भारी नुकसान को रोकने और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए फलों और सब्जियों की कटाई और कटाई के बाद के सभी कार्यों में उचित वैज्ञानिक विधि की आवश्यकता है।

पोस्ट हार्वेस्ट हैंडलिंग में निम्नलिखित प्रक्रियाएं शामिल हैं

1. श्रेणीकरण, छंटाई और आकार देना
2. फल व सब्जियों को धोना
3. प्रशीतलन
4. पैकेजिंग
5. भण्डारण

श्रेणीकरण, छंटाई और आकार देना

श्रेणीकरण में पहला चरण उन विशिष्टताओं को समझना है जिन्हें आपको पूरा करना आवश्यक है। बुनियादी मानकों को खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (ऍफ़. एस. एस. ए. आई.) में लिखा गया है।

आधारभूत श्रेणीकरण मानक इस प्रकार हैं:

- अखंड
- अक्षत (सड़ा हुआ या गंभीर रूप से चोटिल/क्षतिग्रस्त नहीं है)
- असामान्य बाहरी नमी से मुक्त
- पर्याप्त रूप से, लेकिन अधिक परिपक्व/विकसित नहीं।
- दिखने में ताज़ा
- कीड़ों से व्यावहारिक रूप से मुक्त
- साफ़
- बाहरी गंध या स्वाद से मुक्त

ग्रेडिंग के उद्देश्य

- अधिक कीमत पाने के लिए।
- विभिन्न विपणन मूल्यों के लिए।
- विश्व बाजार में समायोजित करने के लिए।
- विपणन की सुविधा के लिए।
- पैकिंग की सुविधा के लिए।
- परिवहन की सुविधा के लिए।
- शेल्फ लाइफ बढ़ाने के लिए।

आम तौर पर, फलों को आकार, वजन, विशिष्ट गुरुत्व, रंग, किस्म आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। आकार के आधार पर लगभग सभी प्रकार के फलों में आकार की ग्रेडिंग का पालन किया जाता है। फलों को छोटे, मध्यम, बड़े और अतिरिक्त बड़े के रूप में वर्गीकृत किया गया है। परिपक्वता के आधार पर, फलों को

अपरिपक्व, ठीक से परिपक्व और अधिक परिपक्व के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

परिपक्वता के आधार पर ग्रेडिंग गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ दोनों तय करती है। अल्फांसो और पैरी आम के फलों को वजन के आधार पर 200 ग्राम से कम, 200-249 ग्राम, 250-299 ग्राम, 300-349 ग्राम और 350 ग्राम से अधिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इन ग्रेडों में से, भारित ग्रेड 250-299g में लगभग 30% फल होते हैं। सब्जियां जैसे करेला, भिंडी, शिमला मिर्च, बैंगन, हरी मिर्च आदि को भी आकार के आधार पर छोटे, मध्यम और बड़े के रूप में 3 ग्रेड में वर्गीकृत किया गया है। टमाटर जैसी सब्जियों को रंग के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

हाथ / फील्ड ग्रेडिंग

जहां फसलों की कटाई हाथ से की जाती है, वहां ज्यादातर ग्रेडिंग आमतौर पर उसी समय की जाती है। यह प्रणाली इसलिए धन की बड़ी बचत का प्रतिनिधित्व करता है। कई फसल काटने वाली प्रणालियों में, ऐसी फसलें जो कम या अधिक आकार की होती हैं, या कम पकी होती हैं, अगली कटाई होने तक पौधे पर रहती हैं। गुणवत्ता ग्रेड नहीं बनाने वाली फसलों को खेत में छोड़ा जा सकता है। यह तकनीक उन फसलों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जो सबसे अधिक नुकसान की संभावना रखते हैं जैसे कि फल, पत्तेदार सब्जियां और अपरिपक्व फल सब्जियां (उदाहरण के लिए खीरे) जिनकी आमतौर पर बहुत कोमल त्वचा होती है जो आसानी से क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। जहां संभव हो उपज को सीधे कंटेनरों में काटा जाना चाहिए जहां उन्हें ले जाया/बेचा जाएगा (अक्सर प्लास्टिक के क्रेट या गत्ते के बक्से)। क्षेत्र में सफल ग्रेडिंग के लिए कुशल श्रम तक पहुंच आवश्यक है। फसल को आर्थिक रूप से काटने के लिए श्रमिकों को एक विशेष कार्य दर प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इसका तात्पर्य यह है कि उन्हें फसल को यथोचित तेज गति से स्थानांतरित करने की आवश्यकता है, लगातार दूसरे निर्णय लेते हुए कि क्या लेना है और क्या छोड़ना है, इस बात का ध्यान रखते हुए कि उत्पादन को नुकसान न पहुंचे। इसके लिए उच्च स्तर के कौशल और अनुभव की आवश्यकता होती है।

मशीन ग्रेडिंग

जहां फसलें मशीन द्वारा काटी जाती हैं, आमतौर पर आलू और गाजर जैसी जड़ वाली फसलें, काटी गई फसल को वापस शेड में ले जाया जाता है और एक यांत्रिक ग्रेडर के ऊपर से गुजारा जाता है। फलों और सब्जियों के लिए ग्रेडिंग मशीनें, फलों और सब्जियों के लिए चार प्रकार की ग्रेडिंग मशीनें हैं। वे स्क्रीन, रोलर ग्रेडर और डायवर्जिंग बेल्ट ग्रेडर और वेट ग्रेडर हैं।

छलनी: ऐसे कई प्रकार के फल और सब्जियां हैं जिन्हें तांबे, स्टेनलेस स्टील या प्लास्टिक से बनी कंपन छलनी की मदद से वर्गीकृत किया जाता है, जो उत्पादों के साथ रासायनिक रूप से प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। ग्रेड की जाने वाली सामग्री को वाइब्रेटिंग या रोटरी स्क्रीन पर पास किया जाता है। यह स्क्रीन शुरुआत में सबसे छोटी सामग्री फिर मध्यम और अंत में सबसे बड़ी सामग्री को पारित करने के लिए छिद्रित होती है। इस प्रकार यह सेब, संतरा, किन्नो जैसे फलों की अलग-अलग श्रेणी और आलू, टमाटर जैसी सब्जियाँ आदि बनाती है।

रोलर ग्रेडर: इस प्रकार के ग्रेडर तेज, सटीक होते हैं और फलों को बहुत कम नुकसान पहुंचाते हैं। इनका व्यापक रूप से फल उद्योग में उपयोग किया जाता है। प्रत्येक रोलर वामावर्त दिशा में घूमता है। फल को लगातार घुमाया जाता है ताकि प्रत्येक टुकड़े को ग्रेडर में जगह के साथ अपना न्यूनतम आयाम दर्ज करने का अवसर मिले। छोटे फलों, टहनियों और पत्तियों को हटाने के लिए रोल के बीच निश्चित स्थान वाले रोलर कन्वेयर का उपयोग किया जाता है (चित्र 2)।

चित्र 2: फलों का ग्रेडर

डायवर्जिंग बेल्ट ग्रेडर: यह व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला ग्रेडर है, जिसमें दो बेल्ट होते हैं। चलते ही ये बेल्ट अलग हो जाते हैं। फलों को पेटियों के ऊपर और बीच में ले जाया जाता है। चूंकि दो बेल्ट के बीच की दूरी धीरे-धीरे और व्यवस्थित रूप से बढ़ती है, छोटे टुकड़े यात्रा की शुरुआत में बेल्ट के बीच गिरेंगे जबकि बड़े टुकड़े आगे ले जाए जाएंगे और बाद में गिरा दिए जाएंगे।

वजन ग्रेडर: उत्पाद के वजन के आधार पर भी ग्रेडिंग की जाती है। यह विधि सटीक, तेज है और फलों या सब्जियों को कम से कम नुकसान होता है। इसका उपयोग बड़े आकार के उत्पादों जैसे सेब, संतरा, किन्नू, आम, आलू, टमाटर, अंडे आदि के लिए किया जा सकता है। इन्हें छँटाई सामग्री के लिए विशेष रूप से अनुकूलित किया जाता है, जिन्हें उनकी बनावट या आकार के कारण अन्य तरीकों से नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। ग्रेडिंग की जाने वाली सामग्री को स्वचालित फीड के माध्यम से अलग-अलग कपों में रखा जाता है, जिसे बाद में सॉर्टर के माध्यम से पास किया जाता है जहां इसे स्प्रिंग लोडेड ट्रिप्स की मदद से अनुक्रमित किया जाता भारी अंश शुरुआत में डिस्चार्ज होता है जबकि हल्का अंश

अगले और सबसे हल्का अंत में होता है। इस प्रकार की ग्रेडिंग सामग्री के आकार या बनावट पर निर्भर नहीं करती है।

एक्सपैंडिंग पिच रबर स्पूल पोटेटो साइजर: इसमें दो ड्राइविंग रोलर्स होते हैं जिनमें उत्तरोत्तर बढ़ती पिच के पेचदार खांचे होते हैं जो रबर स्पूल के साथ रॉड को घुमाते हैं। इस तरह के तंत्र का लाभ यह है कि वांछित के रूप में कई प्रकार के आलू प्राप्त किए जा सकते हैं। मशीन को एक हॉर्सपावर की मोटर से चलाया जा सकता है और एक घंटे में 2-3 टन आलू की ग्रेडिंग की जा सकती है। कंदों को यांत्रिक क्षति नगण्य है।

स्व-चालित आलू कंबाइन- यह एक ऑपरेशन में आलू के कंदों को खोद सकता है, अलग कर सकता है, साफ कर सकता है और बैग में भर सकता है। यह लगभग 0.6 हेक्टेयर/दिन कवर कर सकता है। इस मशीन से होने वाली हानियाँ बहुत भारी होती हैं। कम मिट्टी की नमी पर काटे गए आलू के कंद उच्च मिट्टी की नमी पर काटे गए आलू के कंदों की तुलना में कम नुकसान पहुंचाते हैं। रेतीली दोमट मिट्टी में काटे गए आलू के कंदों को भारी मिट्टी में काटे गए आलू के कंदों की तुलना में कम नुकसान होता है।

ग्रेडिंग के दौरान क्षति को कम करने में मदद के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं।

1. हॉपर लोड करते समय, ट्रेलर/बिन/बॉक्स से हॉपर फ्लोर पर 'ड्रॉप' को कम से कम करें। प्रभाव/क्षति को कम करने के लिए अधिकांश हॉपर रबर से ढके होते है।

2. यह सुनिश्चित करने के लिए लिफ्ट पर फसल का एक समान प्रवाह बनाए रखें कि यह जितना संभव हो सके मलबे से अलग हो और मिट्टी को हटाने और संभावित रूप से हानिकारक पत्थरों को सुनिश्चित करे।

3. किसी भी तेज किनारों को पहचानें और हटा दें जिससे नुकसान हो सकता है। इसमें सभी कन्वेयर, निरीक्षण टेबल और बैगिंग इकाइयों के किनारे शामिल हैं।

4. सुनिश्चित करें कि जाल बिना किसी उभार के अच्छी स्थिति में हैं जिससे उत्पाद और वास्तव में मशीन के अन्य भागों को नुकसान हो सकता है

5. मशीन के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक सभी गिरने वाली प्रक्रियाओं को कम से कम करें

6. यदि वर्गीकृत उत्पाद बैग के बजाय बक्से में जा रहा है, तो पुआल से भरे बैग या समान के साथ गिरावट को कम करें।

छंटाई और आकार निर्धारण

छंटाई और आकार निर्धारण सुदृढ़ता, दृढ़ता, सफाई, आकार, वजन, रंग, आकार, परिपक्वता, रोगों, कीट क्षति और यांत्रिक चोट पर आधारित होते हैं। नुकसान को कम करने और गुणवत्ता बनाए रखने के लिए पैकेजिंग भंडारण, परिवहन या विपणन से पहले कटाई के बाद की देखभाल में पालन की जाने वाली यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है (चित्र 3)।

चित्र 3: फलों के परिक्षण हेतु कन्वेयर बेल्ट।

अतिरिक्त संचालन

ग्रेडिंग के साथ, कुछ अतिरिक्त संचालन जिसमें धुलाई, प्री कूलिंग, डिग्रीनिंग, क्योरिंग, वैक्सिंग, कवकनाशी और अन्य रासायनिक उपचार शामिल हैं। ये प्रक्रियाएं; पैकेजिंग, भंडारण और परिवहन से पूर्व की जाने वाले प्रारंभिक चरण हैं।

धुलाई

धुलाई से मिट्टी, स्केल कीट, कालिखदार फफूंदी, कवकनाशी और कीटनाशक अवशेष को प्रभावी रूप से कम किया जाता है (चित्र 4)। प्रभावी धुलाई के लिए पानी में डिटर्जेंट मिलाया जाता है। सतही जल की अधिकता को गर्म हवा के झोंके से सुखाया जाता है। फलों के न्यूनतम ताजे प्रसंस्करण में पहला कदम आम तौर पर अवांछित गंदगी, कीटनाशक अवशेषों, पौधों के मलबे, मिट्टी, कीड़ों और विदेशी पदार्थों को खत्म करने के लिए और एंजाइमी मलिनकिरण प्रतिक्रियाओं को धीमा करने के लिए पूरे फल को धोना है (सोलिवा-फॉर्च्यूनी और मार्टिन-एन-बेलोसो, 2003))। फलों की सतह की स्वच्छता के लिए नल के पानी या सोडियम या कैल्शियम हाइपोक्लोराइट और अन्य लवणों का उपयोग किया जाता है।

चित्र 4: स्वचालित फल व सब्जी जेट स्प्रे धुलाई यन्त्र

सोडियम हाइपोक्लोराइट (NaClO) फलों की सतह की सफाई के लिए सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला नमक है।

हालांकि यह कम पीएच स्तर पर अधिक कुशल है, हालाँकि पी एच 6-7.5 धातु के क्षरण के जोखिम को कम करने के लिए चुना जाना चाहिए (बीचैट, 2000)।

धुलाई और कीटाणुशोधन धुलाई किसी भी पौधे के उत्पादन की तैयारी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है (सेपर्स, 2001)। वास्तव में, उत्पादन श्रृंखला में धुलाई और कीटाणुशोधन ही एकमात्र चरण हैं जिसमें संभावित रोगजनकों सहित माइक्रोबियल भार में कमी प्राप्त की जा सकती है। प्रकाशित प्रभावोत्पादकता डेटा इंगित करता है कि धुलाई उत्पाद पर माइक्रोबियल आबादी को 90 से 99% कटौती से कम करने में सक्षम नहीं है जो सूक्ष्मजीव विज्ञानी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अपर्याप्त हैं। पीने योग्य पानी के साथ छिड़काव करके धुलाई बहुत आसानी से प्राप्त की जा सकती है, हालांकि, आधुनिक वातन "जकूज़ी" वाशिंग सिस्टम में आम तौर पर तीन अलग-अलग वाशिंग चरण और तीन टैंक होते हैं। इनमें से पहले टैंक का उद्देश्य क्षेत्र की सामान्य गंदगी और मलबे को खत्म करना है। इस धोने के पानी का सूक्ष्मजीवविज्ञानी भार तेजी से बढ़ता है; इसलिए, पानी को छानने और ताज़ा करने, उत्पाद से पानी का अनुपात और कीटाणुनाशक एजेंट के उपयोग से उचित जल प्रबंधन को लागू किया जाता है (लोपेज़-आलवेज़ आदि, 2010; होल्वोएत आदि, 2011)। दूसरे टैंक में, माइक्रोबायोलॉजिकल लोड और कम हो जाता है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण कार्य धोने और ठंडा करने की प्रक्रिया के दौरान क्रॉस-संदूषण को कम करना है (लुओ आदि, 2011)। अंतिम चरण रिंसिंग चरण होना चाहिए, जिसमें कीटाणुनाशक एजेंट की बहुत कम खुराक की आवश्यकता होती है।

क्लोरीन अभी भी एक कीटाणुशोधन एजेंट के रूप में सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला विकल्प है, जो धुलाई के दौरान उत्पाद के सुक्ष्माणु क्रॉस-संदूषण को रोकने में सक्षम है (लोपेज़-गल्वेज़ आदि, 2009; लुओ आदि, 2011)। फ्रेश-कट उद्योग क्लोरीन डाइऑक्साइड (ClO_2), कार्बनिक अम्ल, H_2O_2, चतुर्धातुक VI अमोनियम यौगिक, ट्राइसोडियम फॉस्फेट, आयोडीन यौगिक, अल्कोहल, एनीओनिक और नॉनऑनिक सतह-सक्रिय एजेंट, एल्डिहाइड, फॉस्फोरिक एसिड, सिस्टीन, मिथाइल जैसोनेट, और बायोफ्लेवोनोइड्स का प्रयोग करता आ रहा है। धोने के पानी में क्रॉस-संदूषण को रोकने के लिए सिद्ध किए गए भौतिक तरीकों में अलट्रासाउंड, उच्च दबाव, पराबैंगनी विकिरण, रेडियो-आवृत्ति, और आयनीकरण विकिरण प्रक्रिया शामिल हैं। एंजाइमैटिक ब्राउनिंग को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किए जाने वाले यौगिकों में सल्फाइट्स और एस्कॉर्बिकैसिड शामिल हैं, जो पीपीओ अवरोधकों और रोगाणुरोधी एजेंटों के रूप में कार्य करते हैं।

डीवाटरिंग

पौधे के ऊतकों को नुकसान से बचाने के लिए, उत्पाद की नमी की मात्रा को कम करने, और सेल रिसाव को हटाने के लिए गीली सतहों को सुखाना या डीवाटरिंग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए जो सुक्ष्मणुओं के पनपने का समर्थन कर सकते हैं (सोलिवा-फॉर्च्यून और मार्टीन बेलोसो, 2003)। डिवाटरिंग सिस्टम में रेनिंग डिवाइस, चीज़क्लोथ के साथ सौम्य निष्कासन, सेन-ट्राइफुगल स्पिन ड्रायर्स, वाइब्रेटिंग रैक, रोटेटिंग कन्वेयर, हाइड्रोसीव्स, तेज हवा और स्पिनलेस सुखाने वाली सुरंगें शामिल हैं। उच्च केन्द्रापसारक (सेन्ट्रीफ्यूगल) बल न केवल पानी को हटाता है, बल्कि यह ऊतकों को भी तोड़ता और कुचलता है (एवेनैनेन, 2000)। सेंट्रीफ्यूगेशन का समय और गति, प्रत्येक उत्पाद के लिए समायोजित किए जाने वाले प्रमुख पैरामीटर हैं। ऊतक क्षति को कम करने के लिए और इसके परिणामस्वरूप पत्तेदार सब्जियों में माइक्रोबियल गिरावट, जो अपकेंद्रित्र का सामना करने के लिए बहुत नाजुक हैं, एक छिद्रित कन्वेयर बेल्ट पर मजबूर ठंडा हवा इंजेक्ट किया जाता है जो उत्पाद, या एयर-बेड कन्वेयर को ट्रांसपोर्ट करता है (चित्र 5)।

बिना सोचे-समझे जीवन जीना व्यर्थ है।"

- सुकरात

द्वितीय हरित क्रांति के संवर्धन में आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की भूमिका: भारतीय दृष्टिकोण

डॉ.विराज कांबले, डॉ.रत्नापरखे मिलिंद, डॉ.गिरिराज कुमावत, डॉ.मच्छिंद्र निर्गुडे, डॉ.विशाल थोरात
डॉ.नेहा पांडे, डॉ.वंगाला राजेश, डॉ.संजीव कुमार, डॉ.लोकेश कुमार मीणा एवं डॉ.पुनम कुचलान
संवादी लेखक का ई-मेल: viraj.iari@gmail.com

सारांश

भारत इस समय अपनी कृषि विकास यात्रा के एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा है। 1960–1980 के दशक की प्रथम हरित क्रांति ने देश को खाद्य अभाव की स्थिति से निकालकर खाद्य आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया, किंतु समय के साथ इसके लाभ स्थिर हो गए हैं और कुछ मामलों में इसने अनपेक्षित पारिस्थितिक तथा सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। उत्पादन कारकों की घटती दक्षता, जलवायु परिवर्तनशीलता, उभरते कीट-रोग तनाव, भूजल का तीव्र क्षय तथा पोषण असुरक्षा जैसी समस्याओं ने कृषि विकास के लिए एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता को रेखांकित किया है, जिसे अब व्यापक रूप से "द्वितीय हरित क्रांति" कहा जा रहा है।

इसी संदर्भ में, आनुवंशिक रूप से परिवर्तित (GM) फसलें सतत कृषि गहनता प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चर्चित किंतु संभावनाशील तकनीकी हस्तक्षेपों में से एक के रूप में उभरी हैं। यह समीक्षा द्वितीय हरित क्रांति को आगे बढ़ाने में GM फसलों की भूमिका का समालोचनात्मक मूल्यांकन करती है, जिसमें भारत पर विशेष ध्यान दिया गया है तथा चर्चा को वैश्विक स्तर पर इनके अंगीकरण के रुझानों और उपलब्ध अनुभवजन्य साक्ष्यों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

यह लेख पारंपरिक ट्रांसजेनिक तकनीकों की तुलना उभरती जीनोम एडिटिंग (Genome editing) विधियों—विशेष रूप से CRISPR-Cas प्रणालियों—से करता है और यह विश्लेषण करता है कि भारत में नियामक सुधार किस प्रकार अधिक तेज़, सुरक्षित और सामाजिक रूप से स्वीकार्य फसल सुधार को संभव बना सकते हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि यदि GM फसलों को सुदृढ़ कृषि-प्रबंधन पद्धतियों, वैज्ञानिक जैव-सुरक्षा मूल्यांकन तथा पारदर्शी शासन ढाँचे के साथ एकीकृत किया जाए, तो वे बढ़ते जलवायु एवं संसाधन प्रतिबंधों के बीच उत्पादकता, सहनशीलता और सततता को सुदृढ़ करते हुए भारत की द्वितीय हरित क्रांति की आधारशिला सिद्ध हो सकती हैं।

परिचय

प्रथम हरित क्रांति के दौरान प्राप्त उल्लेखनीय उत्पादकता वृद्धि ने भारत सहित अनेक विकासशील देशों में खाद्य सुरक्षा की एक सुदृढ़ आधारशिला रखी। किंतु दीर्घकाल तक इनपुट-प्रधान कृषि उत्पादन प्रणालियों पर निर्भरता के परिणामस्वरूप सीमांत लाभों में कमी, पर्यावरणीय क्षरण तथा जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। प्रमुख अनाज फसलों में उपज की स्थिरता, मृदा उर्वरता में गिरावट, भूजल संसाधनों का क्षय, तथा वर्षा-आधारित और पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों में बने हुए उपज अंतर यह स्पष्ट करते हैं कि भविष्य की खाद्य, चारा एवं पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पारंपरिक कृषि दृष्टिकोण अपर्याप्त होते जा रहे हैं (Tilman et al., 2002; Pingali, 2012; FAO, 2017)।

इसी पृष्ठभूमि में द्वितीय हरित क्रांति एक वैचारिक एवं रणनीतिक ढाँचे के रूप में उभरी है, जिसका उद्देश्य कृषि उत्पादकता वृद्धि को पर्यावरणीय सततता और प्रणालीगत सहनशीलता के साथ संतुलित करना है। पूर्ववर्ती दृष्टिकोणों के विपरीत, जो मुख्यतः बाह्य इनपुट्स के माध्यम से उपज बढ़ाने पर केंद्रित थे, द्वितीय हरित क्रांति सतत गहनता (sustainable intensification) पर बल देती है—अर्थात भूमि, जल और पोषक तत्वों की प्रति इकाई खपत पर उत्पादन बढ़ाना, साथ ही पर्यावरणीय दुष्प्रभावों को न्यूनतम करना और जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में अनुकूलन क्षमता को सुदृढ़ करना (Godfray et al., 2010; Rockström et al., 2017)। यह परिवर्तन स्वभावतः प्रणालीगत है, जिसमें किसी एक तकनीकी समाधान पर निर्भर रहने के बजाय फसल आनुवंशिकी, सटीक कृषि पद्धतियाँ, जलवायु-स्मार्ट प्रबंधन उपाय तथा सहायक संस्थागत एवं नीतिगत व्यवस्थाओं में हुई प्रगति का समन्वय शामिल है (World Bank, 2008; Pingali et al., 2019)।

इस प्रकार के संक्रमण को साकार करने के लिए ऐसी फसल सुधार रणनीतियों की आवश्यकता है जो जैविक और अजैविक तनावों के कारण उत्पन्न उपज अस्थिरता को प्रभावी रूप से संबोधित कर सकें,

क्योंकि ये तनाव विकासशील देशों की कृषि प्रणालियों में उत्पादन हानि का एक प्रमुख कारण हैं। इस संदर्भ में, जनेटिकली मॉडिफ़ाइड (GM) क्रॉप्स द्वितीय हरित क्रांति को आधार प्रदान करने वाले तकनीकी साधनों का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। वैश्विक स्तर पर किए गए मेटा-विश्लेषण और दीर्घकालिक अंगीकरण अध्ययनों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हुआ है कि GM क्रॉप्स मुख्यतः जोखिम-न्यूनन प्रौद्योगिकियों के रूप में कार्य करती हैं—कीट, खरपतवार और रोगों के कारण होने वाली क्षति को कम करके प्राप्त की जा सकने वाली उपज की रक्षा करती हैं, साथ ही कीटनाशकों के उपयोग में कमी लाकर कृषकों की आर्थिक लाभप्रदता में वृद्धि करती हैं (Qaim & Zilberman, 2003; Klümper & Qaim, 2014; NAS, 2016)।

भारत में कृषि जैव-प्रौद्योगिकी की भूमिका ऐतिहासिक रूप से नियामक, राजनीतिक तथा सामाजिक बहसों के कारण सीमित रही है, जिसके परिणामस्वरूप पर्याप्त वैज्ञानिक क्षमता होने के बावजूद केवल बीटी कॉटन (Bt cotton) का ही वाणिज्यिक स्तर पर अंगीकरण संभव हो पाया है। तथापि, हाल के नीतिगत विकास—विशेष रूप से SDN-1 और SDN-2 genome-edited crops को नियामक छूट दिया जाना—भारत के फसल जैव-प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण में एक संभावित निर्णायक मोड़ का संकेत देते हैं। Genome editing technologies, विशेषकर CRISPR-Cas systems, विदेशी डीएनए को सम्मिलित किए बिना सटीक आनुवंशिक परिवर्तन संभव बनाती हैं, जिससे फसल सुधार की प्रक्रिया अधिक तीव्र, वैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ तथा सामाजिक रूप से स्वीकार्य बनती है (Qaim, 2020; FAO, 2022)। इस विकसित होते परिदृश्य में, GM तथा SDN-1, SDN-2 genome-edited crops भारत की खाद्य सुरक्षा, जलवायु सहनशीलता और कृषि सततता से जुड़ी परस्पर संबद्ध चुनौतियों के समाधान में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकती हैं और इस प्रकार द्वितीय हरित क्रांति को प्रभावी रूप से उत्प्रेरित कर सकती हैं।

2. आनुवंशिक रूप से परिवर्तित (GM) फसलें: साक्ष्य आधार और द्वितीय हरित क्रांति से प्रासंगिकता

2.1 GM फसलों की अवधारणा एवं कार्यात्मक भूमिका

जनेटिकली मॉडिफ़ाइड (GM) क्रॉप्स का विकास recombinant DNA तकनीकों के माध्यम से किया जाता है, जो ऐसे विशिष्ट जीनों का सटीक समावेशन संभव बनाती हैं, जिनसे कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण गुण प्राप्त होते हैं और जिन्हें पारंपरिक प्रजनन विधियों से प्राप्त करना कठिन या अत्यधिक समयसाध्य होता है। इन गुणों में मुख्यतः कीट-प्रतिरोध, खरपतवारनाशी सहनशीलता, रोग-प्रतिरोध, अजैविक तनाव सहनशीलता तथा गुणवत्ता संवर्धन शामिल हैं। पारंपरिक प्रजनन के विपरीत, जो केवल यौन-संगत जीन पूलों के भीतर पुनर्संयोजन पर आधारित होता है, GM तकनीक लक्षित आनुवंशिक हस्तक्षेप की अनुमति देती है, जिससे फसल सुधार की गति और दायरा दोनों में विस्तार होता है।

द्वितीय हरित क्रांति के परिप्रेक्ष्य में, GM फसलों को केवल उपज बढ़ाने वाली तकनीकों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इन्हें जोखिम-न्यूनन एवं उपज-स्थिरीकरण करने वाले हस्तक्षेपों के रूप में समझा जाना अधिक उपयुक्त है। इनका प्रमुख योगदान जैविक तनावों और प्रबंधन संबंधी सीमाओं के कारण होने वाली हानियों को कम करके प्राप्त की जा सकने वाली उपज की रक्षा करना है, जो विकासशील देशों की कृषि प्रणालियों में उपज अस्थिरता के प्रमुख कारण हैं। यह कार्यात्मक भूमिका सतत गहनता के उद्देश्यों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है, जहाँ उपज स्तरों के साथ-साथ प्रणालीगत सहनशीलता, संसाधन उपयोग दक्षता और पर्यावरणीय प्रदर्शन भी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं (Qaim & Zilberman, 2003; Klümper & Qaim, 2014; NAS, 2016)।

2.2 GM फसलों का वैश्विक अंगीकरण: विस्तार और वितरण

1996 में वाणिज्यिक स्तर पर परिचय के बाद से, GM फसलों का वैश्विक अंगीकरण तीव्र और निरंतर रूप से बढ़ा है, जो खेत-स्तर पर इनके सुसंगत कृषि एवं आर्थिक लाभों को दर्शाता है। ISAAA के अनुसार, 2022–2023 के दौरान विश्वभर में लगभग 200 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में GM फसलों की खेती की गई, जो 30 से अधिक देशों में फैली हुई थी। पिछले तीन दशकों में GM फसलों के अंतर्गत कुल संचयी क्षेत्रफल 3.0 बिलियन हेक्टेयर से अधिक हो चुका है, जिससे कृषि जैव-प्रौद्योगिकी कृषि इतिहास की सबसे तीव्र गति से प्रसारित होने वाली नवाचारों में से एक बन गई है (ISAAA, 2023)।

GM फसलों के अंगीकरण की एक विशिष्ट विशेषता विकासशील देशों में इनकी व्यापक उपस्थिति है। वैश्विक स्तर पर GM फसलें उगाने वाले लगभग 17–18 मिलियन किसानों में से लगभग 90% किसान एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के लघु एवं सीमांत कृषक हैं। यह प्रवृत्ति GM तकनीक के पैमाना-तटस्थ (scale-neutral) स्वरूप को दर्शाती है तथा लघु कृषक-प्रधान उत्पादन प्रणालियों में इसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करती है, जो द्वितीय हरित क्रांति के केंद्रीय उद्देश्य हैं (ISAAA, 2023; Qaim, 2020)।

2.3 वैश्विक GM कृषि में फसल एवं गुणों का स्वरूप

वैश्विक स्तर पर GM फसलों का अंगीकरण कुछ सीमित फसलों तक केंद्रित है—मुख्यतः सोयाबीन, मक्का, कपास और कैनोला—जो

मिलकर कुल GM फसल क्षेत्र का 95% से अधिक भाग बनाती हैं। इनमें सोयाबीन सबसे प्रमुख GM फसल है, जो वैश्विक GM क्षेत्रफल का लगभग आधा हिस्सा अकेले घेरती है। गुणों की दृष्टि से, खरपतवारनाशी सहनशीलता और कीट-प्रतिरोध प्रमुख हैं, जबकि हाल के वर्षों में stacked traits का तीव्र विस्तार हुआ है, जो गहन कृषि प्रणालियों में एक साथ अनेक बाधाओं को संबोधित करने की आवश्यकता को दर्शाता है।

Stacked traits का बढ़ता अंगीकरण एकल-समस्या समाधान से आगे बढ़कर प्रणाली-स्तरीय सहनशीलता की ओर संक्रमण को दर्शाता है, जो द्वितीय हरित क्रांति की एक प्रमुख विशेषता है। कीटों और खरपतवारों के विरुद्ध सुरक्षा को एक ही किस्म में संयोजित करके, ऐसी GM फसलें रासायनिक इनपुट पर निर्भरता को कम करती हैं, उपज स्थिरता में सुधार लाती हैं और बढ़ती जलवायु परिवर्तनशीलता की परिस्थितियों में किसानों को अधिक प्रबंधन लचीलापन प्रदान करती हैं (ISAAA, 2023; Brookes & Barfoot, 2020)।

2.4 कृषि, आर्थिक एवं पर्यावरणीय परिणाम

GM फसलों के कृषि प्रदर्शन का व्यापक मूल्यांकन मेटा-विश्लेषणों और दीर्घकालिक क्षेत्रीय अध्ययनों के माध्यम से किया गया है। 140 से अधिक अध्ययनों को सम्मिलित करने वाले एक व्यापक मेटा-विश्लेषण में यह पाया गया कि GM फसलों की उपज, गैर-GM फसलों की तुलना में औसतन 22% अधिक थी, जबकि विकासशील देशों में यह वृद्धि और भी अधिक पाई गई, जिसका प्रमुख कारण उच्च प्रारंभिक कीट दबाव है (Klümper & Qaim, 2014)। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ये उपज लाभ मुख्यतः फसल क्षति में कमी के परिणामस्वरूप प्राप्त होते हैं, न कि जैविक उपज क्षमता में प्रत्यक्ष वृद्धि के कारण—जिससे GM फसलों की उपज-स्थिरीकरण भूमिका और अधिक स्पष्ट होती है।

उपज प्रभावों से परे, GM फसलों ने उल्लेखनीय पर्यावरणीय लाभ भी प्रदर्शित किए हैं। इनके अंगीकरण से रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग में औसतन 37% की कमी देखी गई है, विशेषकर Bt cotton और Bt maize जैसी कीट-प्रतिरोधी फसलों में। इससे खेत-मजदूरों की सुरक्षा में सुधार, गैर-लक्षित जीवों पर प्रभाव में कमी तथा पर्यावरणीय प्रदूषण में गिरावट दर्ज की गई है (Klümper & Qaim, 2014; Brookes & Barfoot, 2020)। इसके अतिरिक्त, खरपतवारनाशी-सहनशील फसल प्रणालियों ने संरक्षण जुताई जैसी पद्धतियों को बढ़ावा दिया है, जिससे ईंधन की बचत और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आई है।

3. भारत में GM फसलें: संभावनाएँ, सीमाएँ और नीतिगत संक्रमण

3.1 भारत की कृषि आवश्यकताएँ और पारंपरिक दृष्टिकोणों की सीमाएँ

भारत का कृषि क्षेत्र वर्तमान में कई संरचनात्मक चुनौतियों के समेकन का सामना कर रहा है, जिनमें प्रमुख अनाज फसलों में उपज स्थिरता, दलहनों और तिलहनों में कम उत्पादकता, जैविक तनावों के कारण अधिक फसल हानियाँ तथा वर्षा-आधारित क्षेत्रों में बढ़ती जलवायु परिवर्तनशीलता शामिल हैं। उपलब्ध आकलनों के अनुसार, कीट, रोग और खरपतवार प्रतिवर्ष कुल फसल उत्पादन का लगभग 20–30% नुकसान करते हैं, जबकि इसके बावजूद कीटनाशकों का व्यापक उपयोग किया जाता है। साथ ही, गहन अनाज उत्पादन प्रणालियों में उत्पादन कारकों की घटती उत्पादकता यह दर्शाती है कि केवल इनपुट वृद्धि के माध्यम से आगे और लाभ प्राप्त करने की संभावनाएँ सीमित हो चुकी हैं (Pingali, 2012; ICAR, 2021)।

यद्यपि पारंपरिक प्रजनन विधियाँ कृषि सुधार की दृष्टि से अपरिहार्य बनी हुई हैं, किंतु इनकी प्रभावशीलता संकीर्ण आनुवंशिक विविधता, जटिल गुण संरचनाओं तथा दीर्घ प्रजनन चक्रों के कारण लगातार सीमित होती जा रही है—विशेष रूप से तीव्र गति से बदलती जलवायु परिस्थितियों में। ये सीमाएँ ऐसी पूरक आनुवंशिक प्रौद्योगिकियों की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं, जो लक्षित, समयबद्ध और बड़े पैमाने पर लागू किए जा सकने वाले समाधान प्रदान कर सकें।

3.2 बीटी कॉटन: भारत से प्राप्त अनुभवजन्य साक्ष्य

Bt Cotton भारत में GM फसलों के अंगीकरण का सबसे प्रमुख उदाहरण है और द्वितीय हरित क्रांति में जैव-प्रौद्योगिकी की संभावित भूमिका के आकलन के लिए एक महत्वपूर्ण अनुभवजन्य आधार प्रदान करता है। वर्ष 2002 में वाणिज्यिक स्तर पर इसके अनुमोदन के बाद से, Bt cotton के साथ उल्लेखनीय उपज वृद्धि, कीटनाशकों के उपयोग में भारी कमी तथा किसानों की आय में सुधार दर्ज किया गया है। विभिन्न अनुभवजन्य अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि ये लाभ मुख्यतः बॉलवर्म (bollworms) के प्रभावी नियंत्रण के कारण प्राप्त हुए, जो पहले कपास उत्पादन में भारी हानियों के लिए उत्तरदायी थे (Kathage & Qaim, 2012; NAS, 2016)।

यद्यपि समय के साथ कीट प्रतिरोध का विकास तथा द्वितीयक कीटों की समस्या जैसी चुनौतियाँ सामने आई हैं, फिर भी ये समस्याएँ तकनीक की अंतर्निहित कमियों के बजाय प्रबंधन और निगरानी में हुई चूकों को दर्शाती हैं। Bt cotton का अनुभव GM तकनीकों की संभावनाओं के साथ-साथ उनकी सशर्तता को भी स्पष्ट करता है और

एकीकृत कीट प्रबंधन, प्रभावी नियामक निगरानी तथा अनुकूलनशील शासन की महत्ता को रेखांकित करता है।

3.3 नीतिगत संक्रमण: Genome Editing का एक नियामक निर्णायक मोड़ के रूप में उभरना

भारत के कृषि जैव-प्रौद्योगिकी परिदृश्य में हालिया वर्षों का एक महत्वपूर्ण विकास genome-edited crops को पारंपरिक ट्रांसजेनिक GMOs से नियामक रूप से पृथक किया जाना है। वर्ष 2022 में भारत सरकार द्वारा SDN-1 और SDN-2 genome-edited crops को पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत लागू कठोर प्रावधानों से छूट प्रदान की गई, यह मान्यता देते हुए कि इस प्रकार के संपादन में विदेशी डीएनए का समावेश नहीं होता और ये अक्सर प्राकृतिक अथवा पारंपरिक उत्परिवर्तन के समान होते हैं।

Genome editing technologies, विशेषकर CRISPR–Cas systems, सटीक और पूर्वानुमेय आनुवंशिक संशोधन संभव बनाती हैं। ये तकनीकें फसल सुधार की प्रक्रिया को तीव्र करने के साथ-साथ जैव-सुरक्षा तथा सामाजिक स्वीकार्यता से जुड़ी दीर्घकालिक चिंताओं को भी संबोधित करती हैं। यह नीतिगत परिवर्तन भारत के नियामक ढाँचे को वैश्विक प्रवृत्तियों के अनुरूप बनाता है और मुख्य एवं गैर-मुख्य दोनों प्रकार की फसलों में उन्नत प्रजनन तकनीकों के उपयोग के लिए नए अवसर सृजित करता है (Qaim, 2020; FAO, 2022)।

3.4 द्वितीय हरित क्रांति के लिए निहितार्थ

द्वितीय हरित क्रांति के ढाँचे के अंतर्गत, GM फसलें आणविक हस्तक्षेपों की व्यवहार्यता और प्रभाव को प्रदर्शित करने वाला एक सुदृढ़ साक्ष्य आधार प्रदान करती हैं, जबकि genome editing जैव-प्रौद्योगिकी आधारित परिवर्तन के अगले चरण का प्रतिनिधित्व करती है। ये दोनों तकनीकें मिलकर उपज स्थिरता बढ़ाने, पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने तथा जलवायु सहनशीलता को सुदृढ़ करने के लिए पूरक मार्ग प्रदान करती हैं।

पारंपरिक प्रजनन या कृषि पद्धतियों को प्रतिस्थापित करने के बजाय, GM तथा genome-edited crops सहायक प्रौद्योगिकियों के रूप में कार्य करती हैं, जो सतत गहनता रणनीतियों की प्रभावशीलता को बढ़ाती हैं। विज्ञान-आधारित नियमन, सार्वजनिक क्षेत्र के नेतृत्व और पारदर्शी शासन के साथ इनका समन्वय भारत को एक अधिक सहनशील और सतत खाद्य प्रणाली की दिशा में तीव्र प्रगति करने में सक्षम बना सकता है।

4. प्रथम हरित क्रांति की संरचनात्मक सीमाएँ और भारत के कृषि रूपांतरण पर उनके प्रभाव

4.1 गहन कृषि प्रणालियों में उत्पादकता स्थिरता और उपज थकान

प्रथम हरित क्रांति के दौरान प्राप्त ऐतिहासिक उत्पादकता लाभों के बावजूद, पिछले दो दशकों में भारत की प्रमुख अनाज फसलों में उपज वृद्धि की गति में उल्लेखनीय कमी आई है। 1990 के दशक के मध्य में लगभग 2.0 टन प्रति हेक्टेयर रही धान की उपज 2022 तक बढ़कर केवल लगभग 2.7 टन प्रति हेक्टेयर तक ही पहुँच सकी है, जबकि गेहूँ की उपज उर्वरक और सिंचाई इनपुट में निरंतर वृद्धि के बावजूद लगभग 3.3–3.5 टन प्रति हेक्टेयर पर स्थिर बनी हुई है। ये स्तर अन्य गहन अनाज उत्पादक देशों की तुलना में काफी कम हैं और इनपुट-आधारित गहनता से मिलने वाले सीमांत लाभों में गिरावट को दर्शाते हैं (FAOSTAT, 2023; Pingali, 2012)।

इस स्थिति को सामान्यतः "उपज थकान" (yield fatigue) के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसे ICAR तथा CIMMYT जैसे अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों द्वारा संचालित दीर्घकालिक प्रयोगों में भी प्रलेखित किया गया है। विशेषकर उत्तर-पश्चिमी भारत के धान–गेहूँ प्रणाली में उत्पादन कारकों की घटती उत्पादकता का संबंध पोषक तत्व असंतुलन, मृदा कार्बनिक कार्बन के क्षय तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की बढ़ती कमी से जोड़ा गया है। ये प्रवृत्तियाँ इनपुट-आधारित उत्पादकता वृद्धि की जैविक एवं पारिस्थितिक सीमाओं को उजागर करती हैं।

4.3 क्षेत्रीय एवं पोषण संबंधी असंतुलन

प्रथम हरित क्रांति के लाभ मुख्यतः उत्तर-पश्चिमी भारत के सिंचित क्षेत्रों तक सीमित रहे, जबकि देश का 50% से अधिक कृषि क्षेत्रफल वर्षा-आधारित होने के बावजूद अपेक्षाकृत अप्रभावित रहा। दलहन, तिलहन और मोटे अनाज जैसी पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण फसलों को अनुसंधान और नीति समर्थन सीमित रूप से प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप इन फसलों में लगातार उपज अंतर बना रहा और आयात पर निर्भरता बढ़ती गई। वर्तमान में भारत अपनी खाद्य तेल आवश्यकताओं का 60% से अधिक आयात करता है, जिससे अर्थव्यवस्था वैश्विक मूल्य उतार-चढ़ाव और आपूर्ति जोखिमों के प्रति संवेदनशील हो जाती है (FAOSTAT, 2023)।

इन क्षेत्रीय और फसल-स्तरीय असंतुलनों के कारण किसानों की आय वृद्धि असमान रही है और कुल खाद्यान्न पर्याप्तता के बावजूद कुपोषण की समस्या बनी हुई है। इन संरचनात्मक कमजोरियों को दूर करने के लिए अनाज-केंद्रित रणनीतियों से हटकर विविधीकृत, पोषण-संवेदनशील और जलवायु-सहनशील कृषि प्रणालियों की ओर संक्रमण आवश्यक है।

4.4 भारत की द्वितीय हरित क्रांति के लिए निहितार्थ

उत्पादकता स्थिरता, पर्यावरणीय क्षरण और क्षेत्रीय विषमताएँ मिलकर यह स्पष्ट करती हैं कि प्रथम हरित क्रांति की रणनीतियों को भविष्य में आगे बढ़ाना पर्याप्त नहीं होगा। अतः द्वितीय हरित क्रांति को अपने दृष्टिकोण और उद्देश्यों दोनों में मौलिक रूप से भिन्न होना होगा—जहाँ बाह्य इनपुट के माध्यम से उपज अधिकतम करने के बजाय आनुवांशिक सहनशीलता, संसाधन उपयोग दक्षता और जोखिम न्यूनीकरण पर बल दिया जाए।

इस संदर्भ में, GM तथा genome-edited crops पारंपरिक कृषि में अंतर्निहित कई बाधाओं को उनके आनुवंशिक और शारीरिक स्तर पर संबोधित करने का एक प्रभावी साधन प्रदान करती हैं। जैविक और अजैविक तनावों के प्रति संवेदनशीलता को कम करके, ये प्रौद्योगिकियाँ सतत गहनता की आवश्यकताओं के साथ निकटता से मेल खाती हैं और भारत के कृषि रूपांतरण के अगले चरण के लिए एक मजबूत वैज्ञानिक आधार प्रदान करती हैं।

5. तिलहन और द्वितीय हरित क्रांति: Genome Editing के लिए एक रणनीतिक उदाहरण के रूप में सोयाबीन

5.1 द्वितीय हरित क्रांति में तिलहन आत्मनिर्भरता एक केंद्रीय लक्ष्य

सभी फसल वर्गों में, तिलहन भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण किंतु अपेक्षाकृत उपेक्षित बाधा के रूप में उभरते हैं। खेती योग्य क्षेत्र का एक बड़ा भाग होने के बावजूद, देश का घरेलू तिलहन उत्पादन बढ़ती मांग के अनुरूप नहीं बढ़ पाया है, जिसके परिणामस्वरूप आयात पर अत्यधिक निर्भरता उत्पन्न हुई है। वर्तमान में भारत अपनी खाद्य तेल आवश्यकताओं का 60% से अधिक आयात करता है, जिससे वह विश्व के सबसे बड़े वनस्पति तेल आयातकों में से एक बन गया है (FAOSTAT, 2023)।

द्वितीय हरित क्रांति के दृष्टिकोण से, तिलहन आत्मनिर्भरता केवल एक आर्थिक आवश्यकता नहीं, बल्कि एक सततता संबंधी चुनौती भी है। अनेक क्षेत्रों में ऑयल पाम की खेती का विस्तार पारिस्थितिक सीमाओं से बंधा हुआ है, जबकि पारंपरिक प्रजनन विधियों के माध्यम से मौजूदा तिलहन फसलों में उपज वृद्धि की संभावनाएँ सीमित बनी हुई हैं। इस पृष्ठभूमि में, तिलहन उत्पादकता बढ़ाने के लिए सटीक, लक्षित और नवीन रणनीतियों की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है।

5.2 सोयाबीन में उत्पादकता अंतर और संरचनात्मक बाधाएँ

खाद्य तेल और उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन—दोनों के स्रोत के रूप में सोयाबीन भारत की तिलहन अर्थव्यवस्था में एक केंद्रीय स्थान रखता है। लगभग 12–13 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में उगाई जाने वाली सोयाबीन घरेलू तिलहन उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके बावजूद, राष्ट्रीय औसत उपज लगभग 1.1–1.3 टन प्रति हेक्टेयर के आसपास बनी हुई है, जो ब्राज़ील और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे प्रमुख उत्पादक देशों में प्राप्त 3.0–3.5 टन प्रति हेक्टेयर की वैश्विक औसत उपज से काफी कम है (FAOSTAT, 2023)।

यह उपज अंतर केवल कृषि प्रबंधन पद्धतियों के कारण नहीं है। संकीर्ण आनुवंशिक आधार, जीनोटाइप × पर्यावरण की तीव्र अंतःक्रियाएँ, तथा जैविक तनावों के प्रति उच्च संवेदनशीलता जैसी संरचनात्मक बाधाएँ सोयाबीन में पारंपरिक प्रजनन की प्रभावशीलता को सीमित करती हैं। इन सीमाओं को जलवायु परिवर्तनशीलता और अधिक गहरा देती है, विशेषकर मध्य भारत के वर्षा-आधारित सोयाबीन उत्पादक क्षेत्रों में, जहाँ उपज अस्थिरता किसानों की आजीविका के लिए एक बड़ा जोखिम बन जाती है।

5.3 जैविक तनाव, रोग-जनित हानियाँ और पारंपरिक प्रतिरोध प्रजनन की सीमाएँ

भारत में सोयाबीन उत्पादन charcoal rot (Macrophomina phaseolina), soybean rust और collar rot जैसे रोगों तथा विभिन्न कीटों से गंभीर रूप से प्रभावित होता है। विशेष रूप से charcoal rot सूखा परिस्थितियों में 30–50% तक उपज हानि का कारण बन सकता है, जबकि रासायनिक नियंत्रण उपाय प्रायः अप्रभावी सिद्ध होते हैं।

पारंपरिक प्रतिरोध प्रजनन को सीमित सफलता इसलिए मिली है क्योंकि प्रतिरोध का स्वरूप प्रायः मात्रात्मक होता है, रोगजनकों में उच्च विविधता पाई जाती है, और मजबूत एकल-जीन प्रतिरोध स्रोतों का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप, प्रजनन की प्रगति धीमी रही है और रोग दबाव लगातार उपज स्थिरता को प्रभावित करता रहा है। ये चुनौतियाँ ऐसे वैकल्पिक आनुवंशिक दृष्टिकोणों की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं, जो पारंपरिक प्रतिरोध अवधारणाओं से आगे बढ़ सकें।

5.4 सोयाबीन सुधार के लिए Genome Editing एक निर्णायक उपकरण

Genome editing technologies, विशेषकर CRISPR–Cas systems, सोयाबीन सुधार में लंबे समय से चली आ रही बाधाओं को दूर करने के लिए अभूतपूर्व अवसर प्रदान करती हैं। अंतर्जात जीनों में सटीक और लक्षित संशोधन को संभव बनाकर, genome editing जटिल गुणों को पारंपरिक विधियों की तुलना में अधिक तेज़ी और पूर्वानुमेयता के साथ संबोधित करने की क्षमता

प्रदान करती है।

सोयाबीन में संभावित अनुप्रयोगों में रोग विकास से जुड़े susceptibility (S) genes का निष्क्रियकरण, फैटी एसिड संरचना को नियंत्रित करने वाले जीनों का संशोधन कर तेल गुणवत्ता में सुधार, तथा सूखा और ताप सहनशीलता से संबंधित नियामक मार्गों का संपादन शामिल है। महत्वपूर्ण रूप से, ऐसे अनेक संशोधन SDN-1 और SDN-2 genome-edited crops की श्रेणी में आते हैं, जिससे वे भारत के सरलीकृत नियामक ढाँचे के अंतर्गत आते हैं और उनके प्रयोगात्मक से व्यावसायिक स्तर तक पहुँचने की संभावनाएँ काफी बढ़ जाती हैं।

5.5 वैश्विक संदर्भ और भारत के लिए रणनीतिक प्रासंगिकता

वैश्विक स्तर पर, सोयाबीन सबसे व्यापक रूप से अंगीकृत GM फसल है और कुल GM फसल क्षेत्र का लगभग आधा भाग इसी के अंतर्गत आता है। प्रमुख उत्पादक देशों में खरपतवारनाशी-सहनशील तथा stacked traits युक्त GM सोयाबीन किस्मों की सफलता इस फसल में आणविक हस्तक्षेपों की जैविक व्यवहार्यता और आर्थिक उपयोगिता को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। यद्यपि भारत ने अभी तक ट्रांसजेनिक GM सोयाबीन को अंगीकृत नहीं किया है, फिर भी वैश्विक अनुभव लक्षित आनुवंशिक संशोधन के संभावित लाभों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करता है।

Genome editing भारत को यह अवसर देता है कि वह ट्रांसजेनिक GM फसलों से जुड़ी पूर्ववर्ती सामाजिक और नीतिगत विवादों को दोहराए बिना सीधे अगली पीढ़ी के सोयाबीन सुधार की ओर बढ़ सके। यह दृष्टिकोण तकनीकी नवाचार को राष्ट्रीय नीतिगत प्राथमिकताओं और सामाजिक अपेक्षाओं के साथ संतुलित करता है, साथ ही आणविक प्रजनन के वैज्ञानिक लाभों को भी बनाए रखता है।

5.6 सोयाबीन Genome Editing और द्वितीय हरित क्रांति

द्वितीय हरित क्रांति के परिप्रेक्ष्य में, genome-edited सोयाबीन एक साथ कई राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को संबोधित करता है—खाद्य तेल आत्मनिर्भरता, जलवायु सहनशीलता, उपज स्थिरता और किसानों की आय में वृद्धि। रोग-जनित उपज हानियों को कम करके और तेल गुणवत्ता में सुधार लाकर, genome-edited सोयाबीन न केवल उत्पादकता में वृद्धि करता है, बल्कि मूल्य संवर्धन और पोषण परिणामों में भी योगदान देता है।

इसके अतिरिक्त, सोयाबीन genome editing भारत के सार्वजनिक क्षेत्र-नेतृत्व वाले कृषि नवाचार और आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना के साथ भी निकटता से मेल खाता है। उपयुक्त निवेश—जैसे उन्नत फेनोटाइपिंग, बहु-स्थान परीक्षण और विस्तार तंत्र—के साथ, genome-edited सोयाबीन यह प्रदर्शित कर सकता है कि सटीक प्रजनन प्रौद्योगिकियाँ जैव-सुरक्षा या जनविश्वास से समझौता किए बिना किस प्रकार सतत कृषि रूपांतरण को गति दे सकती हैं।

निष्कर्ष (CONCLUSION)

द्वितीय हरित क्रांति इनपुट-प्रधान और अनाज-केंद्रित कृषि प्रतिमान से एक आवश्यक प्रस्थान का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने कृषि विकास के पूर्व चरणों को परिभाषित किया था। उपज स्थिरता, पर्यावरणीय क्षरण, जलवायु परिवर्तनशीलता तथा निरंतर बनी रहने वाली पोषण और क्षेत्रीय विषमताओं की पृष्ठभूमि में, भविष्य की उत्पादकता वृद्धि उन प्रौद्योगिकियों और पद्धतियों के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए जो सहनशीलता, संसाधन उपयोग दक्षता और कृषि सततता को सुदृढ़ करें। यह अध्ययन genetically modified (GM) crops तथा हाल के वर्षों में उभरी genome-edited crops को इसी व्यापक रूपांतरण के संदर्भ में स्थापित करता है और इन्हें स्वतंत्र समाधान के बजाय सहायक प्रौद्योगिकियों के रूप में प्रस्तुत करता है।

पिछले लगभग तीन दशकों में संचित वैश्विक अनुभवजन्य साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि GM फसलों ने जैविक तनावों से होने वाली उपज हानियों को लगातार कम किया है, कीटनाशकों के उपयोग में कमी लाई है, किसानों की आय में सुधार किया है और विशेष रूप से विकासशील देशों में पर्यावरणीय दृष्टि से सतत गहनता में योगदान दिया है। Bt cotton के साथ भारत का अनुभव इन निष्कर्षों की घरेलू पुष्टि करता है, साथ ही यह भी दर्शाता है कि निगरानी, नियामक नियंत्रण और उचित कृषि प्रबंधन का एकीकरण कितना आवश्यक है। इसी क्रम में, Genome editing, विशेषकर CRISPR–Cas systems, फसल सुधार में एक गुणात्मक परिवर्तन का संकेत देती है, क्योंकि यह सटीक, पूर्वानुमेय और ट्रांसजीन-रहित आनुवंशिक संशोधन को संभव बनाती है।

SDN-1 और SDN-2 genome-edited crops के लिए भारत द्वारा अपनाया गया नियामक पृथक्करण एक निर्णायक नीतिगत मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। यह निर्णय राष्ट्रीय जैव-सुरक्षा शासन को वैज्ञानिक सहमति और अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं के अनुरूप बनाता है, साथ ही उन्नत प्रजनन नवाचारों के अधिक तेज़ और सामाजिक रूप से स्वीकार्य अंगीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है। इस अध्ययन में विश्लेषित उदाहरण—विशेषकर genome-edited धान और सोयाबीन तथा ट्रांसजेनिक सरसों का अनुमोदन—यह दर्शाते हैं कि

आणविक प्रौद्योगिकियों का उपयोग किस प्रकार जलवायु तनाव, रोग-जनित हानियों और तिलहन आयात निर्भरता जैसी फसल-विशिष्ट बाधाओं के समाधान में रणनीतिक रूप से किया जा सकता है।

समग्र रूप से, निष्कर्ष इस केंद्रीय तर्क का समर्थन करते हैं कि GM और genome-edited crops, जब सतत कृषि प्रबंधन, सुदृढ़ जैव-सुरक्षा मूल्यांकन और पारदर्शी शासन ढाँचे के साथ एकीकृत किए जाते हैं, तो वे भारत की द्वितीय हरित क्रांति के मूल स्तंभ बन सकते हैं। इनका वास्तविक मूल्य बाह्य इनपुट्स के माध्यम से उपज अधिकतम करने में नहीं, बल्कि उत्पादन को स्थिर करने, जोखिम को कम करने और बढ़ती कृषि-अनिश्चितताओं के बीच सहनशीलता बढ़ाने में निहित है।

7. नीतिगत निहितार्थ और अनुशंसाएँ

7.1 गुण-आधारित एवं जोखिम-अनुपाती नियामक ढाँचा अपनाना

भारत द्वारा genome-edited crops को पारंपरिक ट्रांसजेनिक GMOs से अलग पहचान देने की पहल को और सुदृढ़ किया जाना चाहिए, ताकि एक गुण-आधारित और जोखिम-अनुपाती नियामक व्यवस्था स्थापित हो सके। नियामक समीक्षा को प्रजनन विधि के बजाय आनुवंशिक परिवर्तन की प्रकृति और उससे जुड़े जोखिम स्तर के अनुरूप किया जाना चाहिए। इससे जैव-सुरक्षा सुनिश्चित होगी और विशेषकर खाद्य एवं पोषण फसलों में कम-जोखिम, उच्च-प्रभाव नवाचारों के अंगीकरण में अनावश्यक विलंब से बचा जा सकेगा।

7.2 फसल जैव-प्रौद्योगिकी में सार्वजनिक क्षेत्र के नेतृत्व को सुदृढ़ करना

समान पहुँच और जनविश्वास सुनिश्चित करने के लिए, GM और genome-edited crops का विकास और परिनियोजन मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं—जैसे ICAR संस्थान और राज्य कृषि विश्वविद्यालय—के नेतृत्व में किया जाना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र का नेतृत्व क्षेत्र-विशिष्ट गुणों, उपेक्षित फसलों और लघु कृषकों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दे सकता है, साथ ही स्वामित्व आधारित प्रौद्योगिकियों पर निर्भरता को भी कम कर सकता है। इस प्रक्रिया में रणनीतिक सार्वजनिक–निजी साझेदारियाँ सहायक भूमिका निभा सकती हैं।

7.3 जैव-प्रौद्योगिकी को जलवायु-स्मार्ट और सटीक कृषि के साथ एकीकृत करना

GM और genome-edited crops को पृथक रूप से नहीं, बल्कि जलवायु-स्मार्ट कृषि पद्धतियों—जैसे सटीक पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन, एकीकृत कीट प्रबंधन और संरक्षण कृषि—के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। ऐसा एकीकरण आनुवंशिक नवाचारों के पूर्ण लाभ प्राप्त करने, पारिस्थितिक जोखिमों को न्यूनतम करने और दीर्घकालिक सततता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

7.4 तिलहन और जलवायु-संवेदनशील फसलों को प्राथमिकता देना

नीतिगत ध्यान उन फसलों की ओर स्थानांतरित किया जाना चाहिए, जिन्हें पूर्ववर्ती कृषि रणनीतियों के अंतर्गत अपेक्षाकृत कम महत्व मिला है—विशेषकर तिलहन, दलहन और वर्षा-आधारित फसलें। Genome-edited सोयाबीन, सरसों और दलहन आयात निर्भरता कम करने, पोषण सुरक्षा बढ़ाने और जलवायु-संवेदनशील क्षेत्रों में किसानों की आय सुधारने के लिए रणनीतिक प्रवेश बिंदु प्रदान करते हैं।

7.6 पारदर्शिता, जन-संवाद और विज्ञान संप्रेषण को सुदृढ़ करना

अंततः, कृषि जैव-प्रौद्योगिकी में सामाजिक विश्वास स्थापित करने के लिए पारदर्शी शासन और सक्रिय जन-संवाद अनिवार्य हैं। वैज्ञानिक साक्ष्यों, नियामक निर्णयों और लाभ–जोखिम मूल्यांकन की स्पष्ट जानकारी—विशेषकर खाद्य फसलों के संदर्भ में—भ्रामक सूचनाओं को दूर करने और सूचित सार्वजनिक विमर्श को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।

समापन समेकन (Closing Synthesis)

निष्कर्षतः, भारत की द्वितीय हरित क्रांति किसी एक तकनीक द्वारा नहीं, बल्कि आनुवंशिक नवाचार, सतत कृषि पद्धतियों और सहायक नीतिगत ढाँचों के रणनीतिक एकीकरण द्वारा संचालित होगी। GM फसलें आणविक हस्तक्षेपों के लाभों का एक सुदृढ़ साक्ष्य आधार प्रदान करती हैं, जबकि genome editing इन लाभों को व्यापक फसल-परिसर में विस्तार देने के लिए एक समयोचित और नीतिगत रूप से संगत मार्ग उपलब्ध कराती है। यदि इन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से अपनाया जाए, तो ये प्रौद्योगिकियाँ भारत के लिए एक सहनशील, उत्पादक और सतत कृषि भविष्य के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभा सकती हैं।

संदर्भ

Borlaug, N. E. (2000). Ending world hunger: The promise of biotechnology and the threat of antiscience zealotry. Plant Physiology, 124, 487–490. https://doi.org/10.1104/pp.124.2.487

Brookes, G., & Barfoot, P. (2020).Environmental impacts of genetically modified (GM) crop use 1996–2018: Impacts on pesticide use and carbon emissions. GM Crops & Food, 11(4), 215–241. https://doi.org/10.1080/21645698.2020.1773198

Evenson, R. E., & Gollin, D. (2003). Assessing the impact of the Green Revolution, 1960–2000. Science, 300, 758–762. https://doi.org/10.1126/science.1078710

FAO. (2017). The future of food and agriculture – Trends and challenges. Food and Agriculture Organization of the United Nations, Rome. https://www.fao.org/3/i6583e/i6583e.pdf

FAO. (2021). The state of the world's land and water resources for food and agriculture. FAO, Rome.

FAO. (2022). Agricultural biotechnologies for sustainable food systems. FAO, Rome. https://www.fao.org/3/cc3008en/cc3008en.pdf

FAOSTAT. (2023). Food and Agriculture Data. Food and Agriculture Organization of the United Nations. https://www.fao.org/faostat/

Godfray, H. C. J., et al. (2010). Food security: The challenge of feeding 9 billion people. Science, 327, 812–818. https://doi.org/10.1126/science.1185383

ICAR. (2021). Vision 2050: Crop Protection and Resource Management. Indian Council of Agricultural Research, New Delhi.

ISAAA. (2023). Global status of commercialized biotech/GM crops: 2023. ISAAA Brief No. 58. https://www.isaaa.org

Kathage, J., & Qaim, M. (2012). Economic impacts and impact dynamics of Bt cotton in India. Proceedings of the National Academy of Sciences (PNAS), 109(29), 11652–11656. https://doi.org/10.1073/pnas.1203647109

Klümper, W., & Qaim, M. (2014). A meta-analysis of the impacts of genetically modified crops. PLOS ONE, 9(11), e111629. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0111629

National Academies of Sciences, Engineering, and Medicine (NAS). (2016). Genetically engineered crops: Experiences and prospects. National Academies Press, Washington, DC. https://doi.org/10.17226/23395

Pingali, P. L. (2012). Green Revolution: Impacts, limits, and the path ahead. Proceedings of the National Academy of Sciences (PNAS), 109, 12302–12308. https://doi.org/10.1073/pnas.0912953109

Pingali, P., Aiyar, A., Abraham, M., & Rahman, A. (2019). Transforming food systems for a rising India. Palgrave Macmillan. https://doi.org/10.1007/978-3-030-14409-8

Qaim, M. (2020). Role of new plant breeding technologies for food security and sustainable agricultural development. Applied Economic Perspectives and Policy, 42(2), 129–150. https://doi.org/10.1002/aepp.13044

Qaim, M., & Zilberman, D. (2003). Yield effects of genetically modified crops in developing countries. Science, 299, 900–902. https://doi.org/10.1126/science.1080609

Rockström, J., et al. (2017). Sustainable intensification of agriculture for human prosperity and global sustainability. Ambio, 46, 4–17. https://doi.org/10.1007/s13280-016-0793-6

Tilman, D., Cassman, K. G., Matson, P. A., Naylor, R., & Polasky, S. (2002). Agricultural sustainability and intensive production practices. Nature, 418, 671–677. https://doi.org/10.1038/nature01014

World Bank. (2008). World Development Report 2008: Agriculture for Development. Washington, DC. https://openknowledge.worldbank.org/handle/10986/5990

कुसुम: फसल एक, उपयोग अनेक (Carthamus tinctorius L.)

डॉ.दिलीप कुमार वर्मा, रविन्द्र पंवार एवं उपेन्द्र सिंह चौधरी

भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, इन्दौर

संवादी लेखक का ई-मेल mailmedilipverma@rediffmail.com

कुसुम को वैज्ञानिक रूप से Carthamus tinctorius के नाम से जाना जाता है, जो Compositae/Asteraceae परिवार से संबंधित है। इसमें 25 से 30 प्रतिशत तेल सामग्री होती है। इसका उद्गम भूमध्य सागर और फारस की खाड़ी है, और इसका गुणसूत्र संख्या (2n = 24) होती है। Carthamus जाति में लगभग 25 जंगली प्रजातियाँ होती हैं, जिनमें Carthamus oxycanthus (जंगली साफ्लावर) और C. lanatus (सैफ्रन थिसल) अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसे पोषण की दृष्टि से बेहतर माना जाता है क्योंकि इसमें लिनोलेइक एसिड की मात्रा अधिक होती है। इसे आमतौर पर 'कुसुम' के नाम से जाना जाता है। यह मुख्य रूप से इसके बीज के लिए उगाया जाता है, क्योंकि बीज का उपयोग खाद्य तेल और पक्षी आहार में किया जाता है। पहले इसे इसके फूलों के लिए उगाया जाता था, जो रंग बनाने, खाद्य पदार्थों में रंग और स्वाद बढ़ाने,और औषधियों में उपयोग किए जाते थे। पशु आहार में साफ्लावर के बीज,आटा और केक को ऊर्जा और प्रोटीन के अनुपूरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। साफ्लावर के बीज में फेनोलिक यौगिक भी होते हैं,जो प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन से उत्पन्न रोगजनक विकारों से बचाव के रूप में एंटीऑक्सिडेंट के रूप में कार्य कर सकते हैं(किम et al., 2007),विभिन्न खाद्य पदार्थों में साफ्लावर के फूलों का समावेश एक प्रसिद्ध और प्राचीन प्रथा है। असली केसर शायद दुनिया का सबसे महंगा मसाला है,और साफ्लावर एक सामान्य मिलावट या वैकल्पिक मसाला होता है। चावल, सूप, सॉस, ब्रेड और अचार के पीले से उज्ज्वल नारंगी रंग का कारण साफ्लावर के फूल होते हैं। सिंथेटिक खाद्य रंगों को लेकर स्वास्थ्य संबंधी चिंताएँ साफ्लावर से प्राप्त खाद्य रंगों के प्रति रुचि बढ़ा सकती हैं। साफ्लावर तेल की स्थिरता

के कारण, इसकी एकरूपता कम तापमान पर अपरिवर्तित रहती है, जिससे यह ठंडे खाद्य पदार्थों में उपयोग के लिए अत्यधिक उपयुक्त हो जाता है। भारत में, मुख्य साफ्लावर उगाने वाले राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटका और तेलंगाना हैं। यह मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में भी उगाया जाता है।

वनस्पतिक विवरण: कुसुम एक फैलने वाली प्रकार की और कांटेदार जैसे हर्बेसियस वार्षिक या शीतकालिक वार्षिक पौधा है, जिसमें पत्तियों और बृक्कों पर बहुत अधिक कांटे होते हैं। साफ्लावर को मुख्य रूप से तेल बीज या पक्षी के बीज के रूप में उगाने के लिए शुष्क गर्म जलवायु का उपयोग किया जाता है। इसके फूलों का औषधीय गुणों और रंग सामग्री में महत्वपूर्ण उपयोग है। साफ्लावर के चिकने सफेद अचीन का वजन 0.030 से 0.045 ग्राम तक होता है। लेकिन कुछ प्रकारों में पप्पस और पौधे से जुड़ी हुई बालों की गुच्छियां होती हैं।साफ्लावर में, अंकुरण के बाद धीरे-धीरे बढ़ने वाली रोजेट अवस्था आती है, जिसमें जमीन के स्तर के पास बहुत अधिक पत्तियाँ बनती हैं। इसका गहरा Tap रूट सिस्टम होता है, जो इसे गहरे स्थानों से नमी और पोषक तत्व प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। शाखाओं की डिग्री पर दोनों जीन और पर्यावरण का प्रभाव महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है। प्रत्येक तने के अंत में गोलाकार फूलों का समूह बनता है, जिसे कांटेदार घेरनियों से ढका जाता है। फूल पहले प्राथमिक फूल समूह में खिलते हैं, इसके बाद द्वितीयक फूल समूह और फिर अन्य। फूलों की शुरुआत एक फूल समूह के बाहरी फूलों के घेरे से होती है और बाद में यह केंद्र की ओर केंद्रापसारक तरीके से बढ़ता है, जो लगभग एक

सप्ताह में होता है। कुल फूल का उत्पादन उगाने के पर्यावरण से बहुत प्रभावित होता है और यह अवस्था 4 सप्ताह या उससे अधिक तक रह सकती है। शुरुआती फूलों में नारंगी, पीले और लाल रंग के फूलों के शेड्स सामान्य होते हैं, लेकिन बाद के फूल आमतौर पर गहरे रंग के होते हैं। सफेद फूलों का होना दुर्लभ है। सामान्यतः, साफ्लावर के ट्यूबुलर फूलों में आत्मपरागण होता है, जो सामान्यतः 10% से कम पर-परागण (आउटक्रॉसिंग) में शामिल होता है (नोल्स 1969)।निचला तना आमतौर पर गहरे कटे हुए पत्तों से युक्त होता है। निचले पत्तों पर कांटे नहीं होते, लेकिन तने के ऊपर कांटे बनते हैं और फूल आने तक ये कांटे मजबूत और कठिन हो जाते हैं। साफ्लावर के फूलों को मधुमक्खियाँ,बमलबीज और अन्य कीड़े दोनों पराग और अमृत के लिए पसंद करते हैं, जो पार-परागण(आउटक्रॉसिंग) की संभावना को बढ़ा सकते हैं। साफ्लावर में, बीज का गठन वायु परागण द्वारा नहीं होता। इसे दिन-निरपेक्ष,दीर्घकालिक पौधा माना जाता है। सामान्य किस्मों के एक परिपक्व अचीन में 33-60 प्रतिशत और 40-67 प्रतिशत शेल और बीज का हिस्सा होता है। पूरे बीज में 20 से 45% या उससे अधिक तेल सामग्री होती है।

भारत के विभिन्न राज्यों के लिए सिफारिश की गई साफ्लावर किस्में:

मध्य प्रदेश: PBNS-12, JSF-1, JSI-7, JSI-73, JSF-97, JSF-99, NARI-6, ISF-764

पौध आकारिकीय

पौधा एवं दलपत्र पुष्प एवं बीज

छत्तीसगढ़: PBNS-12, NARI-6, ISF-764

महाराष्ट्र: भीमा, SSF-708, PBNS-12, NARI-57, AKS-207, PKV-पिंक, NARI-6, ISF-764

कर्नाटका:अन्नीगेरी-1,अन्नीगेरी-2, PBNS-12, NARI-6, ISF-764

तेलंगाना: मंजीरा, PBNS-12 NARI-6, ISF-764

किस्मों का बीज उत्पादन: भूमि की आवश्यकताएँ: चुनी गई भूमि में पूर्व में साफ्लावर की फसल नहीं उगाई गई होनी चाहिए ताकि स्वाभाविक रूप से उगने वाले पौधों की समस्या से बचा जा सके। मिट्टी उपजाऊ होनी चाहिए और अच्छी जल निकासी की सुविधा होनी चाहिए। फसल को स्वच्छ भूमि पर लगाया जाना चाहिए। भूमि को सिंचित नहीं किया जाना चाहिए ताकि रोगों के खतरे से बचा जा

सके।अलगाव की दूरी: परागण व्यवहार के कारण, साफ्लावर आंशिक रूप से आत्मपरागण और क्रॉस-परागण दोनों करने वाली फसल है। कीड़ों की गतिविधि के अनुसार, प्राकृतिक क्रॉस-परागण की डिग्री 17-62 प्रतिशत तक होती है। शहद की मक्खी साफ्लावर का प्रमुख परागणकर्ता है। किस्मों के लिए आवश्यक अलगाव की दूरी 600 मीटर है बीज के फाउंडेशन चरण के लिए और प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए 200 मीटर है। इसे विभिन्न किस्मों के खेतों से और उन खेतों से अलग करना आवश्यक है जो किस्म की शुद्धता के प्रमाणन आवश्यकताओं के अनुसार नहीं हैं।

सस्य विधियाँ:

भूमि की तैयारी: भूमि को गहरी जुताई से तैयार किया जाना चाहिए, जिसके बाद एक या दो बार हरियाणा किया जाए। इसके बाद भूमि को समतल किया जाना चाहिए।

बुवाई का समय: साफ्लावर की फसल अक्टूबर में बोई जा सकती है। बुवाई का समय इस प्रकार समायोजित किया जाना चाहिए कि फूलने के दौरान वर्षा का ओवरलैप न हो।

बीज स्रोत: बीज उत्पादन कार्यक्रम के लिए उपयुक्त बीज स्रोत की आवश्यकता होती है जो बीज प्रमाणन एजेंसी के मानकों के अनुसार हो। इसलिए, बीज स्रोत को प्रमाणित करना आवश्यक है।

बुवाई विधि और दूरी: फसल की बुवाई पंक्तियों में हाथ से या कॉर्न प्लांटर से की जानी चाहिए। बीज गहराई 5 सेंटीमीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45-60 सेंटीमीटर होनी चाहिए।

बीज दर: अधिक पौधों की संख्या प्राप्त करने के लिए बीज दर 8 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होनी चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन: एक हेक्टेयर में 10-25 किलोग्राम नाइट्रोजन और 30-50 किलोग्राम फास्फोरस को प्रारंभिक खाद के रूप में दिया जाना चाहिए। इसके बाद फूलने के समय बीज उत्पादन बढ़ाने के लिए 10-25 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की शीर्ष ड्रेसिंग की जानी चाहिए।

सिंचाई: निराई-गुड़ाई के बाद एक या दो सिंचाई की जानी चाहिए। बड (Bud)अवस्था में सिंचाई अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। देर से की गई सिंचाई फसल की कटाई में देरी कर देती है।

अच्छे शाकनाशक प्रबंधन: बीज उत्पादन क्षेत्र को खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिए। जब फसल 3 सप्ताह और 6-7 सप्ताह पुरानी हो, तो एक या दो निराई-गुड़ाई की जानी चाहिए।

पौधों की सुरक्षा: साफ्लावर एफिड्स, थ्रिप्स और बडफ्लाई से प्रभावित होता है। एफिड्स को नियंत्रित करने के लिए 0.1 प्रतिशत फेनीथियॉन का छिड़काव करें, थ्रिप्स के लिए 0.03 प्रतिशत डाइमेथोएट और साफ्लावर बडफ्लाई को नियंत्रित करने के लिए 0.07 प्रतिशत एंडोसल्फन का छिड़काव करें। बैक्टीरियल ब्लाइट को नियंत्रित करने के लिए फसल पर 500 ppm स्ट्रीप्टोसायक्लिन का

छिड़काव करें।

क्षेत्र निरीक्षण: आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखने के लिए किस्मों में असामान्य प्रकार के पौधों की पहचान करने और उन्हें हटाने के लिए तीन क्षेत्र निरीक्षण आवश्यक हैं।

क्षेत्र निरीक्षण | फसल अवस्था | बुवाई के बाद दिन | राउजिंग के लिए असामान्य प्रकार का विवरण

1. पहला | फूल आने से पहले | 60-65 दिन | पौधे जो रूपात्मक विवरण से भिन्न होते हैं

2. दूसरा | फूल आने के समय | 80-85 दिन | पौधे जो फूल के रंग विवरण से भिन्न होते हैं

3. तीसरा | फूल आने के बाद | 95-100 दिन | पौधे जो फूल के रंग विवरण से भिन्न होते हैं सूखे अवस्था में

अपवांछन (Rouging): असामान्य प्रकार के पौधों की राउजिंग कांटे दिखने से पहले की जानी चाहिए। उच्च उत्पादन और अच्छे गुणवत्ता वाले बीज प्राप्त करने के लिए समय पर अपवांछन करना आवश्यक है। सभी असामान्य प्रकार के पौधों को हटाना चाहिए, जिनमें कॉलर के पौधे भी शामिल हैं।

कुसुम किस्मों का रूपात्मक विवरण: क्षेत्र निरीक्षण के दौरान, बीज उत्पादन खेतों में किस्म के पौधों का निरीक्षण रूपात्मक विवरण के अनुसार किया जाना चाहिए ताकि पौधों की पहचान की जा सके और रूपात्मक विवरण से भिन्न पौधों को खेत से हटा दिया जाए। फूलों की पंखुड़ी के रंग में मुख्य अंतर फूलने के समय और बाद में सूखे अवस्था में किस्मों की पहचान करने में मदद करता है।

कटाई और थ्रेशिंग: फसल को तब काटें जब बीज फसल पक जाए।

बीज फसल की कटाई तब करनी चाहिए जब बीजों का सिर सूख जाए और हाथ में आसानी से निकल जाएं। देर से कटाई उचित नहीं है क्योंकि देर से वर्षा के कारण अंकुरण कम हो सकता है। परिपक्व पौधों को या तो काटा जाता है या उखाड़ा जाता है और कुछ दिनों के लिए सूखने के लिए खड़ा किया जाता है। बीज को गीला या हरा नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे थ्रेशिंग में कठिनाई हो सकती है। बीजों को सुरक्षित भंडारण के लिए 8 प्रतिशत या उससे कम नमी तक सुखाना चाहिए। थ्रेशिंग सूखे तनों को लकड़ी से पीटकर की जाती है। इसके बाद बीजों की सफाई हवा से की जाती है।

कृषि क्रियाएँ:

हाइब्रिड: DSH-185: महिला माता (A-133) और पुरुष माता (R लाइन) 1705-p22 का उपयोग किया जाता है।

विलंबित बुवाई: पुरुष माता (R लाइन) 1705-p22 को महिला माता (A-133) से 5-7 दिन पहले बोना चाहिए ताकि दोनों माता-पिता में फूलने का समय समान हो सके।

पंक्ति अनुपात: महिला और पुरुष लाइनों के लिए पंक्ति अनुपात 4:1 होना चाहिए।

बीज दर: महिला (A लाइन) के लिए बीज दर 7.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और पुरुष (R लाइन) के लिए 2.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है।

अलगाव की दूरी: फाउंडेशन स्टेज के बीज के लिए न्यूनतम अलगाव दूरी 700 मीटर और प्रमाणित स्टेज बीज के लिए 400 मीटर आवश्यक है।

बुवाई विधि और दूरी: बीज उत्पादन में बुवाई के लिए रिज और furrow विधि आदर्श है। पंक्तियों के बीच 45 सेंटीमीटर और पौधों के बीच 20 सेंटीमीटर की दूरी बनाए रखनी चाहिए।

सिंचाई: हाइब्रिड बीज उत्पादन के लिए उच्च पैदावार प्राप्त करने के लिए सिंचाई के तहत इसे लिया जाना चाहिए। बुवाई से पहले सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई 40-45 दिन बाद वृद्धि और शाखांकन अवस्था में दी जानी चाहिए और दूसरी सिंचाई बुवाई के 70-80 दिन बाद फूल आने से पहले और फूलने के समय दी जानी चाहिए।

अपवांछन: क्षेत्र निरीक्षण के दौरान, हाइब्रिड के बीज उत्पादन क्षेत्रों में पौधों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण किया जाना चाहिए ताकि A लाइन और R लाइन पौधों के रूपात्मक विवरण से भिन्न पौधों की पहचान की जा सके और उन्हें हटा दिया जा सके। महिला लाइन (A लाइन) पंक्तियों में सभी पौधे बाँझ प्रकार के होने चाहिए। कभी-कभी A-लाइन पंक्तियों में 1-2% पराग देने वाले या उर्वर पौधे दिखाई दे सकते हैं, जिन्हें कुछ फूलों के कलियों के खुलने के बाद तुरंत हटा दिया जाना चाहिए।

उर्वर और बाँझ पौधों की पहचान:

A लाइन या महिला माता: A लाइन पंक्तियों में सभी पौधे बाँझ होने चाहिए। उर्वर पौधों या पराग देने वाले पौधों को महिला लाइन से हटा देना चाहिए।

बाँझ पौधे: बाँझ फूल पूरी तरह से नहीं खुलते। वे चिपटी ब्रश जैसी उपस्थिति और छोटे और पतले फूलों के होते हैं। शैली छोटी और अविकसित होती है और पराग अनुपस्थित होता है।

उर्वर पौधे या पराग देने वाले पौधे: फूल पूरी तरह से खुले होते हैं, बड़े फूल और लंबे प्रक्षिप्त शैली होते हैं। फूलों में प्रचुर मात्रा में पीला रंग का पराग होता है।

R लाइन या पुरुष माता: R लाइन से किसी भी बाँझ पौधों को हटा दिया जाना चाहिए। R लाइन या पुरुष माता बीज उत्पादन में सभी पौधे उर्वर होने चाहिए।

कटाई: कटाई बुवाई के लगभग 120 से 125 दिन बाद तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटका, महाराष्ट्र और ओडिशा के गर्म रबी क्षेत्रों में की जाती है और मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश और बिहार के ठंडे रबी क्षेत्रों में 140-145 दिन बाद की जाती है। हाइब्रिड बीज उत्पादन खेतों में पहले पुरुष पंक्तियों की कटाई की जानी चाहिए। इसके बाद महिला पंक्तियों की कटाई की जानी चाहिए। पुरुष पंक्तियों से बीज की थ्रेशिंग के बाद महिला पंक्तियों की थ्रेशिंग की जानी चाहिए। हाइब्रिड बीज की कटाई में उचित देखभाल और सफाई के साथ कांबाइन हार्वेस्टर का उपयोग किया जाना चाहिए ताकि बीज को अन्य साफ्लावर खेतों के बीज से प्रदूषित होने से बचाया जा सके। मैन्युअल कटाई दिन के शुरुआती घंटों में की जानी चाहिए। बीज की थ्रेशिंग लकड़ी से पीटकर या बैल द्वारा खींचे गए पत्थर के रोलर या ट्रैक्टर की मदद से की जा सकती है।

बीज उत्पादन को अधिकतम करने के लिए महत्वपूर्ण बिंदु:

1. अनुशंसित बीज दर का उपयोग किया जाना चाहिए।
2. उचित दूरी और पंक्ति अनुपात का पालन किया जाना चाहिए।
3. किसी भी चरण में, विशेष रूप से बडिंग से फूलने तक, नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।
4. NPK का अनुशंसित उर्वरक डोज और आवश्यकता आधारित IPM अपनाया जाना चाहिए।
5. पौध संरक्षण उपायों का उपयोग मधुमक्खियों के भ्रमण के उच्चतम समय के दौरान नहीं किया जाना चाहिए।
6. कांबाइन हार्वेस्टर के उपयोग और सफाई में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

संदर्भ

- अबरना थूयावथी, आर; श्रीधर, एस; सुब्रमणियन, के और विजयलक्ष्मी, के (2013) 'सूरजमुखी', विजयलक्ष्मी, के (संपादक) द्वारा, तेल फसलों और दलहनों के लिए बीज उत्पादन तकनीकें। चेन्नई: भारतीय ज्ञान प्रणाली केंद्र (CIKS), पुनर्जीवित वर्षा आधारित कृषि नेटवर्क के सीड नोड, पृष्ठ 7-8।आग्रवाल, आरएल (1997)
- 'तेल फसलों का बीज उत्पादन', बीज प्रौद्योगिकी में। 2री संस्करण। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड और आईबीएच पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, अध्याय 8।आलागवानी, एम; फराग, एमआर; अब्द एल-हैक, एमई और धामा, के (2015) मुर्गी पालन में सूरजमुखी के भोजन का व्यावहारिक अनुप्रयोग। एडव. एनिम. वे. साइ., 3:634–648।

अंजनी, के; सुधाकर बाबू, एसएन और विश्वनुर्धन रेड्डी, ए (2019) सैफ्लावर में गुणवत्ता वाले बीज उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकियां। I C A R - भारतीय तेलबीज अनुसंधान संस्थान, राजेंद्रनगर, हैदराबाद।(http://www.icar-iior.org.in)

- ब्लिचर्स्का, ई; कोम्स्ता, एल; कोकजान, आर; गुमिएनिक्जेक, ए; क्लोक, ए और काजमीरचैक, जे 2014) धातु-समृद्ध समाधानों में उगाए गए अंकुरों में सूक्ष्म तत्वों का निर्धारण आयन क्रोमैटोग्राफी द्वारा। एक्टा क्रोमैटोग्र,26(4):739–747।

बीज मानक:

परामानक	आधार बीज	सत्यापित बीज
अंकुरण (न्यूनतम)%	80	80
भौतिक शुद्धता (न्यूनतम)%	98	98
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)%	2	2
अन्य फसल के बीज (न्यूनतम) प्रति किलो	कोई नहीं	कोई नहीं
खरपतवार के बीज (न्यूनतम) प्रति किलो	5	10
नमी की मात्रा (अधिकतम)%	-	-
(a) सामान्य पैक के लिए नमी की मात्रा (अधिकतम)%	9	9
(b) वाष्परोधी पैक के लिए नमी की मात्रा (अधिकतम)%	7	7

प्रजनन के उद्देश्य

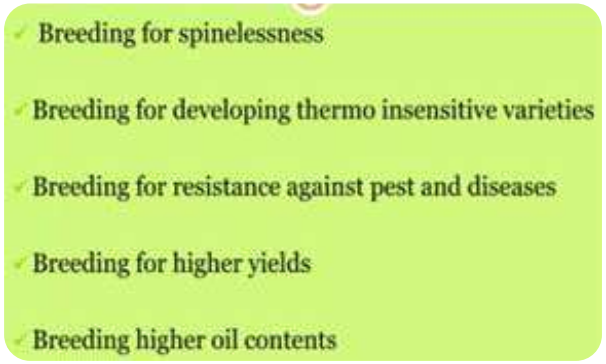

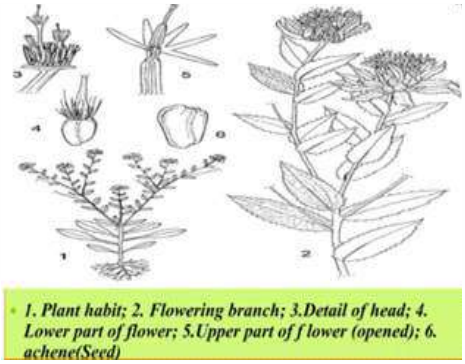

- दाजुए, ली और मुंडेल, एचएच (1996) सैफ्लावर। कार्थमस टिन्कटोरियस एल। उपयोग में कम और उपेक्षित फसलों के संरक्षण और उपयोग को बढ़ावा देना। 7। पौधा आनुवंशिकी और फसल पौध अनुसंधान संस्थान, गेटरसलबेन/अंतर्राष्ट्रीय पौध आनुवंशिकी संसाधन संस्थान, रोम, इटली।

  दुबे, ए और पीके उपाध्याय (2018) कार्थमस टिन्कटोरियस में उपज योगदान करने वाले लक्षणों की पहचान संघ विश्लेषण द्वारा, भारतीय शोध पत्रिका आनुवंशिकी और जैव प्रौद्योगिकी 10 (04): 60-73।

- दुबे, ए; पीके उपाध्याय, जे शर्मा (2019) कार्थमस टिन्कटोरियस में उपज और सूखा सहिष्णुता के लिए आनुवंशिक परिवर्तनीयता का पैटर्न जांचना, भारतीय शोध पत्रिका आनुवंशिकी और जैव प्रौद्योगिकी 11 (01): 3544।
- फाउलर, एमडब्ल्यू (2006) पौधे, औषधियां और मनुष्य। जे. साइ. फूड एग्रीकल्चर, 86(12):1797–1804।
- किम, ईओ; ओह, जेएच; ली, एसके; ली, जेवाई और चोई, एसडब्ल्यू (2007) सैफ्लावर (Carthamus tinctorius L.) बीजों से एंटीऑक्सीडेंट गुण और फेनोलिक यौगिकों की मात्रात्मकता। फूड साइंस और बायोटेक्नोलॉजी, 16: 71-77।
- नॉलेस, पीएफ (1969) पौधों की विविधता के केंद्र और फसल जर्मप्लाज्म का संरक्षण: सैफ्लावर। इकोन. बोटनी,23:324-329।
- पास्को, पी; बार्टन, एच; जाग्रोडzki, पी; गोरिंस्टीन, एस;फोल्टा, एम और ज़ाचवेज़, जेड (2009) एंथोसायनिन,कुल पॉलीफेनोल और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि अमरांथ और क्विनोआ बीजों और अंकुरों में उनके विकास के दौरान। फूड कैम., 115(3):994–998।
- पटिल, बीएस, आरएल रविकुमार (2005) सैफ्लावर (Carthamus tinctorius L.) में फ्लोरेट उपज का परिवर्तनीयता उत्पन्न करना और इसके उपज और घटकों के साथ संघ।, VIth अंतर्राष्ट्रीय सैफ्लावर सम्मेलन, इस्तांबुल-तुर्की
- रविकुमार, आरएल; एमएस प्रिया, पटिल, बीएस, डी सतीश (2005) सैफ्लावर (Carthamus tinctorius L.) में चयनित उत्परिवर्तकों के लिए डीएनए प्रोफाइलिंग और फिंगरप्रिंटिंग। VIth अंतर्राष्ट्रीय सैफ्लावर सम्मेलन, इस्तांबुल-तुर्की
- सास्ट्रि, एसके; मंडल, बी; हैमंड, जे; स्कॉट, एसडब्ल्यू और ब्रिडन, आरडब्ल्यू (2019) कार्थमस टिन्कटोरियस (सैफ्लावर)। पौधों के विषाणुओं और वैरोइड्स की एनसाइक्लोपीडिया, 456-458।
- विजय, डी (2005) सैफ्लावर और सोयाबीन बीजों में अवशिष्टता पैटर्न की भौतिक और आणविक तुलना, बीज विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्रभाग भारतीय कृषि अनुसंधान ...

  यूल, आरजे और हुआंग, एएचसी (1978) कास्टोर बीज के प्रोटीन बॉडीज में संग्रहण प्रोटीन की उपस्थिति। प्लांट फिजियोल., 61:13–16।

  यूल, आरजे और हुआंग, एएचसी (1981) विभिन्न प्रजातियों के तेल बीजों में कम आणविक भार और उच्च सिस्टीन युक्त एल्ब्यूमिन संग्रहण प्रोटीन की उपस्थिति। अम ज बॉट, 68:44–48।

"जीवन जीने के दो ही तरीके हैं। एक यह कि कुछ भी चमत्कार नहीं है। दूसरा यह कि सब कुछ चमत्कार है।"

– अल्बर्ट आइंस्टीन

अंगूर गीत

आओं प्यारें सब साथी हमारे ।
किसान सेवा और विकास सवारें ।।
अनुसंधान शिक्षा और निर्देशन ।
राष्ट्र हित और खेत संवर्धन ।।
उठो केंद्र के बागवानी श्रमिक और सेवक ।
वैज्ञानिक प्रशासनिक और अनु. सहायक।।
सांझा करो उज्वल शिक्षा और कुशल ज्ञान ।
सब पर निर्भर देश का हित और कल्याण ।।
नई शिक्षा और अनमोल निर्देशन ।
बागवानी किसानों को सवर्धन ।।
अंगूर दर्जा और अनुकुल शिक्षा ।
परिषद नीति का हमारा लक्ष ।।
किसानों को हितैषी सेवा और दीक्षा ।
राष्ट्र को प्रेरित एक अनमोल शिक्षा ।।
ध्येय हमारा शिक्षा एव कृषि अनुसंधान ।
परिषद मे सबसे प्यारा हमारा संस्थान ।

श्री .वी.डी. गायकवाड़
सहायक
राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र,पुणे

सोयाबीन के प्रमुख हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन

डॉ.लोकेश कुमार मीणा, डॉ.वन्गाला राजेश, डॉ.विराज काम्बले, डॉ.संजीव कुमार, डॉ.महावीर प्रसाद शर्मा, डॉ.हेमंत सिंह महेश्वरी एवं डॉ.पुनम कुचलान

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001

संवादी लेखक का ई-मेल : lokesharsnagpur@gmail.com

सोयाबीन फसल को नुकसान पहुचाने वाले कीटों की संख्या वैसे तो 270 से अधिक है, किन्तु भारतवर्ष में लगभग 15-20 प्रकार के कीट ही प्रमुख हैं, जो कि फसल की विभिन्न अवस्थाओं को ग्रसित करते पाए गए हैं। पौधे के विभिन्न भागों को नुकसान करने की प्रकृति के अनुसार प्रमुख कीटों की पहचान एवं संक्षिप्त जीवन- चक्र का विवरण इस खण्ड में दिया जा रहा है।

(1) नीला भृंग: यह कीट गहरे चमकीले नीले रंग (लगभग काला) का होता है जिसका सिर नारंगी रंग का होता है। हल्के से स्पर्श मात्र से ही यह भूमि पर गिर जाता है एवं मृतप्राय सा पड़ा रहता है। यह कीट पहले अंकुरित सोयाबीन के दलपत्रों को खाता है, तत्पश्चात् पौधे के वृद्धि वाले भाग को खा कर नष्ट कर देता है जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है। यह पाया गया है कि बोवाई के बाद जब लगातार वर्षा के कारण भूमि में अधिक नमी बनी रहती है, तब इस कीट का प्रकोप अधिक होता है।

(2) तना मक्खी: यह कीट सोयाबीन उत्पादन करने वाले प्रायः सभी क्षेत्रों में फसल को ग्रसित करता है। वयस्क मक्खी साधारण घरेलू मक्खी के समान किन्तु आकार में लगभग 2 मि. मी. एवं चमकीले काले रंग की होती है। यह वयस्क मक्खी दलपत्रों या पत्तियों के अंदर अण्डे देती है। अण्डे में से निकलने वाली छोटी-सी इल्ली ही इस कीट की नुकसान करने वाली अवस्था है। पूर्ण विकसित इल्ली हल्के पीले रंग की एवं लगभग 3-4 मि.मी. लम्बी होती है। पत्तियों की शिराओं के माध्यम से यह इल्ली तने में पहुँच कर टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग बनाकर खाती है। इस प्रकार के प्रकोप से सबसे अधिक हानि अंकुरण के 7-10 दिनों में होती है, जबकि ग्रसित पौधे पूर्णतः सूख जाते हैं। इस कारण खेत में पौध संख्या कम हो उपज कमी होती है। फसल की बाद की अवस्था में प्रकोप होने पर यद्यपि पौधा सूखता नहीं है, किन्तु तने में सुरंग के कारण फलियों की संख्या एवं दानों के वजन में कमी आ जाती है। कुछ फलियों में तो दाने विकसित ही नहीं हो पाते है। इल्ली अपना जीवन काल (लगभग 10-12 दिन) पूर्ण करने से पूर्व तने में एक निकास छिद्र बना देती है एवं बाद में शंखी में परिवर्तित हो जाती है। कुछ दिन बाद शंखी में से वयस्क मक्खी बन कर निकास छिद्र द्वारा बाहर आ कर पुनः अपना जीवन चक्र प्रारंभ कर देती है।

(3) अलसी की इल्ली: इस कीट का प्रकोप फसल की प्रथम त्रिपत्री अवस्था में होता है। इसकी इल्लियों के रंग में विविधता पाई जाती है। ये हरे भूरे या कत्थई रंग की होती है। शरीर के दोनों ओर हल्के पीले या हरे रंग की धारी होती है एवं पृष्ट भाग पर गहरे भूरे रंग की एक मोटी धारी होती है। नवजात इल्लियाँ प्रथम त्रिपत्र को जाल से चिपका कर, उसके हरे भाग को खुरच के खाती हैं, जिससे पूरी पत्तियाँ सफेद दिखने लगती हैं। बड़ी होने पर ये पत्तियों को अनियमित छेद बना कर नुकसान पहुँचाती हैं एवं पौधे की वृद्धि वाले भाग को नष्ट कर देती हैं। फलस्वरुप पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है। वयस्क पतंगा भूरे रंग का होता है एवं इसके अग्र पंखों पर ईंट के रंग के गोल व गुर्दे के आकार के धब्बे होते हैं।

(4) पत्ती सुरंगक इल्ली: वयस्क कीट एक छोटा-सा स्लेटी रंग का पतंगा होता है जिसके ऊपरी पंखों की किनारों पर सफेद धब्बा पाया जाता है। निचले पंखों की बाहरी किनारों पर बालों की कतार होती है। इल्ली लगभग 4-6 मि.मी. लम्बी एवं मटमैले भूरे रंग की होती है। इस कीट का प्रकोप महाराष्ट्र के दक्षिणी भाग एवं कनार्टक के उत्तरी भाग में फसल की प्रारंभिक अवस्था में अधिक देखा गया है। इल्लियाँ पत्ती की दोनों सतहों के बीच में रह कर हरा भाग खाती है, जिससे पत्ती में झिल्ली के सफेद- सफेद फफोले दिखने लगते हैं। इनको सुरंग कहा जाता है जिनकी तुलना युद्ध क्षेत्र में सैनिको द्वारा बनाई गई बारुदी सुरंग से की जा सकती है। एक पत्ती में कई जगह इस प्रकार की सुरंग बनने के कारण पत्ती सिकुड़ कर चोंच नुमा हो जाती है। अधिक प्रकोप होने पर फसल जल जाने का आभास देती है। इल्ली पत्ती पर बनी सुरंग के अंदर शंखी में परिवर्तित हो जाती है।

(6) चक्र भृंग (गर्डल बीटल): सोयाबीन उत्पादक प्रमुख राज्यों - म.प्र., महाराष्ट्र एवं राजस्थान में यह सोयाबीन फसल का प्रमुखहानिकारक कीट है। वयस्क कीट नारंगी रंग का होता है, जिसके पंखों का निचला भाग काला होता है| इसकी श्रंगिकाएँ (antennae) शरीर की लम्बाई के बराबर एवं पीछे की ओर मुड़ी हुई होती हैं। इसकी इल्ली पैर विहीन, पीले रंग की एवं शरीर पर उभार लिये होती है। पूर्ण विकसित इल्ली लगभग 2 से.मी. लम्बी होती है।इस कीट का जीवन चक्र अत्यंत रोचक किन्तु जटिल होता है। सर्वप्रथम मादा पौधे के तने, शाखा अथवा पर्णवृंत पर (फसल की बढ़वार के अनुसार) दो चक्र बनाती है। निचले चक्र के समीप एक छिद्र बना कर पौधे के अंदर एक हल्के पीले रंग का अण्डा देती है। दो चक्रों के बीच का हिस्सा

खोलने पर यह अण्डा स्पष्ट दिखलाई देता है| चक्र बनाने के कारण चक्रों से ऊपर वाला पौधे का भाग मुरझा सूख जाता है जो कि चक्र भृंग होने का सूचक है। कुछ दिनों के पश्चात् अण्डे में से इल्ली निकलकर पौधे के अंदरूनी भाग को खा कर खोखला कर देती है। परिणामस्वरूप फलियों की संख्या एवं पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पूर्ण विकसित इल्ली पौधे को अंदर से काट कर गिरा देती है, जिससे इस भाग में लगी फलियों से किसान वंचित हो जाते हैं। भूमि से लगे हुए भाग में से पुनः इल्ली अपने शरीर की लम्बाई के बराबर एक टुकड़ा काट कर उसमें पड़ी रहती है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि जून-जुलाई में दिये गये अण्डे से निकली इल्ली उसी खरीफ मौसम में शंखी में परिवर्तित हो जाती है। कुछ दिनों बाद वयस्क बाहर निकल कर पुनः अपना जीवन चक्र प्रारंभ कर देता है। किन्तु सितम्बर-अक्टूबर माह में दिये गये अण्डों में से निकली इल्ली, तने के खोल के भीतर ही सुषुप्तावस्था में चली जाती है, एवं अगले वर्ष वर्षा आरंभ होने पर ही शंखी में परिवर्तित हो कर अपना जीवन चक्र पूर्ण करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जुलाई में प्रकोप होने से सोयाबीन फसल को अधिक नुकसान होता है। ऐसा अनुमान है कि चक्र भृंग जब एक प्रतिशत फसल को काट कर गिरा देता है तो लगभग साढ़े पाँच कि.ग्रा. उपज कम हो जाती है।

(7) अर्धकुण्डलक इल्ली (सेमीलूपर): अर्धकुण्डलक इल्लियाँ, सोयाबीन की पत्ती खाने वाली इल्लियों में प्रमुख हैं। ये सभी इल्लियाँ प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे-छोटे छेद बना कर खाती है। बड़ी होने पर ये पत्तियों पर बड़े-बड़े अनियमित छेद कर देती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों पर शिराएँ मात्र ही शेष रह जाती हैं जिसके पश्चात् इनका आक्रमण कलिकाओं, फूलों एवं नव-विकसित फलियों पर प्रारंभ हो जाता है। क्रायसोडेक्सिस एक्यूटा जाति की इल्ली हरे रंग की होती है जिसके पृष्ठ भाग पर एक लम्बवत् पीली धारी एवं शरीर के दोनों ओर एक-एक सफेद धारी होती है। शरीर का पिछला भाग, अगले भाग से अधिक मोटा होता है। वयस्क पतंगो के ऊपरी पंखों पर दो धब्बे होते हैं जो अंग्रेजी के आठ अंक जैसे आपस में जुड़े हुए होते हैं। डायक्रीसिया ऑरिचैल्सिया जाति की इल्ली भी क्रायसोडेक्सिस एक्यूटा जैसी होती है किन्तु इसके शरीर पर कुछ रोएँ स्पष्ट देखे जा सकते हैं। वयस्क पतंगों के ऊ परी पंखों पर बड़ा, तिकोना सुनहरा धब्बा होता है गेसोनिया गेम्मा जाति की इल्ली ऊपर बताई गई इल्लियों से छोटी होती है। एवं शरीर की मोटाई एक जैसी होती है। हरे रंग की इस इल्ली को थोड़ा भी स्पर्श करने पर, तेजी से तड़पते हुए छिटक कर नीचे गिर जाती है। इसके वयस्क मध्यम आकार के भूरे रंग के होते हैं जिनके ऊपरी पंखों पर एक सफेद धब्बा दिखलाई पड़ता है। मोसिस अनडाटा जाति की भूरे रंग की इल्ली लगभग 4-5 सें.मी. लम्बी होती है। जिसके शरीर पर भूरी, पीली या नारंगी लंबवत धारियाँ होती है। वयस्क पतंगा 3-4 सें.मी. बड़ा एवं भूरे रंग का होता है। इसके ऊपरी पंखों पर काली - कत्थई रंग की चौड़ी धारियाँ होती है। हरी इल्लियों का प्रकोप रिमझम वर्षा में अधिक होता है किन्तु मोसिस अनडाटा का प्रकोप कम वर्षा या सूखे की स्थिति में अधिक होता है।

(8) तंबाकू की इल्ली (टोबैको कैटरपिलर): यह कीट मूल रुप से तम्बाकू की फसल का प्रमुख कीट हुआ करता था किन्तु अब यह सोयाबीन सहित कई फसलों को नुकसान करता पाया गया है। वृद्धि की दूसरी अवस्था के बाद इसकी इल्लियों में कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता भी उत्पन्न हो जाती है। वयस्क पतंगा 2-3 से.मी. एवं मटमैले भूरे रंग का होता है जिसके ऊपरी पंखों पर सफेद रंग की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ होती है। निचले पंख सफेद होते हैं। एक वयस्क मादा अपने जीवन काल में 1200 से 2000 अंडे देती है। अण्डे 200-250 के समूहों में पत्ती की निचली सतह पर दिये जाते हैं। प्रत्येक समूह को मादा पतंगा अपने शरीर से निकले रुओं से ढांक देती है। समूह में से निकली छोटी इल्लियाँ मटमैले हरे रंग की होती हैं एवं 4-5 दिन तक एक ही पत्ती पर रहते हुए हरे भाग को खुरच-खुरच कर खाती हैं। धीरे-धीरे पौधे की अन्य पत्तियों को भी इसी प्रकार खाती हैं। परिणामस्वरुप ग्रसित पत्ती एवं सम्पूर्ण पौधा जालीदार हो जाता है एवं दूर से ही पहचाना जा सकता है। बड़ी होने पर इल्लियाँ पूरे खेत में फैल जाती हैं एवं पत्तियों को खाकर फसल को नुकसान पहुंचाँती हैं। पूर्ण विकसित इल्लियाँ हरे, भूरे या कत्थई रंग की होती हैं। शरीर के प्रत्येक खण्ड के दोनों ओर काले तिकोने धब्बे इसकी विशेष पहचान हैं। इस कीट की शंखी, भूमि पर गिरी हुई पत्तियों में बनती है।

(9) चने की फली: बहुफसल भक्षी एवं कीटनाशक प्रतिरोधी यह कीट आज एक वैश्विक समस्या बन गया है। भारतवर्ष में यह चना, कपास, अरहर, टमाटर, भिण्डी, गोभी, तम्बाकू, मूंगफली, मूंग, उड़द आदि फसलों को नुकसान करता पाया गया है। विगत् कुछ वर्षों से मध्यप्रदेश के कुछ भागों में यह सोयाबीन का भी प्रमुख कीट हो गया है। वयस्क पतंगा मटमैले भूरे या हल्के कत्थई रंग का होता है। ऊपरी पंखों पर बादामी रंग की आड़ी-तिरछी रेखाएँ होती हैं। सफेद रंग के निचले पंखों की बाहरी किनारों पर एक चौड़ा काला भाग होता है। इल्लियों के रंग रूप में काफी विविधता पाई जाती है। ये 2-4 से.मी. लम्बी विभिन्न रंगों की लंबवत् रेखाएँ लिये हुए, हरे, भूरे, कत्थई, नारंगी-पीले आदि रंग की हो सकती हैं। मूलतः इल्लियाँ फलियों को खाती हैं, प्रारंभिक अवस्था में आक्रमण होने पर ये पत्तियों को भी खाती है । फूल आने पर फूलों एवं बाद में नन्हीं फलियों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देती हैं। फलियों में दाना भरते समय, दानों की जगह छेद कर भीतर से दाना खा जाती हैं। अधिक आक्रमण होने पर फूल एवं नन्हीं फलियाँ नष्ट हो जाने के कारण अफलन की स्थिति बन जाती है।

(12) स्लेटी घुन: कपास का यह प्रमुख कीट, उत्तरी भारत में सोयाबीन को भी नुकसान पहुँचाता है। लगभग 5-6 से.मी. बड़े इस घुन के कठोर, स्लेटी पंखों पर काले धब्बे होते हैं। इसकी श्रंगिकाएँ मुड़ी हुई एवं आगे की ओर मोटी होती है। यह कीट पत्तियों को बाहरी किनारों के कुतर -कुतर कर खाता है, जो इसकी विशेषता है। अधिक संख्या में होने पर ये कलिकाओं एवं फूलों पर भी आक्रमण करते हैं।

(13) सफेद मक्खी: रस चूसने वाली लगभग 2-3 मि.मी. आकार वाली यह सफेद मक्खी दिल्ली,पंजाब, हरियाणा एवं तराई क्षेत्रों में सोयाबीन फसल की प्रमुख शत्रु है। मक्खी के शिशु पैर विहीन एवं अण्डाकार होते हैं जो पत्ती की निचली सतह पर चिपके रहते हैं। इस कीट से सोयाबीन फसल को तीन प्रकार से नुकसान होता है। एक- वयस्क एवं शिशुओं द्वारा रस चूसने से पत्तियाँ पीली पड़ कर झड़ जाती हैं। इससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा बाद में फूल एवं फलियाँ भी गिरने लगती हैं। दो- रस चूसने के साथ ये कीट एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ छोड़ते हैं जो निचली पत्तियों की ऊपरी सतह पर जमा हो जाता है। इस पदार्थ पर काली फफूंद विकसित हो जाती है जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है। तीन- वयस्क मक्खी पीला मोज़ाइक बीमारी पैदा करने वाले विषाणुओं के लिये वाहक का कार्य करती है जिससे बहुत कम समय में यह रोग पूरे खेत में फैल जाता है। पीला मोज़ाइक विषाणु से ग्रसित पौधों की पत्तियाँ अनियमित रुप से सिकुड़ने के पश्चात् पीली हो कर सूख जाती हैं।

सोयाबीन में कीट प्रबंधन

सोयाबीन में लगने वाले कीटों के उचित प्रबंधन से लगभग 28-30 प्रतिशत अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि हानिकारक कीटों का उचित प्रबंधन नहीं करने से उपज में 28-30 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। रसायनिक कीटनाशक यद्यपि तुरन्त कीटों को नष्ट करते है, किन्तु इन पर आतिनिर्भरता न तो आवश्यक है न ही वांछनीय है। सोयाबीन की निरंतर अच्छी उपज लेने के लिये यह आवश्यक है कि कीट समस्या से निदान पाने हेतु "समेकित कीट प्रबंधन' की पद्धति अपनाई जाए। समेकित कीट प्रबंधन से आशय है- उन सभी उपायों का समेकित रुप से प्रयोग जिनसे कीटों की संख्या कम कर उन्हें आर्थिक हानि सीमा के अन्दर रखा जा सके।

1. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई - रबी की फसल काटने के उपरांत गहरी जुताई (8-10 इंच) कर खेतों को खुला छोड़ दें। ऐसा करने से मई-जून की भीषण गर्मी से भूमि में रहने वाले कीट या उनकी विभिन्न अवस्थाएँ, बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु एवं खरपतवार के बीज आदि नष्ट हो जाएंगे एवं आगामी खरीफ मौसम में लगाई जाने वाली सोयाबीन पर इनका प्रकोप कम होगा।

2. संतुलित खाद का प्रयोग - सोयाबीन फसल में नत्रजन, स्फुर, पोटाश एवं गंधक पोषक तत्वों की क्रमशः 20 कि.ग्रा., 60-80 कि.ग्रा., 20 कि.ग्रा. एवं 20 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टे. बोवनी के समय ही डालने की अनुशंसा की गई है। पोटाश का उपयोग, पौधों में कीट-व्याधि एवं अन्य अजैविक कारकों के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न करने में सहायक होता है। खड़ी फसल में नत्रजन युक्त खाद डालने से पत्ती खाने वाले कीटों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। समुचित रुप से पकी (सड़ी) हुई गोबर की खाद डालने से मृदा का स्वास्थ्य बना रहता है। अधपकी खाद डालने से सफेद सूण्डी का प्रकोप भी अधिक होता है।

3. मित्र कीटों की क्षमता का उपयोग - हानिकारक कीटों के जैविक नियंत्रण कारक व्याप्त होते हैं। किन्तु रसायनिक कीटनाशकों के अविवेकपूर्ण उपयोग से ये भी प्रभावति होते हैं। फसल वातावरण में परजीवी कीटों की संख्या बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र, नई दिल्ली ने एक साधन विकसित किया है। इसके माध्यम से वातावरण में ब्रेकॉन एवं एपेन्टेलिस जातियों की मित्र कीटों की संख्या को बढ़ाया जा सकता है जो तम्बाकू की इल्ली, चने की इल्ली एवं हरी इल्लियों के प्रबंधन में अत्यंत सहायक होते हैं । इस साधन के अंदर विकसित होते ये मित्र कीट कीटनाशकों के दुष्प्रभाव से भी बचे रहते हैं।

4. कीट प्रतिरोधी या सहनशील प्रजातियों का प्रयोग - यदि कीट प्रतिरोधी या सहनशील प्रजातियों की काश्त की जाए तो न केवल कीटों द्वारा होने वाली हानि से बचा जा सकता है बल्कि उपज में भी स्थिरता बनी रहती है। कीटनाशकों की आवश्यकता कम होने से धन की भी बचत होती है। अतः अपने जलवायु क्षेत्र के लिए अनुशंसित कम से कम 2-3 प्रजातियों का प्रयोग करें जिनकी पकने की अवधि भिन्न हो। इससे न केवल कटाई में सुविधा होगी बल्कि कीट प्रकोप से हानि भी कम होगी।

5. फिरोमोन ट्रैप एवं प्रकाश प्रपंच- सोयाबीन की पत्तियाँ खाने वाली इल्लियों के वयस्क पतंगे निशाचर होते हैं एवं प्रकाश स्रोत की ओर आकर्षित होते हैं। कीटों के इस स्वभाव का लाभ लेने के लिये खेतों के किनारे प्रकाश-प्रपंच लगाने से ये कीट उसमें कैद हो कर मर जाते हैं। राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा विकसित उन्नत प्रकाश प्रपंच में ऐसी व्यवस्था है जिसमें प्रपंच के अन्दर आए मित्र कीटों को पुनः वातावरण में मुक्त किया जा सकता है। तंबाकू की इल्ली एवं चने की इल्ली के वयस्क पतंगों के लिए फिरोमोन ट्रैप (8-10 प्रति हैक्टे.) अत्यंत प्रभावी होते हैं।

6. पक्षियों के बैठने की व्यवस्था - कई प्रकार के कीट- भक्षी पक्षियों का प्रमुख भोजन इल्लियाँ होती हैं। ये पक्षी निरंतर फसल में से इल्लियों को खाते रहते हैं। इन पक्षियों को बैठने के लिये यदि खेत में 'T' आकार की खूंटियाँ या सूखी झाड़ियाँ (15-20 प्रति हैक्टे.) लगा दी जाएँ, तो पक्षियों की गतिविधि बहुत बढ़ जाती है।

7. उचित कीटनाशकों का चयन एवं घोल की मात्रा: जैसा कि विदित है सोयाबीन की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न तरीके से नुकसान करने वाले कीटों का प्रकोप होता है, जैसे -पत्ती खाने वाले कीट, तना भेदक कीट, रस चूसने वाले कीट आदि। हर वर्ग के कीटों के नियंत्रण हेतु प्रायः भिन्न कीटनाशकों की अनुशंसा की गई है।

तालिका 1: पत्ती खाने वाले कीटों के लिए अनुशंसित कीटनाशक

कीटनाशक	आवश्यक मात्रा
क्लोरेनट्रेनीलीप्रोल 18.5 एस.सी.	150 मिली/ हेक्टेयर
इंडोक्साकार्ब 15.8 ई.सी.	333 मिली/हेक्टेयर
बैक्टेरिया (बी.टी.) या फफूंद आधारित जैविक कीटनाशक	1 किलो/लीटर प्रति हेक्टेय
वायरस (एन.पी.वी.) आधरित जैविक कीटनाशक (केवल तम्बाकू की इल्ली एवं चने की इल्ली के लिये)	250 एल.ई./हैक्टे

तालिका 2: तना भेदक एवं रसचूसक कीटों हेतु अनुशंसित कीटनाशक

कीटनाशक	आवश्यक मात्रा
थायमिथोक्सम् लैम्बडा सायहेलोथ्रिन	125 मिली/हेक्टेयर
थायक्लोप्रिड 21.7 एस.सी.	750 मिली /हेक्टेयर
थायमिथोक्सम 30 एफ.एस. 10 मिली./कि.ग्रा. बीज या इमिडाक्लोप्रिड 48 एफ.एस. 1.25 मिली/कि.ग्रा. बीज से बीजोपचार	

अर्थव्यवस्था पर DDGS आयात का असर

डॉ विशाल एस. थोरात एवं डॉ बी. यु. दुपारे
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : vishal.lotus@gmail.com

भारत सरकार ने आगामी व्यापार समझौते के तहत United States से डिस्टिलर्स ड्राइड ग्रेन्स विद सॉल्यूबल्स (DDGS) के सीमित आयात की अनुमति देने का निर्णय लिया है। सरकार ने 5 लाख टन का कोटा तय किया है और कहा है कि यह भारत की कुल 5 करोड़ टन पशु आहार मांग का मात्र लगभग 1 प्रतिशत है। कागज़ पर यह संख्या छोटी दिखती है। लेकिन मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और अन्य सोयाबीन उत्पादक राज्यों के किसानों के लिए सवाल बड़ा है: क्या इससे सोयाबीन खली (DOC) की मांग घटेगी और किसानों को कम दाम मिलेंगे?

सबसे पहले समझना जरूरी है कि DDGS क्या है। जब मक्का या चावल से एथेनॉल बनाया जाता है, तो एथेनॉल निकालने के बाद जो अवशेष बचता है, उसे सुखाकर पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है। यही DDGS है। इसमें प्रोटीन और ऊर्जा होती है और यह सोयाबीन खली की तुलना में सस्ता पड़ता है। इसी कारण पोल्ट्री और पशु आहार निर्माता इसे आंशिक रूप से सोयाबीन खली के विकल्प के रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं।

पिछले दो वर्षों में सोयाबीन किसानों ने पहले ही दबाव महसूस किया है। DDGS के बढ़ते उपयोग के कारण सोयाबीन खली की मांग में कमी आई है और कीमतों में लगभग 30 प्रतिशत तक गिरावट देखी गई है। उद्योग के आंकड़े बताते हैं कि पशु आहार क्षेत्र में सोयाबीन खली की खपत कम हुई है। जिन किसानों की आय सोयाबीन के दाम पर निर्भर है, उनके लिए यह चिंता का विषय है।

अब जब अमेरिका से DDGS आयात की अनुमति दी गई है, तो डर यह है कि यदि सस्ता और बेहतर गुणवत्ता वाला DDGS बाजार में आता है तो भारतीय सोयाबीन खली की मांग और घट सकती है। अमेरिकी DDGS में अफ्लाटॉक्सिन का स्तर कम (लगभग 10 ppb) माना जाता है, जबकि भारतीय DDGS में कई बार यह 50–100 ppb तक पाया गया है। यदि पशु आहार कंपनियाँ बेहतर गुणवत्ता के कारण आयातित DDGS को प्राथमिकता देती हैं, तो सोयाबीन की पेराई और खली की मांग प्रभावित हो सकती है।

कुछ तथ्य

पहला, DDGS सोयाबीन खली का पूर्ण विकल्प नहीं है। पोषण की दृष्टि से सोयाबीन खली का अमीनो एसिड संतुलन बेहतर माना जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार, सामान्यतः 10–15 प्रतिशत से अधिक DDGS को आहार में शामिल नहीं किया जा सकता। इसलिए सोयाबीन खली की मांग पूरी तरह समाप्त नहीं होगी।

दूसरा, भारत का पोल्ट्री और डेयरी क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है। पोल्ट्री उत्पादन हर साल लगभग 8–10 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। जैसे-जैसे अंडे, चिकन और दूध की खपत बढ़ रही है, वैसे-वैसे प्रोटीन युक्त पशु आहार की कुल मांग भी बढ़ रही है। यानी कुल मांग बढ़ रही है, भले ही उसका स्वरूप बदल रहा हो।

तीसरा, आयात की मात्रा 5 लाख टन तक सीमित है। यह भारत की कुल पशु आहार आवश्यकता की तुलना में बहुत कम है। असली खतरा तब हो सकता है जब भविष्य में इस कोटे को बढ़ाया जाए।

सभी किसानों की चिंता पूरी तरह गलत नहीं है। भारत का सोयाबीन क्षेत्र पहले से ही कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। देश हर वर्ष बड़ी मात्रा में सोयाबीन तेल आयात करता है। तेलहन फसलों की उत्पादकता वैश्विक औसत से कम है। अनुसंधान और नई किस्मों में निवेश अपेक्षाकृत कम है। ऐसे में यदि घरेलू खली की मांग घटती है और आयात बढ़ते हैं, तो किसानों का विश्वास डगमगाता है।

एक और बड़ा बदलाव एथेनॉल नीति के कारण हुआ है। मक्का की बड़ी मात्रा एथेनॉल उत्पादन में जा रही है, जिससे घरेलू स्तर पर DDGS का उत्पादन पहले ही बढ़ चुका है। यदि घरेलू उत्पादन के साथ-साथ आयात भी जुड़ते हैं, तो प्रतिस्पर्धा और बढ़ सकती है। सोयाबीन किसानों के लिए असली मुद्दा केवल यह एक निर्णय नहीं है, बल्कि दीर्घकालिक मूल्य स्थिरता और आय सुरक्षा है।

यदि सरकार कोटा सख्ती से लागू रखती है और आयात सीमा से अधिक नहीं होने देती, तो प्रभाव सीमित रह सकता है। साथ ही, सोयाबीन क्षेत्र को मजबूत करने के लिए उच्च उत्पादकता, बेहतर किस्में, प्रसंस्करण दक्षता और संतुलित व्यापार नीति की आवश्यकता है।

इस चुनौती में अवसर भी छिपा है। यदि आयातित DDGS गुणवत्ता के कारण पसंद किया जा रहा है, तो भारतीय उद्योग को भी गुणवत्ता सुधार पर ध्यान देना होगा—बेहतर सुखाने की तकनीक, कम नमी और कम अफ्लाटॉक्सिन स्तर सुनिश्चित करने होंगे। इसी तरह सोयाबीन प्रसंस्करण उद्योग को भी प्रतिस्पर्धात्मक बनना होगा।

व्यापार नीति किसानों की आजीविका के खिलाफ नहीं जानी चाहिए। लेकिन केवल संरक्षण से भी कृषि मजबूत नहीं होती। संतुलन जरूरी है—किसानों को अचानक झटके से बचाते हुए उन्हें दीर्घकाल में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाना होगा।

Rice DDGS

Corn DDGS

सोया प्रोटीन: शाकाहारियों का 'सुपरफूड' और भविष्य का पोषण

डॉ. नेहा पांडे, डॉ. पुनम कुचलान, डॉ. विराज काम्बले एवं डॉ. के. एच. सिंह
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : nehapandey.ft06@gmail.com

सारांश

सोया प्रोटीन विश्व में सबसे महत्वपूर्ण वनस्पति प्रोटीन स्रोतों में से एक है, जो उच्च गुणवत्ता वाले अमीनो अम्ल प्रोफाइल, बेहतर कार्यात्मक गुणों तथा स्वास्थ्य लाभों के कारण व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। यह लेख सोया प्रोटीन की संरचना, पोषण महत्व, स्वास्थ्य प्रभाव, निर्माण प्रक्रिया, अन्य पौध एवं पशु प्रोटीन से तुलना, औद्योगिक अनुप्रयोग तथा भविष्य की संभावनाओं पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करता है। सोया प्रोटीन न केवल खाद्य सुरक्षा में योगदान देता है बल्कि टिकाऊ औद्योगिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

1. परिचय

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी और फिटनेस के प्रति बढ़ती जागरूकता के बीच 'प्रोटीन' शब्द हमारी जुबान पर चढ़ गया है। जब भी हम प्रोटीन की बात करते हैं, तो अक्सर अंडे, चिकन या पनीर का ख्याल आता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में एक ऐसी चीज़ ने पोषण की दुनिया में हलचल मचा दी है जिसने वैज्ञानिकों और जिम जाने वालों, दोनों को प्रभावित किया है और वह है सोया प्रोटीन।

सोयाबीन, जिसे वैज्ञानिक रूप से ग्लाइसिन मैक्स कहा जाता है, महज़ एक दाल नहीं है। इसे 'शाकाहारियों का मांस' ; सुनहरी बीन आदि कई नामों से जाना जाता है। सोयाबीन को विश्व स्तर पर उच्च गुणवत्ता वाले वनस्पति प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत माना जाता है (तालिका 1)। यह फसल न केवल कृषि-आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि मानव पोषण, खाद्य सुरक्षा और औद्योगिक उपयोग के संदर्भ में भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है। सोयाबीन में लगभग 35–40 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है, जो अधिकांश दलहनों की तुलना में अधिक है। विशेष रूप से महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सोया प्रोटीन में सभी आवश्यक अमीनो अम्ल उपलब्ध होते हैं, जिसके कारण इसे लगभग पूर्ण प्रोटीन स्रोत माना जाता है। यही कारण है कि शाकाहारी आहार प्रणाली में सोया प्रोटीन का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

तालिका 1. सोयाबीन का रासायनिक संघटन

घटक	प्रतिशत (सूखी आधार पर)
प्रोटीन	35–40
वसा	18–20
कार्बोहाइड्रेट	30
फाइबर	5–6
खनिज	4–5
नमी	8–10

वर्तमान समय में जब विश्व स्तर पर जनसंख्या वृद्धि, कुपोषण और प्रोटीन की कमी जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, तब सोया प्रोटीन एक सस्ता, सुलभ और टिकाऊ विकल्प प्रदान करता है। भारत जैसे विकासशील देशों में, जहाँ बड़ी जनसंख्या शाकाहारी है, सोया प्रोटीन पोषण सुधार का प्रभावी साधन बन सकता है।

2. सोया प्रोटीन की संरचना एवं पोषण विशेषताएँ

अगर हमारा शारीर ईमारत है तो प्रोटीन हमारे शरीर की 'ईंटें' हैं। ये अमीनो एसिड से बने होते हैं। हमारे शरीर को '20' तरह के अमीनो एसिड की जरूरत होती है, जिनमें से 9 'अनिवार्य' होते हैं क्योंकि हमारा शरीर इन्हें खुद नहीं बना सकता। ज्यादातर वनस्पति आधारित प्रोटीन (जैसे दालें या अनाज) में एक या दो अनिवार्य अमीनो एसिड की कमी होती है। लेकिन सोयाबीन इस मामले में अपवाद है।

पोषण की दृष्टि से सोया प्रोटीन को उच्च गुणवत्ता वाला इसलिए माना जाता है क्योंकि इसमें लाइसिन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, वेलिन, थ्रेओनिन तथा ट्रिप्टोफैन जैसे आवश्यक अमीनो अम्ल उपलब्ध होते हैं। सोयाबीन का रासायनिक संघटन इसे पोषण की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बनाता है। इसमें प्रोटीन के अतिरिक्त वसा, कार्बोहाइड्रेट, आहार फाइबर तथा खनिज तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। सोया प्रोटीन मुख्यतः ग्लोबुलिन वर्ग का होता है, जिसमें 7S (बीटा-कांग्लाइसिनिन) और 11S (ग्लाइसिनिन) प्रमुख अंश होते हैं। ये प्रोटीन अंश खाद्य प्रसंस्करण के दौरान महत्वपूर्ण कार्यात्मक गुण प्रदान करते हैं, जैसे जल धारण क्षमता, इमल्सीफिकेशन, जेल निर्माण तथा फोम स्थिरता। यद्यपि मेथियोनीन की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, फिर भी संतुलित आहार में इसका समावेश करने पर यह कमी आसानी से पूरी की जा सकती है। सोया में आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा मैग्नीशियम जैसे खनिज भी पाए जाते हैं, जो शरीर के विभिन्न जैविक कार्यों के लिए आवश्यक हैं।

- पूर्ण प्रोटीन: सोया प्रोटीन एक 'कम्प्लीट प्रोटीन' है, जिसमें सभी 9 अनिवार्य अमीनो एसिड सही अनुपात में पाए जाते हैं। यह गुण इसे मांस और डेयरी के बराबर खड़ा कर देता है।
- PDCAAS स्कोर: प्रोटीन की गुणवत्ता मापने के पैमाने (प्रोटीन डाइजेस्टीबीलीटी कोरेक्टेड एमिनो एसिड स्कोर) पर सोया का स्कोर 1.0 होता है, जो अंडे और दूध के बराबर है।

3. स्वास्थ्य लाभ

सोया प्रोटीन के स्वास्थ्य संबंधी लाभों पर अनेक वैज्ञानिक अध्ययन किए गए हैं। शोध बताते हैं कि सोया प्रोटीन का सेवन शरीर में 'एलडीएल' (बुरा कोलेस्ट्रॉल) को कम करने में मदद करता है। इसमें मौजूद 'आइसोफ्लेवोन्स' धमनियों के लचीलेपन को बनाए रखते हैं, जिससे हृदय रोगों का खतरा कम होता है। इसके अतिरिक्त, सोया प्रोटीन मांसपेशियों के निर्माण और मरम्मत में सहायक होता है, इसलिए खिलाड़ियों और शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों के लिए उपयोगी माना जाता है।

चित्र 2. सोया प्रोटीन के स्वास्थ्य लाभ

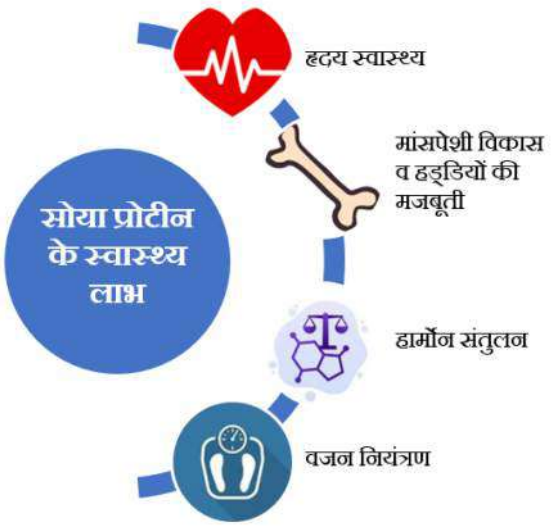

सोया में उपस्थित आइसोफ्लेवोन्स नामक फाइटोएस्ट्रोजन यौगिक विशेष रूप से महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। ये हार्मोन संतुलन बनाए रखने तथा रजोनिवृत्ति से संबंधित लक्षणों को कम करने में सहायक हो सकते हैं। यह हड्डियों के घनत्व को बनाए रखने में मदद करते हैं, विशेष रूप से रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं में ऑस्टियोपोरोसिस के खतरे को कम करने में। इसके अलावा, इसमें उपस्थित कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा जैव सक्रिय यौगिक हड्डियों की मजबूती बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, सोया का उच्च प्रोटीन और फाइबर संयोजन वजन नियंत्रण में भी सहायक माना जाता है क्योंकि उच्च प्रोटीन होने के कारण यह तृप्ति की भावना बढ़ाता है। इसे खाने के बाद देर तक भूख नहीं लगती, जिससे आप फालतू कैलोरी लेने से बच जाते हैं।

सोया के बारे में सबसे बड़ा विवाद इसके 'फाइटोएस्ट्रोजेन' को लेकर है। कई लोग डरते हैं कि यह पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन कम कर देगा। फाइटोएस्ट्रोजेन पौधों में पाए जाने वाले यौगिक हैं जो मानव एस्ट्रोजेन के समान दिखते हैं, लेकिन उनका प्रभाव शरीर पर बहुत कमज़ोर होता है। दर्जनों क्लिनिकल स्टडीज में यह पाया गया है कि संतुलित मात्रा (दिन में 25-50 ग्राम प्रोटीन) में सोया लेने से पुरुषों के हार्मोन स्तर पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। जो लोग शाकाहारी हैं और बॉडीबिल्डिंग करना चाहते हैं, उनके लिए सोया आइसोलेट एक बेहतरीन विकल्प है। यह 'ल्यूसीन' अमीनो एसिड से भरपूर होता है, जो मसल सिंथेसिस के लिए जरूरी है।

4. सोया प्रोटीन के प्रकार

खाद्य और औद्योगिक उपयोग के आधार पर सोया प्रोटीन को विभिन्न रूपों में तैयार किया जाता है (तालिका 2)। सोया फ्लोर अपेक्षाकृत कम प्रसंस्कृत रूप है जिसमें प्रोटीन की मात्रा लगभग 40–50 प्रतिशत होती है। सोया प्रोटीन कॉन्सन्ट्रेट में प्रोटीन की मात्रा लगभग 65–70 प्रतिशत तक होती है और इसका उपयोग प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में व्यापक रूप से किया जाता है। सोया प्रोटीन आइसोलेट सबसे शुद्ध रूप है जिसमें प्रोटीन की मात्रा 90 प्रतिशत या उससे अधिक होती है और इसे विशेष पोषण उत्पादों तथा स्पोर्ट्स न्यूट्रिशन में उपयोग किया जाता है (तालिका 2)।

तालिका 2. सोया प्रोटीन के प्रकार एवं विशेषताएँ

प्रकार	प्रोटीन (%)	विशेषताएँ	उपयोग
सोया फ्लोर	40–50	कम प्रसंस्कृत	बेकरी, पारंपरिक खाद्य
सोया कॉन्सन्ट्रेट	65–70	बेहतर कार्यात्मक गुण	मांस उत्पाद, स्नैक्स
सोया आइसोलेट	≥90	उच्च शुद्धता	स्पोर्ट्स न्यूट्रिशन, हेल्थ फूड
टेक्सचराइज्ड सोया	50–70	मांस जैसी बनावट	सोया नगेट्स, मीट विकल्प

इसके अतिरिक्त, टेक्सचराइज्ड सोया प्रोटीन (TSP) को विशेष प्रसंस्करण तकनीक द्वारा मांस जैसी बनावट प्रदान की जाती है, जिसके कारण यह शाकाहारी मांस विकल्प के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है।

5. निर्माण प्रक्रिया

सोया प्रोटीन निर्माण की प्रक्रिया वैज्ञानिक दृष्टि से सुव्यवस्थित होती है (चित्र 2)। सबसे पहले सोयाबीन की सफाई और छिलका हटाने की प्रक्रिया की जाती है। इसके बाद तेल निष्कर्षण द्वारा वसा को अलग किया जाता है, जिससे डी-फैटेड सोया मील प्राप्त होता है। इस मील को क्षारीय माध्यम में घोलकर प्रोटीन को घुलनशील बनाया जाता है। तत्पश्चात अम्लीय pH पर प्रोटीन को अवक्षेपित कर अलग किया जाता है। धुलाई, न्यूट्रलाइजेशन और सुखाने की प्रक्रियाओं के बाद अंतिम उत्पाद प्राप्त होता है। स्प्रे ड्राइंग तकनीक का उपयोग करके पाउडर रूप में सोया प्रोटीन तैयार किया जाता है।

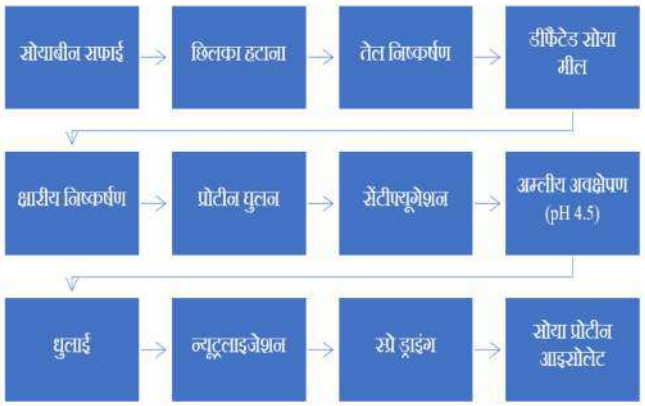

चित्र 2. सोया प्रोटीन निर्माण प्रक्रिया फ्लो-डायग्राम

6. सोया प्रोटीन संशोधन रणनीतियाँ

प्राकृतिक रूप में सोया प्रोटीन में उच्च पोषण गुणवत्ता होने के बावजूद इसकी कुछ सीमाएँ जैसे कम घुलनशीलता, विशिष्ट बीनी स्वाद, एंटी-न्यूट्रिशनल कारकों की उपस्थिति तथा सीमित कार्यात्मक गुण पाए जाते हैं। इन कमियों को दूर करने और प्रोटीन की उपयोगिता बढ़ाने के लिए विभिन्न संशोधन रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं। सोया प्रोटीन संशोधन मुख्यतः भौतिक, रासायनिक, एंजाइमेटिक तथा जैविक (फर्मेंटेशन आधारित) विधियों द्वारा किया जाता है। भौतिक विधियों जैसे हीट ट्रीटमेंट, अल्ट्रासोनिकेशन, उच्च दाब प्रसंस्करण और एक्सट्रूज़न से प्रोटीन संरचना में परिवर्तन होकर इसकी कार्यात्मक क्षमता बढ़ती है। रासायनिक संशोधन में एसिटिलेशन, फॉस्फोरिलेशन तथा ग्लाइकेशन जैसी प्रक्रियाएँ प्रोटीन की घुलनशीलता और स्थिरता को बेहतर बनाती हैं। वहीं एंजाइमेटिक हाइड्रोलिसिस और सूक्ष्मजीव आधारित फर्मेंटेशन से छोटे पेप्टाइड्स बनते हैं, जिससे पाचन क्षमता, जैव सक्रियता और स्वाद में सुधार होता है।

सोया प्रोटीन संशोधन के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं, जो इसे उद्योगों के लिए अधिक उपयोगी बनाते हैं। संशोधन से जल एवं तेल धारण क्षमता, इमल्सीफिकेशन, फोमिंग तथा जेल निर्माण जैसे कार्यात्मक गुणों में उल्लेखनीय सुधार होता है, जिससे यह विभिन्न खाद्य प्रणालियों में स्थिरता प्रदान करता है। एंजाइमेटिक और जैविक संशोधन के कारण प्रोटीन की पाचन क्षमता बढ़ती है तथा एलर्जेनिसिटी कम हो सकती है, जिससे यह स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अधिक उपयुक्त बन जाता है। इसके अतिरिक्त संशोधन से बीनी स्वाद कम होता है, जिससे उपभोक्ता स्वीकार्यता में वृद्धि होती है। कुछ संशोधन प्रक्रियाओं से जैव सक्रिय पेप्टाइड्स भी उत्पन्न होते हैं, जो एंटीऑक्सीडेंट, एंटीहाइपरटेंसिव और इम्यूनोमॉड्यूलेटरी प्रभाव दिखा सकते हैं। इस प्रकार संशोधित सोया प्रोटीन न केवल पोषण गुणवत्ता में सुधार करता है बल्कि स्वास्थ्य संवर्धन में भी योगदान देता है।

7. औद्योगिक अनुप्रयोग

संशोधित सोया प्रोटीन अपनी बहुमुखी कार्यक्षमता के कारण आधुनिक खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का एक अनिवार्य आधार बन गया है (चित्र 3)। इसकी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मांस विकल्पों में देखी जाती है, जहाँ इसकी रेशेदार बनावट और उच्च जल-धारण क्षमता का उपयोग सोया नगेट्स, शाकाहारी बर्गर और चंक्स बनाने में किया जाता है, जो स्वाद और बनावट में काफी हद तक पशु मांस के समान होते हैं।

डेयरी विकल्पों के क्षेत्र में, यह उन लोगों के लिए एक उत्कृष्ट समाधान प्रदान करता है जो लैक्टोज-असहिष्णु हैं; संशोधित सोया प्रोटीन का उपयोग न केवल सोया दूध और दही बनाने में होता है, बल्कि पनीर एनालॉग (जैसे टोफू या प्लांट-आधारित चीज़) विकसित करने में भी किया जाता है जहाँ इसकी इमल्सीफाइंग क्षमता एक सुसंगत और नरम बनावट सुनिश्चित करती है।

बेकरी उत्पादों में, इसे आटे के साथ मिलाकर न केवल बिस्कुट, ब्रेड और केक की पोषण गुणवत्ता (प्रोटीन की मात्रा) बढ़ाई जाती है, बल्कि यह उत्पादों के 'क्रम्ब स्ट्रक्चर' को सुधारने और उन्हें लंबे समय तक ताज़ा रखने में भी मदद करता है। इसके अतिरिक्त, इसकी उच्च पाचनशक्ति और संतुलित अमीनो एसिड प्रोफाइल के कारण, यह प्रोटीन सप्लीमेंट (जैसे प्रोटीन बार और हेल्थ ड्रिंक्स) और शिशु आहार के निर्माण में एक महत्वपूर्ण घटक है, जहाँ यह बढ़ते बच्चों और एथलीटों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को सुरक्षित और प्रभावी ढंग से पूरा करता है।

न्यूट्रास्यूटिकल और स्वास्थ्य उत्पादों में यह हृदय स्वास्थ्य, वजन नियंत्रण और खेल पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। औषधीय क्षेत्र में सोया प्रोटीन आधारित पेप्टाइड्स तथा माइक्रोएन्कैप्सुलेशन सिस्टम विकसित किए जा रहे हैं, जबकि औद्योगिक क्षेत्र में बायोडिग्रेडेबल फिल्म, बायोप्लास्टिक, चिपकने वाले तथा पैकेजिंग

चित्र 3. सोया प्रोटीन: औद्योगिक अनुप्रयोग

चित्र 4: भा.कृ. अनु. प. -रा. सो. अनु. सं. में बनाए गए विभिन्न सोया प्रोटीन उत्पाद: सोया नट्स, सोया कूकीज, सोया लड्डू, सोया हलवा, सोया प्रोटीन आईसोलेट व सोया चाप

सामग्री में इसका उपयोग बढ़ रहा है। जैव-आधारित औद्योगिक उत्पादों के विकास में सोया प्रोटीन एक महत्वपूर्ण कच्चा माल बनता जा रहा है।

भविष्य में नैनोटेक्नोलॉजी, एंजाइम इंजीनियरिंग और 3-डी फूड प्रिंटिंग जैसी उन्नत तकनीकों के साथ सोया प्रोटीन संशोधन की संभावनाएँ और अधिक बढ़ेंगी। बढ़ती जनसंख्या, पौध-आधारित आहार की मांग तथा टिकाऊ खाद्य प्रणालियों की आवश्यकता को देखते हुए संशोधित सोया प्रोटीन आने वाले समय में खाद्य विज्ञान और उद्योग का एक प्रमुख स्तंभ बनने की क्षमता रखता है।

भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसन्धान संस्थान, इंदौर में कई प्रकार के सोया युक्त उत्पाद बनाए गए हैं जिनमे प्रोटीन की मात्रा बज़्ज़र में मिलने वाले विकल्पों से काफी ज्यादा होती है (चित्र 4)| इनमें सोया प्रोटीन आईसोलेट व सोया प्रोटीन आईसोलेट से निर्मित मात विकल्प शामिल हैं| सोया आटे से निर्मित व्यंजन जेसे सोया मठरी, सोया सेव, सोया हलवा, सोया लड्डू, सोया चाप आदि में भी प्रोटीन की मातरा काफी ज्यादा होती है जो की रोजमर्रा की प्रोटीन की जरुरत पूरा करने में स्वादिष्ट विकल्प देकर, एहम भूमिका निभा सकते हैं|

8. सोया प्रोटीन के विभिन्न रूप

बाजार में सोया प्रोटीन हमें कई रूपों में मिलता है। आपकी जरूरत के हिसाब से इनका चुनाव महत्वपूर्ण है:

रूप	प्रोटीन की मात्रा (लगभग)	मुख्य उपयोग
सोया चंक्स (टी.वी.पी.)	50%	सब्जी, पुलाव और करी में
सोया प्रोटीन आइसोलेट	90% +	सप्लीमेंट्स और प्रोटीन पाउडर में
टोफू	8-10%	सलाद और स्टिर-फ्राई में (पनीर का विकल्प)
सोया दूध	3.5%	डेयरी दूध के विकल्प के रूप में
टेम्पेह	19%	फर्मेंटेड सोया, जो प्रोबायोटिक्स से भरपूर है

सोयाबीन से तेल निकालने के बाद प्राप्त 'डीफैटेड सोया फ्लेक्स' से मुख्य रूप से तीन व्यावसायिक रूप तैयार किए जाते हैं, जिनमें प्रोटीन की मात्रा और उपयोगिता भिन्न-भिन्न होती है:

सोया आटा: यह सोया प्रोटीन का सबसे सरल रूप है, जिसे डीफैटेड सोया फ्लेक्स को बारीक पीसकर बनाया जाता है। इसमें लगभग 50% प्रोटीन होता है। इसमें सोयाबीन के प्राकृतिक कार्बोहाइड्रेट और घुलनशील शर्करा (Sugars) मौजूद रहते हैं। इसका उपयोग मुख्य रूप से बेकरी उत्पादों (जैसे ब्रेड और बिस्कुट) की पोषण क्षमता बढ़ाने, सूप को गाढ़ा करने और पशु आहार में किया जाता है।

सोया प्रोटीन कंसन्ट्रेट: जब डीफैटेड फ्लेक्स में से घुलनशील कार्बोहाइड्रेट और शर्करा को हटा दिया जाता है, तो 'सोया प्रोटीन

कंसन्ट्रेट' प्राप्त होता है। इसमें न्यूनतम 65% से 70% प्रोटीन होता है। कार्बोहाइड्रेट कम होने के कारण यह सोया आटे की तुलना में अधिक सुपाच्य होता है और इसका स्वाद भी अधिक तटस्थ होता है। इसका व्यापक उपयोग मांस उत्पादों में नमी बनाए रखने, नाश्ते के अनाज और कुछ विशिष्ट पशु आहारों में किया जाता है।

सोया प्रोटीन आइसोलेट: यह सोया प्रोटीन का सबसे शुद्ध और परिष्कृत रूप है, जिसमें लगभग 90% या उससे अधिक प्रोटीन होता है। प्रसंस्करण के दौरान इसमें से लगभग सभी गैर-प्रोटीन घटकों (वसा और कार्बोहाइड्रेट) को हटा दिया जाता है। इसकी उच्च शुद्धता के कारण इसमें उत्कृष्ट इमल्सीफाइंग, जेलिंग और बाइंडिंग गुण होते हैं। SPI का उपयोग मुख्य रूप से शिशु आहार , हेल्थ सप्लीमेंट्स, स्पोर्ट्स ड्रिंक्स और उच्च गुणवत्ता वाले मांस विकल्पों में किया जाता है। यह उन लोगों के लिए सबसे अच्छा विकल्प है जिन्हें सोयाबीन के अन्य रूपों से गैस या पाचन संबंधी समस्या होती है।

टेक्सचर्ड सोया प्रोटीन: इसे अक्सर 'सोया चंक्स' या 'सोया नगेट्स' के रूप में जाना जाता है। यह सोया कंसन्ट्रेट या आटे को एक्सट्रूज़न कुकिंग प्रक्रिया से गुजारकर बनाया जाता है, जिससे इसे मांस जैसी रेशेदार और स्पंजी बनावट मिलती है। पकाने पर यह पानी सोख लेता है और बिल्कुल मांस की तरह महसूस होता है, जिससे यह शाकाहारी आहार में प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत बन जाता है।

9. अन्य पौध एवं पशु प्रोटीन से तुलना

पोषण गुणवत्ता की दृष्टि से सोया प्रोटीन को अक्सर पशु प्रोटीन के समकक्ष माना जाता है। दूध और अंडे के प्रोटीन की जैविक गुणवत्ता बहुत उच्च होती है, परंतु सोया प्रोटीन भी उनसे बहुत अधिक पीछे नहीं है। मांस प्रोटीन की तुलना में सोया प्रोटीन में संतृप्त वसा और कोलेस्ट्रॉल नहीं होता, जो इसे स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभकारी बनाता है।

अन्य पौध प्रोटीन स्रोतों जैसे दालों और अनाज की तुलना में सोया प्रोटीन अधिक संतुलित अमीनो अम्ल प्रोफाइल प्रदान करता है। पर्यावरणीय दृष्टि से भी सोया प्रोटीन उत्पादन पशु प्रोटीन की तुलना में कम संसाधनों की आवश्यकता करता है और कार्बन उत्सर्जन भी अपेक्षाकृत कम होता है।

10. पर्यावरण पर प्रभाव: एक टिकाऊ विकल्प

अगर हम पर्यावरण की दृष्टि से देखें, तो सोया प्रोटीन पशु प्रोटीन के मुकाबले बहुत कम संसाधन खर्च करता है।

- 1 किलो बीफ/मांस के उत्पादन की तुलना में सोया उगाने में 15 गुना कम पानी और 20 गुना कम जमीन की जरूरत होती है।
- यह कार्बन फुटप्रिंट कम करने का एक प्रभावी तरीका है।

तालिका 3. सोया प्रोटीन की अन्य प्रोटीन स्रोतों से तुलना

स्रोत	प्रोटीन गुणवत्ता	कोलेस्ट्रॉल	लागत	पर्यावरण प्रभाव
सोया	उच्च	नहीं	कम	कम
दूध उच्च	उपस्थित	मध्यम	मध्यम	
अंडा	बहुत उच्च	उपस्थित	मध्यम	मध्यम
मांस	उच्च	अधिक	अधिक	अधिक
दालें	मध्यम	नहीं	कम	कम

11. भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में सोया प्रोटीन का महत्व और अधिक बढ़ने की संभावना है। प्लांट-बेस्ड मीट, फंक्शनल फूड और न्यूट्रास्यूटिकल्स के क्षेत्र में तेजी से अनुसंधान हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी और आनुवंशिक सुधार तकनीकों के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाले सोया प्रोटीन विकसित किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण अनुकूल पैकेजिंग सामग्री और बायोपॉलिमर निर्माण में भी सोया प्रोटीन की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों को देखते हुए, सोया प्रोटीन टिकाऊ पोषण समाधान के रूप में उभर सकता है।

12. निष्कर्ष

सोया प्रोटीन पोषण, स्वास्थ्य और औद्योगिक उपयोग की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। यह पशु प्रोटीन का एक सुलभ और टिकाऊ विकल्प प्रदान करता है तथा कुपोषण जैसी समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकता है। सोया प्रोटीन न केवल शाकाहारियों के लिए बल्कि उन सभी के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प है जो स्वस्थ जीवनशैली अपनाना चाहते हैं। विज्ञान ने यह साबित कर दिया है कि संतुलित मात्रा में सोया का सेवन सुरक्षित और लाभकारी है। खाद्य उद्योग से लेकर जैव-आधारित औद्योगिक उत्पादों तक इसकी उपयोगिता निरंतर बढ़ रही है। भविष्य में अनुसंधान और तकनीकी विकास के साथ सोया प्रोटीन वैश्विक खाद्य प्रणाली में और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

पादप प्रजनन में कृत्रिम बुध्दिमत्ता : फसल सुधार का नया युग

डॉ. वंगाला राजेश, डॉ. संजय गुप्ता, डॉ. ज्ञानेश कुमार सातपुते, डॉ. वी. नटराज, डॉ. आलोक शिव, डॉ. गिरिराज कुमावत
डॉ. मिलिंद बी. रत्नापारखे, डॉ. विराज जी. कांबले, डॉ. लोकेश मीणा, डॉ. संजीव कुमार एवं डॉ.के.एच.सिंह
भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत
संवादी लेखक का ई-मेल: rashag2006@gmail.com

कृषि अनुसंधान में आधुनिक डिजिटल तकनीकों के बढ़ते उपयोग के साथ अब कृत्रिम बुध्दिमत्ता (Artificial Intelligence – AI) का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। कृत्रिम बुध्दिमत्ता कंप्यूटर विज्ञान की ऐसी शाखा है जिसमें मशीनों और सॉफ्टवेयर प्रणालियों को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि वे उपलब्ध आंकड़ों से सीख सकें, उनका विश्लेषण कर सकें तथा तर्कसंगत निर्णय ले सकें। यह तकनीक मशीनों को केवल पूर्वनिर्धारित निर्देशों तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें डेटा से पैटर्न पहचानने और भविष्य की संभावनाओं का अनुमान लगाने की क्षमता भी प्रदान करती है। "कृत्रिम बुध्दिमत्ता" शब्द का प्रयोग पहली बार वर्ष 1956 में अमेरिका के डार्टमाउथ कॉलेज में आयोजित एक वैज्ञानिक सम्मेलन में किया गया था। आज कृत्रिम बुध्दिमत्ता स्वास्थ्य, उद्योग, शिक्षा तथा कृषि जैसे अनेक क्षेत्रों में तेजी से उपयोग में लाई जा रही है।

पादप प्रजनन (Plant Breeding) कृषि विज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका उद्देश्य पौधों की आनुवंशिक संरचना में सुधार कर नई और उन्नत फसल किस्मों का विकास करना है। इन किस्मों में अधिक उत्पादन क्षमता, बेहतर गुणवत्ता, रोग और कीटों के प्रति प्रतिरोध तथा प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता जैसे वांछनीय गुण विकसित किए जाते हैं। पादप प्रजनन की प्रक्रिया में उपयुक्त पैतृक पौधों का चयन, उनका संकरण, संततियों का मूल्यांकन तथा कई पीढ़ियों तक परीक्षण के माध्यम से श्रेष्ठ पौध-पंक्तियों का चयन किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादकता बढ़ाना, फसल की गुणवत्ता सुधारना तथा किसानों के लिए स्थिर और भरोसेमंद किस्मों का विकास करना है। आधुनिक समय में जीनोमिक तकनीकों, आणविक मार्करों और उन्नत डेटा विश्लेषण के उपयोग से पादप-प्रजनन अधिक सटीक और प्रभावी बनता जा रहा है। आज के दौर में बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, सीमित प्राकृतिक संसाधन तथा नए कीट-रोगों के कारण कृषि उत्पादन को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती बन गया है। पारंपरिक प्रजनन पद्धतियाँ उपयोगी होने के बावजूद कई बार नई किस्मों के विकास में अधिक समय लेती हैं। ऐसे में कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित तकनीकें पादप प्रजनन को अधिक तेज, सटीक और वैज्ञानिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित प्रणालियाँ बड़े और जटिल आंकड़ों का विश्लेषण कर महत्वपूर्ण लक्षणों की भविष्यवाणी करने में सक्षम हैं, जिससे वैज्ञानिकों को बेहतर निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

आधुनिक पादप प्रजनन में कृत्रिम बुध्दिमत्ता की आवश्यकता

नई फसल किस्म का विकास एक लंबी और बहु-चरणीय प्रक्रिया है। इसमें हजारों जीनोटाइप्स का विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में कई वर्षों तक परीक्षण किया जाता है। उपज, गुणवत्ता, रोग-प्रतिरोध और सूखा सहनशीलता जैसे लक्षण अनेक जीनों तथा पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होते हैं। इतने बड़े और जटिल आंकड़ों का विश्लेषण पारंपरिक विधियों से करना कठिन होता है। कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित मशीन लर्निंग तकनीकें बड़े डेटा सेट से महत्वपूर्ण पैटर्न पहचानकर संभावित श्रेष्ठ पौध-पंक्तियों का चयन करने में सहायता करती हैं। इससे प्रजनन कार्यक्रम अधिक कुशल और प्रभावी बन सकते हैं।

उच्च-गति फिनोटाइपिंग में कृत्रिम बुध्दिमत्ता की भूमिका

फिनोटाइपिंग अर्थात पौधों के दिखाई देने वाले गुणों का अध्ययन पादप प्रजनन का एक महत्वपूर्ण भाग है। पारंपरिक रूप से यह कार्य मैन्युअल-मापन और दृश्य-अवलोकन के माध्यम से किया जाता था, जो समय लेने वाला और कभी-कभी व्यक्तिपरक भी हो सकता था। वर्तमान समय में ड्रोन, सेंसर, मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरे तथा इमेज-प्रोसेसिंग तकनीकों के उपयोग से खेतों की विस्तृत निगरानी संभव हो गई है। कृत्रिम बुध्दिमत्ता इन चित्रों और सेंसर डेटा का विश्लेषण करके पौधों की ऊँचाई, पत्तियों की हरितिमा, जैव-भार, रोग लक्षण तथा पौधों पर पड़ने वाले विभिन्न प्रकार के तनाव का सटीक आकलन कर सकता है। इससे चयन प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक और विश्वसनीय बनती है।

जीनोमिक चयन में कृत्रिम बुध्दिमत्ता का योगदान

आधुनिक पादप प्रजनन में जीनोमिक चयन एक अत्यंत प्रभावी तकनीक के रूप में उभरकर सामने आया है। इसमें पौधों के डीएनए स्तर की जानकारी का उपयोग कर उनके संभावित प्रदर्शन का अनुमान लगाया जाता है। कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित मॉडल, हजारों आणविक मार्करों तथा फिनोटाइपिक आंकड़ों का विश्लेषण कर यह अनुमान लगाने में सक्षम हैं कि कौन सी पौध-पंक्तियाँ बेहतर उत्पादन या

गुणवत्ता प्रदान कर सकती है। इससे फील्ड परीक्षणों की संख्या कम हो सकती है और नई किस्मों के विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत तेज हो जाती है। कृत्रिम बुध्दिमत्ता पर आधारित तकनीकों के साथ जीन-एडिटिंग जैसे नए दृष्टिकोणों का उपयोग नई किस्मों को विकसित करने के लिए किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन और कृत्रिम बुध्दिमत्ता

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना कर रहा है। तापमान में वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन तथा नए कीट-रोगों का प्रसार, फसल उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं। कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित फसल प्रारूप और पूर्वानुमान प्रणालियाँ भविष्य की संभावित परिस्थितियों का विश्लेषण करने में सहायक होती हैं एवं इनके माध्यम से वैज्ञानिक ऐसी फसल किस्मों की पहचान कर सकते हैं जो सूखा, अधिक तापमान तथा जलभराव जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर सकें।

रोग एवं कीट पहचान में कृत्रिम बुध्दिमत्ता

डीप-लर्निंग आधारित छवि-विश्लेषण तकनीकें पौधों की पत्तियों पर दिखाई देने वाले रोग लक्षणों की पहचान में उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। कैमरे से ली गई तस्वीरों का विश्लेषण कर कृत्रिम बुध्दिमत्ता रोग के प्रकार और उसकी तीव्रता का अनुमान लगा सकता है। इससे समय पर रोग-प्रबंधन संभव होता है और प्रजनन कार्यक्रमों में रोग-प्रतिरोधी पौध-पंक्तिओं का चयन अधिक सटीकता से किया जा सकता है।

सोयाबीन अनुसंधान में डिजिटल पहल

राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर में सोयाबीन अनुसंधान को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आधुनिक डिजिटल तकनीकों और डेटा आधारित विश्लेषण पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा है। रोग एवं कीट आक्रमण के आकलन के लिए डिजिटल इमेजिंग, डेटा विश्लेषण तथा उन्नत चयन विधियों का उपयोग प्रजनन कार्यक्रमों में किया जा रहा है। इन तकनीकों के उपयोग से चयन प्रक्रिया अधिक सटीक और परिणाम-उन्मुख बन रही है।

कृत्रिम बुध्दिमत्ता के पादप प्रजनन में लाभ

कृत्रिम बुध्दिमत्ता आधारित पादप प्रजनन से कम समय में अधिक आनुवंशिक प्रगति प्राप्त करना संभव हो सकता है। इस तकनिकी के प्रमुख लाभ निम्न लिखित है |

- चयन प्रक्रिया में तेजी
- बड़े आंकड़ों का सटीक विश्लेषण
- समय और संसाधनों की बचत
- जलवायु-सहिष्णु एवं रोग एवं कीट प्रतिरोधी किस्मों की पहचान

कृत्रिम बुध्दिमत्ता की पादप प्रजनन में चुनौतियाँ

हालाँकि कृत्रिम बुध्दिमत्ता के उपयोग से पादप प्रजनन में उल्लेखनीय परिवर्तन संभव है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ हैं:

- उच्च गुणवत्ता वाले और मानकीकृत डेटा की आवश्यकता
- उन्नत कंप्यूटिंग संसाधनों की उपलब्धता
- डेटा विज्ञान और जैव विज्ञान के विशेषज्ञों के बीच समन्वय
- प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण

भविष्य में जैव प्रौद्योगिकी, डेटा विज्ञान और कृत्रिम बुध्दिमत्ता का समन्वय कृषि अनुसंधान को और अधिक प्रभावी बनाएगा।

निष्कर्ष

कृत्रिम बुध्दिमत्ता पादप प्रजनन को एक नई दिशा प्रदान कर रही है। यह तकनीक वैज्ञानिकों को बेहतर निर्णय लेने, चयन प्रक्रिया को तेज करने तथा जलवायु-सहिष्णु एवं उच्च उत्पादक फसल किस्मों के विकास में सहायता कर सकती है। भविष्य में कृत्रिम बुध्दिमत्ता, जैव प्रौद्योगिकी और पदन प्रजनन का समन्वय कृषि अनुसंधान को और अधिक प्रभावी बनाएगा तथा भारत की खाद्य और पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

चित्र 1. पादप प्रजनन में कृत्रिम बुध्दिमत्ता की भूमिका को दर्शाता संकल्पनात्मक चित्र (इस पांडुलिपि के लिए कृत्रिम बुध्दिमत्ता द्वारा निर्मित)।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी एवं जीएम फसलें विकास, तकनीक और वैश्विक प्रभाव

ज्योति काग, पलक सोलंकी, मेघा कटारे, मुकेश, डॉ.हेमंत माहेश्वरी, डॉ.संजीव कुमार
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : sanjv007@gmail.com

आनुवंशिक अभियांत्रिकी आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जिसके माध्यम से जीवों के डीएनए में लक्षित परिवर्तन कर वांछित गुण विकसित किए जाते हैं। जब इस तकनीक का उपयोग फसलों में किया जाता है, तो उन्हें आनुवंशिक रूप से संशोधित (Genetically Modified – GM) फसलें कहा जाता है। इन फसलों के जीनोम में प्रयोगशाला तकनीकों द्वारा विशिष्ट जीन जोड़े, हटाए या परिवर्तित किए जाते हैं, ताकि वे रोग, कीट, खरपतवार या प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अधिक सक्षम बन सकें।

जीएम फसलों की मूल अवधारणा

पारंपरिक पादप प्रजनन में वांछित गुणों को विकसित करने में कई पीढ़ियाँ और लंबा समय लगता है। इसके विपरीत, आनुवंशिक अभियांत्रिकी में किसी विशिष्ट जीन की पहचान कर उसे सीधे पौधे में प्रविष्ट कराया जाता है। यह जीन किसी अन्य पौधे, जीवाणु या कभी-कभी किसी अन्य जीव से लिया जा सकता है। परिणामस्वरूप विकसित फसल में वह विशेष गुण स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है।

वैश्विक परिदृश्य

विश्व स्तर पर जीएम फसलों का क्षेत्रफल निरंतर बढ़ा है। सबसे अधिक उगाई जाने वाली जीएम फसलें कपास, सोयाबीन, मक्का और कैनोला हैं। इनमें मुख्यतः दो प्रकार के गुण प्रमुख हैं: खरपतवारनाशक सहनशीलता (Herbicide Tolerance) एवं कीट प्रतिरोध (Insect Resistance)। अमेरिका, ब्राजील, अर्जेंटीना, भारत और कनाडा जीएम फसलों के प्रमुख उत्पादक देश हैं। ये देश वैश्विक जीएम फसल क्षेत्र का अधिकांश भाग प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में विशेष रूप से बीटी कपास का व्यापक उपयोग हुआ है, जिसने कपास उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि की है।

विकास का इतिहास

जीएम फसलों का पहला व्यावसायिक उदाहरण 1994 में अमेरिका में विकसित "फ्लेवरसैवर" टमाटर था। इसका उद्देश्य टमाटर के पकने की प्रक्रिया को धीमा करना और शेल्फ लाइफ बढ़ाना था। इससे पहले आनुवंशिक संशोधन तकनीक का उपयोग औषधीय क्षेत्र में, जैसे इंसुलिन और टीकों के उत्पादन में, सफलतापूर्वक किया जा चुका था। 1990 के दशक के बाद से कृषि क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी का विस्तार हुआ और कई देशों ने नियामक ढांचे के अंतर्गत जीएम फसलों को स्वीकृति दी।

जीएम फसलों के प्रमुख उद्देश्य

- कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों पर निर्भरता कम करना
- रोग एवं विषाणु प्रतिरोध विकसित करना
- पर्यावरणीय तनाव जैसे सूखा, लवणता और ताप सहनशीलता बढ़ाना
- उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता में सुधार
- पोषण स्तर को बढ़ाना

उत्पादन की प्रमुख विधियाँ

1. प्रत्यक्ष विधि

इस विधि में इच्छित जीन को डीएनए वेक्टर में क्लोन कर सीधे पौधे की कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया जाता है। प्रमुख तकनीकें हैं: जीन गन (कण बमबारी), इलेक्ट्रोपोरेशन, माइक्रोइंजेक्शन जीन गन तकनीक में सोने या टंगस्टन के सूक्ष्म कणों पर डीएनए को लेपित कर उच्च वेग से कोशिकाओं में प्रविष्ट कराया जाता है।

2. एग्रोबैक्टीरियम आधारित विधि

एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमेफेशियंस नामक जीवाणु प्राकृतिक रूप से पौधों में डीएनए स्थानांतरित करता है। इसके Ti प्लास्मिड से रोगजनक जीन हटाकर उसमें इच्छित जीन जोड़ा जाता है। यह संशोधित प्लास्मिड पौधे की कोशिकाओं में स्थानांतरित होकर नए गुणों की अभिव्यक्ति करता है। यह विधि अपेक्षाकृत अधिक सटीक और व्यापक रूप से उपयोग की जाती है।

जीएम फसलों के लाभ

1. तेजी से गुण विकास – पारंपरिक विधियों की तुलना में कम समय में वांछित गुण विकसित होते हैं।
2. कीट प्रतिरोध – बीटी जीन के कारण विशेष कीटों से सुरक्षा मिलती है और कीटनाशकों का उपयोग घटता है।

3. वायरस प्रतिरोध – वायरस से प्रभावित क्षेत्रों में उत्पादन स्थिर रहता है।
4. सूखा सहनशीलता – जल संकट वाले क्षेत्रों में बेहतर उत्पादन संभव।
5. खरपतवारनाशक सहिष्णुता – प्रभावी खरपतवार नियंत्रण और कम जुताई।
6. मिट्टी संरक्षण – न्यून जुताई से मिट्टी का कटाव कम होता है।
7. पोषण संवर्धन – जैसे विटामिन-समृद्ध फसलों का विकास, जिससे कुपोषण कम किया जा सकता है।

संभावित चुनौतियाँ और चिंताएँ

आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जीएम फसलों का विकास कृषि उत्पादन, कीट प्रबंधन और पोषण सुरक्षा के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना जाता है। लेकिन इनके साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी जुड़ी हैं, जिन पर वैश्विक स्तर पर चर्चा होती रही है। नीचे प्रमुख चिंताओं को विस्तार से समझा जा सकता है।

1. जैव विविधता पर प्रभाव: जीएम फसलों के बड़े पैमाने पर उपयोग से कृषि में एकरूपता बढ़ सकती है। जब किसान अधिक उत्पादक या कीट-प्रतिरोधी एक ही किस्म को अपनाते हैं, तो स्थानीय और पारंपरिक किस्मों का उपयोग घटने लगता है। इससे जीन विविधता सीमित हो सकती है, जो भविष्य में नई बीमारियों या जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन क्षमता को प्रभावित कर सकती है। इसके अलावा, पराग के माध्यम से जीन का स्थानांतरण आसपास की जंगली प्रजातियों तक हो सकता है। यदि ट्रांसजीन प्राकृतिक प्रजातियों में चला जाए, तो पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होने की आशंका रहती है।

2. कीटों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना: जैसे बीटी कॉटन में बेसिलस थूरिनजियनसीस (Bt) जीन की मदद से कीट-प्रतिरोध विकसित किया गया है। प्रारंभिक वर्षों में इससे कीटनाशकों का उपयोग कम हुआ और उत्पादन बढ़ा। लेकिन यदि लंबे समय तक एक ही प्रकार की प्रतिरोधी तकनीक का उपयोग किया जाए, तो कीटों की कुछ आबादी में प्राकृतिक चयन के कारण प्रतिरोध विकसित हो सकता है। इसे रोकने के लिए "रिफ्यूज रणनीति" अपनाई जाती है, जिसमें खेत के एक हिस्से में गैर-जीएम फसल लगाई जाती है ताकि कीटों में प्रतिरोध विकसित होने की गति कम हो।

3. पर्यावरणीय जोखिम: कुछ जीएम फसलें शाकनाशी-सहनशील (herbicide tolerant) होती हैं। इनके साथ शाकनाशियों का अधिक उपयोग होने की आशंका रहती है, जिससे मिट्टी के सूक्ष्मजीव, जल स्रोत और गैर-लक्षित जीव प्रभावित हो सकते हैं। इसके अलावा, यदि किसी ट्रांसजीन का प्रभाव लक्षित कीट के अलावा अन्य लाभकारी कीटों या जीवों पर पड़े, तो पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा हो सकता है। इसलिए दीर्घकालिक पर्यावरणीय अध्ययन अत्यंत आवश्यक माने जाते हैं।

4. सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ: जीएम बीज प्रायः पेटेंट और बौद्धिक संपदा अधिकारों के अंतर्गत आते हैं। इससे किसान हर वर्ष नया बीज खरीदने के लिए कंपनियों पर निर्भर हो सकते हैं। छोटे और सीमांत किसानों के लिए बीज की लागत एक चुनौती बन सकती है। कुछ देशों में यह चिंता भी उठी है कि बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बीज बाजार पर अधिक नियंत्रण हो सकता है, जिससे कृषि क्षेत्र में असमानता बढ़ने की संभावना रहती है।

5. उपभोक्ता स्वीकृति और लेबलिंग संबंधी मुद्दे: जीएम खाद्य पदार्थों को लेकर विभिन्न देशों में अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। कुछ समाजों में उपभोक्ता जीएम उत्पादों को लेकर आशंकित रहते हैं और पारदर्शिता की मांग करते हैं। इसलिए कई देशों में लेबलिंग अनिवार्य की गई है, ताकि उपभोक्ता यह जान सकें कि उत्पाद जीएम है या नहीं। वहीं कुछ देशों में केवल निर्धारित सीमा से अधिक जीएम सामग्री होने पर ही लेबलिंग आवश्यक होती है।

इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश में सख्त जैव सुरक्षा परीक्षण और नियामक प्रक्रियाएँ लागू की जाती हैं। इन सभी चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए अधिकांश देशों में जीएम फसलों के लिए सख्त जैव सुरक्षा मूल्यांकन किया जाता है। इसमें शामिल होते हैं: एलर्जी और विषाक्तता परीक्षण, पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन, जीन स्थिरता और अभिव्यक्ति का परीक्षण, सीमित क्षेत्रीय परीक्षण (Field trials), सार्वजनिक और वैज्ञानिक समीक्षा। भारत में यह प्रक्रिया जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति (जीईएसी) के माध्यम से संचालित होती है, जबकि अन्य देशों में अलग-अलग नियामक संस्थाएँ यह कार्य करती हैं।

भविष्य की दिशा

नई जीन-संपादन तकनीकें जैसे क्रिस्पर आधारित पद्धतियाँ जीएम तकनीक को और अधिक सटीक और सुरक्षित बना रही हैं। भविष्य में जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा और पोषण सुधार की चुनौतियों से निपटने में आनुवंशिक अभियांत्रिकी की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। कुल मिलाकर, आनुवंशिक अभियांत्रिकी और जीएम फसलें कृषि में महत्वपूर्ण संभावनाएँ रखती हैं, लेकिन इनके उपयोग में वैज्ञानिक सतर्कता, पारदर्शिता और संतुलित नीति दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है।

मैं, मेरी सोयाबीन और मेरा सोया संस्थान

मैं एक सोया वैज्ञानिक, पीत क्रांति का सूत्रधार,
मध्य प्रदेश के कृषकों की सामाजिक-आर्थिक उन्नति का राज़दार.
तिलहन अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता लाना देश की है पुकार,
मध्य भारत से चली इस सुनहरी यात्रा में मात्र एक भागीदार.

देश-प्रदेश में जब नहीं था कुछ ख़ास क्षेत्र, तब शुरू हुआ सोयाबीन पर एक्रिप सत्र,
तत्कालीन निति निर्धारक थे आशावादी मात्र, भविष्य में होगी सोयाबीन सर्वोपरि एवं सर्वोत्र,

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् द्वारा 1987 में स्थापित NRCS नाम से प्रारंभ मेरा कार्यभार,
भारत के हृदयस्थल, इंदौर, मालवा, मध्य प्रदेश में है मेरा घर-आँगन एवं परिवार.

वर्ष 1967 से क्रियान्वित सोयाबीन एक्रिप परियोजना मुख्यालय भी आया इंदौर मेरे द्वार,
और शुरू हुआ एक नया सफ़र, नया संस्थान और पित क्रांति में मेरा नया किरदार.

सबसे प्यारी, सबसे न्यारी और है चमत्कारी, सोने का दाना कहते है या कहते है सुनहरी बीन.
कालितूर, भट, या भटमास जैसे पुराने नाम, काली सोयाबीन से हुई यह पीली और रंगीन...

मध्य भारत के किसानों की सामाजिक-आर्थिक उन्नति की पहचान, इसलिए अब सर्वत्र हो रहा है मेरा विस्तार.
मालवा निमाड़ के रास्ते, विदर्भ, मराठवाड़ा,
तेलंगाना, कर्नाटक के कृषक है अब मेरा नया घर-नया संसार.

पहले किया क्षेत्र अच्छादन, अधिक उत्पादन, जैविक एवं अजैविक तनावों से प्रतिरोधी क़िस्मों का विस्तार
अब किया जा रहा है अधिक तेल, जलवायु सहिष्णु, खाद्य उपयोगी तथा सब्जीयुक्त क़िस्मों का विकास एवं प्रचार-प्रसार.
आने वाली चुनौतियाँ है अपार, लेकिन संस्थान के वैज्ञानिक, एवं समस्त कर्मी है तैयार..
साथ है, अनुभवी भूतपूर्व वैज्ञानिकों का और आईसीएआर मुख्यालय का स्नेह और आशीर्वाद की है बौछार...

सभी के सहयोग से बनाये रखेंगे तिलहनों में इसका अग्रणी स्थान,छू लेंगे सफलता की नई ऊँचाइयाँ
और स्थापित करेंगे नये कीर्तिमान, जय हो आईसीएआर और इंदौर का राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान.|
सुनहरी फसल की उन्नति की यात्रा जारी है, सभी के सामूहिक प्रयासों की अब बारी है.

डॉ बुद्धेश्वर यु. दुपारे, प्रधान वैज्ञानिक
(कृषि विस्तार)

भविष्य की फसलें विकसित करने हेतु अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ

डॉ.संगीता श्रीवास्तव एवं डॉ.प्रियंका श्रीवास्तव
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
संवादी लेखक का ई-मेल : sangeeta.pme.isri@gmail.com ; s.srivastava1064@icar.org.in

कृषि क्षेत्र में अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग एक क्रांतिकारी बदलाव ला रहा है, जो खाद्य उत्पादन, संसाधनों के समुचित उपयोग और सतत विकास को ध्यान में रखते हुए आधुनिक समाधान प्रदान करता है। इनमें जीन संवर्धन, सटीक खेती, डेटा विश्लेषण, रोबोटिक्स, जैव प्रौद्योगिकी में प्रगति तथा वर्टिकल फार्मिंग जैसी नवीन कृषि पद्धतियाँ शामिल हैं।इन सभी नवाचारों का उद्देश्य कृषि को अधिक कुशल, उत्पादक और पर्यावरण के अनुकूल बनाना है। इन तकनीकों के एकीकृत उपयोग से न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि जल, भूमि और ऊर्जा जैसे संसाधनों का संरक्षण भी संभव होगा। यह परिवर्तन भविष्य की आवश्यकताओं के अनुसार फसल विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

अत्याधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी के प्रमुख क्षेत्र

भविष्य की फसलों के विकास हेतु अत्याधुनिक तकनीकें अत्यंत आवश्यक हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता, तथाकृषि की स्थिरता(सस्टेनेबिलिटी)सुनिश्चित करना है। ऐसे प्रमुख तकनीकी क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

1. जैव प्रौद्योगिकी और आनुवंशिक अभियांत्रिकी:

यह क्षेत्र फसलों में उन्नत गुण विकसित करने के अनेक अवसर प्रदान करते हैं, जिससे वे कीटों, रोगों, जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों के प्रति अधिकसहनशीलबनती हैं और उनकीपोषणगुणवत्तामें भी सुधार होता है।

- **जीनोम संपादन (Genome Editing):**

जीन संपादन तकनीकें पारंपरिक सुधार विधियों की तुलना में अधिक तीव्र, सटीक और प्रभावी हैं, जिससे जलवायु अनुकूल एवं टिकाऊ फसल किस्मों का विकास संभव होता है।CRISPR-Cas9 जैसी तकनीकों के माध्यम से पौधों के जीन मेंसटीक और लक्षित परिवर्तनकिए जा सकते हैं। यह तकनीक ऐसी फसलों के विकास में सहायक है जो:

- रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधीहों,
- सूखा सहन कर सकेंया जिन्हें कम पानी की आवश्यकता हो, तथा
- बेहतर पोषण गुणवत्ता (जैसे – अधिक प्रोटीन, विटामिन आदि) प्रदान करें।

- **डिजिटल कृषि और डेटा एनालिटिक्स:**

डिजिटल कृषि एक उन्नत कृषि प्रणाली है जिसमें GPS, GIS, IoT सेंसर, ड्रोन और सैटेलाइट रिमोट सेंसिंग जैसी अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग कर फसलों की निगरानी और प्रबंधन अधिक सटीकता से किया जाता है। इन तकनीकों से खेतों की वास्तविक समय की जानकारी प्राप्त की जाती है, जैसे मिट्टी की स्थिति, नमी का स्तर, फसल की वृद्धि, और कीटों की उपस्थिति आदि।डेटा एनालिटिक्स के माध्यम से इन सूचनाओं का विश्लेषण कर किसान संसाधनों का कुशलतापूर्वक प्रबंधन कर सकते हैं। इससे न केवल उत्पादन क्षमता बढ़ती है, बल्कि उर्वरकों, कीटनाशकों और पानी की अनावश्यक बर्बादी भी रोकी जा सकती है। डेटा-आधारित निर्णय खेती को अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और पर्यावरण के अनुकूल बनाते हैं, जिससे कृषि प्रणाली अधिक टिकाऊ और भविष्य के लिए तैयार हो जाती है।

- **स्पीडब्रीडिंग:**

यह तकनीक पौधों केप्रजनन चक्र को तेजकर देती है, जिससेनई फसल किस्मों का विकास बहुत कम समय मेंसंभव हो पाता है।इसमें नियंत्रित वातावरण (जैसे कृत्रिम प्रकाश, तापमान और नमी) का उपयोग करके एक वर्ष मेंएकाधिक पीढ़ियाँविकसित की जा सकती हैं। स्पीड ब्रीडिंग पारंपरिक विधियों की तुलना में फसल सुधार की प्रक्रिया को कई गुनातेज, कुशल और प्रभावीबनाती है।

- मल्टी-ओमिक्स:

जीनोमिक्स, प्रोटिओमिक्स, मेटाबोलोमिक्स एवं अन्य "ओमिक्स" क्षेत्रों से प्राप्त आंकड़ों को एकीकृत (एक साथ जोड़कर) करने की प्रक्रिया कोमल्टी-ओमिक्सकहा जाता है।यह तकनीक पौधों कीजैविक कार्यप्रणाली (plant biology)को व्यापक और गहराई से समझने में मदद करती है, जिससे:

- श्रेष्ठ जीनों की पहचान संभव होती है,
- वांछित गुणों वाली फसल किस्मों कासटीक चयन और विकासकिया जा सकता है।

मल्टी-ओमिक्स विश्लेषण फसल सुधार कोवैज्ञानिक और डेटा-आधारित आधारप्रदान करता है, जिससेउच्च गुणवत्ता और उत्पादकता वाली किस्मोंका विकास संभव होता है।

2. सटीक कृषि (Precision Farming):

सटीक कृषि, जिसे प्रिसिजन एग्रीकल्चर भी कहा जाता है, एक आधुनिक कृषि पद्धति है जो अत्याधुनिक तकनीकों के माध्यम से संसाधनों के प्रभावी उपयोग, फसल उत्पादन में वृद्धि और समग्र खेत प्रबंधन को बेहतर बनाने पर केंद्रित है। इस पद्धति में खेत की स्थिति से संबंधित सूक्ष्म जानकारियाँ जैसे मिट्टी की उर्वरता, नमी की मात्रा, तापमान, कीटों की उपस्थिति आदि एकत्रित की जाती हैं और उनका विश्लेषण कर खेती की प्रक्रिया को खेत के प्रत्येक भाग की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार अनुकूलित किया जाता है।सटीक कृषि तकनीकों की सहायता से किसान यह निर्णय ले सकते हैं कि किस स्थान पर कब और कितनी मात्रा में बीज, उर्वरक या कीटनाशक का प्रयोग करना है। इससे संसाधनों की बचत होती है, पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव पड़ता है और उपज की गुणवत्ता एवं मात्रा में सुधार होता है। यह तकनीक खेती को वैज्ञानिक, टिकाऊ और लाभकारी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

3. डिजिटल कृषि और डेटा विश्लेषण:

इस क्षेत्र में GPS, GIS, IoT सेंसर, ड्रोन और सैटेलाइट रिमोट सेंसिंग जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जो फसलों की निगरानी और प्रबंधन को अत्यधिक सटीक और कुशल बनाते हैं। डेटा-आधारित विश्लेषण से संसाधनों का दक्षतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है, जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ती है और अपव्यय में कमी आती है। यह आधुनिक कृषि को अधिक वैज्ञानिक, टिकाऊ और लाभकारी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

- **इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT):**

इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) एक उन्नत तकनीकी प्रणाली है जिसमें सेंसर और GPS जैसी डिवाइसेज़ के माध्यम से खेतों से जुड़ी जानकारियाँ वास्तविक समय में एकत्र की जाती हैं। ये उपकरण मृदा की स्थिति, मौसम के पैटर्न और फसलों के स्वास्थ्य पर निरंतर निगरानी रखते हैं। इस डेटा के आधार पर किसान सिंचाई, उर्वरक प्रबंधन और कीट नियंत्रण जैसे महत्वपूर्ण निर्णय अधिक सटीकता और वैज्ञानिक तरीके से ले सकते हैं।IoT न केवल खेती को अधिक दक्ष और प्रतिक्रियाशील बनाता है, बल्कि दूरस्थ स्थानों से भी खेतों की निगरानी और प्रबंधन की सुविधा प्रदान करता है। यह तकनीक आधुनिक कृषि को स्मार्ट, टिकाऊ और अधिक लाभकारी बनाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

- **रिमोट सेंसिंग और उपग्रह प्रौद्योगिकी:**

रिमोट सेंसिंग और उपग्रह प्रौद्योगिकी आधुनिक कृषि का एक महत्वपूर्ण स्तंभ बन चुकी है। सैटेलाइट इमेजरी और सेंसर युक्त ड्रोन खेतों की समग्र निगरानी प्रदान करते हैं, जिससे फसलों की स्वास्थ्य स्थिति का व्यापक आकलन संभव होता है। ये तकनीकें प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान का मूल्यांकन करने, संभावित समस्याओं की पहचान करने और कृषि संबंधी नीतियों को वैज्ञानिक ढंग से तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।इस प्रकार, रिमोट सेंसिंग कृषि क्षेत्र में सटीक, समयबद्ध और लक्षित हस्तक्षेप सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध होती है, जिससे उत्पादकता और स्थायित्व दोनों में वृद्धि होती है।

- **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML):**

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहे हैं। ये उन्नत तकनीकें फसलों के स्वास्थ्य का गहन विश्लेषण करने, उत्पादन की सटीक भविष्यवाणी करने और संसाधनों के बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग में सहायक होती हैं।AI-सक्षम प्रणालियाँ प्रारंभिक चरण में ही रोगों और कीटों की पहचान कर लेती हैं, जिससे समय पर और प्रभावी उपाय किए जा सकते हैं। IoT उपकरणों से प्राप्त डेटा का विश्लेषण AI एल्गोरिद्म के माध्यम से किया जाता है, जिससे फसल उत्पादन का पूर्वानुमान, संभावित रोग प्रकोप की पहचान, और जल, उर्वरक व कीटनाशकों जैसी आवश्यकताओं का सर्वोत्तम प्रबंधन संभव हो पाता है।मशीन लर्निंग और डेटा एनालिटिक्स की सहायता से यह निर्धारित किया जाता है कि किन इनपुट्स की कितनी मात्रा और कब उपयोग करना चाहिए, जिससे न

केवल अपव्यय कम होता है बल्कि पर्यावरणीय प्रभाव भी घटता है। ये तकनीकें खेती को अधिक वैज्ञानिक, पर्यावरण-अनुकूल और लाभदायक बनाने की दिशा में एक सशक्त उपकरण सिद्ध हो रही हैं।

4. रोबोटिक्स और स्वचालन (Automation):

रोबोटिक्स और स्वचालन कृषि क्षेत्र में दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में एक बड़ा कदम है। आधुनिक रोबोट अब बीज बोने, निराई करने, कटाई करने और फसल के रखरखाव जैसे कार्यों को स्वतः संचालित कर रहे हैं, जिससे श्रम लागत में भारी कमी आती है और कार्यों की गति व सटीकता में वृद्धि होती है।विशाल कृषि क्षेत्रों में ये रोबोट कठिन और दोहराए जाने वाले कार्यों को बिना थके अंजाम देते हैं, जिससे मज़दूरों की कमी की समस्या का समाधान भी होता है। स्वचालित ट्रैक्टर, खरपतवार नियंत्रण के लिए विशिष्ट रोबोट, और फल-सब्ज़ियों की कटाई करने वाले रोबोट जैसे उपकरण अब खेतों में उपयोग किए जा रहे हैं।भविष्य में रोबोट आपस में समन्वय करके जटिल कार्यों को भी साझा रूप से पूरा कर सकेंगे, जैसे कि पशुपालन संबंधी कार्यों का प्रबंधन, या एकीकृत खेती प्रणालियों का संचालन। इस तकनीक से कृषि न केवल अधिक कुशल और कम श्रम-निर्भर होगी, बल्कि संपूर्ण उत्पादन प्रक्रिया अधिक सटीक और टिकाऊ भी बन जाएगी।

5. अन्य उभरती हुई तकनीकें:

- **वर्टिकल फार्मिंग, हाइड्रोपोनिक्स और वैकल्पिक खेती प्रणालियाँ:**

वर्टिकल फार्मिंग, हाइड्रोपोनिक्स और एयरोपोनिक्स जैसी आधुनिक खेती विधियाँ उन क्षेत्रों के लिए वरदान हैं जहाँ भूमि और जल संसाधन सीमित हैं। ये नियंत्रित वातावरण में की जाने वाली खेती की तकनीकें हैं, जो कम जगह में अधिक उत्पादन की संभावनाएँ प्रदान करती हैं और साथ ही जल, भूमि, ऊर्जा तथा रसायनों की खपत को भी न्यूनतम करती हैं।

- वर्टिकल फार्मिंग में फसलें बहु-स्तरीय संरचनाओं में उगाई जाती हैं, जिससे शहरी क्षेत्रों में भी खाद्य उत्पादन संभव हो जाता है। इससे परिवहन लागत, समय और खाद्य अपव्यय में कमी आती है।

- हाइड्रोपोनिक्स (मिट्टी रहित खेती) और एयरोपोनिक्स (वायु में पोषक तत्वों का छिड़काव करके खेती) जैसे नवाचार पारंपरिक कृषि के विकल्प के रूप में उभर रहे हैं, जो पर्यावरण के अनुकूल और पोषण युक्त फसलें प्रदान करते हैं।

इन प्रणालियों में अब उन्नत निर्माण सामग्री और AI-सक्षम नियंत्रण प्रणालियाँ भी जोड़ी जा रही हैं, जो तापमान, आर्द्रता, प्रकाश और पोषक तत्वों की आपूर्ति को स्वचालित रूप से नियंत्रित करती हैं। इस प्रकार, वर्टिकल फार्मिंग और इससे जुड़ी तकनीकें भविष्य की स्मार्ट, टिकाऊ और आत्मनिर्भर कृषि की आधारशिला बन रही हैं।

डिजिटल ट्विन्स और जनरेटिव एआई:

ये उन्नत तकनीकें कृषि क्षेत्रों की आभासी प्रतिकृति (वर्चुअल मॉडल) तैयार करने में सक्षम हैं, जिनकी मदद से विभिन्न कृषि गतिविधियों का सटीक पूर्वानुमान, विश्लेषण और सिमुलेशन किया जा सकता है। इससे किसानों को फसलों की पैदावार बढ़ाने, संसाधनों का कुशल उपयोग करने और बेहतर निर्णय लेने में सहायता मिलती है।

- **ब्लॉकचेन तकनीक:**

ब्लॉकचेन एक अत्याधुनिक तकनीक है जो खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता और ट्रेसबिलिटी (अनुसरणीयता) को बेहतर बनाती है। इसके माध्यम से उपभोक्ता अपने भोजन की यात्रा — खेत से लेकर थाली तक — को ट्रैक कर सकते हैं, जिससे उसके स्रोत, उत्पादन विधियों और गुणवत्ता की पुष्टि संभव होती है। यह तकनीक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, खाद्य धोखाधड़ी को कम करती है, और किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य दिलाने में मदद करती है। इससे उपभोक्ताओं के बीच विश्वास और भरोसा भी सुदृढ़ होता है।

- **एज कंप्यूटिंग:**

एज कंप्यूटिंग एक आधुनिक तकनीक है जो खेत स्तर पर ही रियल-टाइम डेटा प्रोसेसिंग की सुविधा प्रदान करती है। इसके माध्यम से फसलों से जुड़े डेटा को तुरंत विश्लेषित किया जा सकता है, जिससे कीट प्रकोप, सिंचाई की आवश्यकता या अन्य पर्यावरणीय बदलावों पर त्वरित और सटीक निर्णय लिए जा सकते हैं। यह तकनीक कृषि कार्यों की गति, सटीकता और प्रभावशीलता को कई गुना बढ़ा देती है।

- **6G तकनीक:**

6 G तकनीक का विकास कृषि क्षेत्र में कनेक्टिविटी और कार्यकुशलता को नई ऊंचाइयों तक ले जाने की क्षमता रखता है। यह अत्यंत तेज और विश्वसनीय डाटा संचार सुनिश्चित करेगा, जिससे स्मार्ट उपकरणों, सेंसरों और कृषि मशीनों के बीच निर्बाध सूचना आदान-प्रदान संभव होगा। इसके माध्यम से कृषि में स्वचालन (ऑटोमेशन), सटीक निगरानी और डेटा-आधारित निर्णय प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकेगा, जिससे आधुनिक खेती को एक नई दिशा मिलेगी।

- **एग्री-फिनटेक:**

एग्री-फिनटेक, अर्थात् कृषि और वित्तीय तकनीक का संगम, किसानों को निवेशकों से जोड़ने और उन्हें ऋण व बीमा जैसी वित्तीय सुविधाएं सुलभ कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह तकनीक किसानों को नई कृषि तकनीकों को अपनाने, पूंजी की उपलब्धता बढ़ाने और मौसम, बाजार या उत्पादन से जुड़े जोखिमों का प्रबंधन बेहतर ढंग से करने में सक्षम बनाती है। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है और सतत कृषि विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

उन्नत कृषि तकनीकों के लाभ:

इन अत्याधुनिक तकनीकों के समन्वय से कृषि क्षेत्र न केवल बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है, बल्कि पर्यावरणीय प्रभाव को भी न्यूनतम रखते हुए टिकाऊ भविष्य सुनिश्चित कर सकता है।

- उच्च दक्षता और उत्पादकता में वृद्धि:संसाधनों के बेहतर प्रबंधन और कृषि कार्यों के स्वचालन के माध्यम से, एग्रीटेक किसानों को कम लागत में अधिक उत्पादन करने में सक्षम बनाता है, जिससे खाद्य उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में सुधार होता है।
- पर्यावरणीय प्रभाव में कमी:सटीक खेती (प्रिसिशन फार्मिंग) और सतत कृषि विधियाँ जल, उर्वरक और कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करती हैं, जिससे प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन घटता है और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है।
- खाद्य सुरक्षा में वृद्धि:फसल उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता में सुधार तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने की क्षमता बढ़ाकर एग्रीटेक वैश्विक खाद्य आपूर्ति को अधिक सुरक्षित और विश्वसनीय बनाता है।
- आर्थिक लाभ में सुधार:बेहतर तकनीकी समाधान और संसाधनों की कुशलता से उपयोग किसानों की आय में वृद्धि करते हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।
- वर्धित स्थायित्व (सस्टेनेबिलिटी):एग्रीटेक टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देता है, जो दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण दोनों के लिए आवश्यक हैं।

निष्कर्ष:

कृषि का भविष्य अत्याधुनिक तकनीकों जैसे रोबोटिक्स, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) और ब्लॉकचेन द्वारा रूपांतरित हो रहा है, जिन्हें सामूहिक रूप सेएग्रीटेक कहा जाता है। ये तकनीकी प्रगति कृषि कार्यों में दक्षता, स्थायित्व और लाभप्रदता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा रही हैं।एग्रीटेक न केवल वैश्विक खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का समाधान प्रदान करता है, बल्कि पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ खेती को भी बढ़ावा देता है। इन नवाचारों को अपनाकर हम एक ऐसा कृषि तंत्र विकसित कर सकते हैं जो अधिक प्रभावशाली, लचीला और पर्यावरण-संवेदनशील हो, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और समृद्ध भविष्य सुनिश्चित हो सके।

"जीवन साइकिल चलाने जैसा है। संतुलन बनाए रखने के लिए निरंतर चलते रहना आवश्यक है।"

-अल्बर्ट आइंस्टीन

ग्लाइसिन सोजा (जंगली सोयाबीन): सोयाबीन सुधार में इसका महत्व

मीनल बघेल, डॉ. वंगाला राजेश, डॉ.प्रीति व्यास, डॉ. संजय गुप्ता एवं डॉ.लोकेश कुमार मीणा
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001

परिचय

ग्लाइसिन सोजा, जिसे सामान्य रूप से जंगली सोयाबीन कहा जाता है, सोयाबीन की मूल जंगली पूर्वज प्रजाति है। आज विश्व में उगाई जाने वाली खेती योग्य सोयाबीन इसी जंगली प्रजाति से विकसित हुई मानी जाती है। जंगली सोयाबीन अपनी प्राकृतिक मजबूती, व्यापक आनुवंशिक विविधता तथा कठिन पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने की क्षमता के कारण वैज्ञानिकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है।

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र कई चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, मिट्टी की घटती उर्वरता तथा नए रोग और कीटों का बढ़ता प्रभाव। इन परिस्थितियों में ऐसी फसल किस्मों की आवश्यकता है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी तरह विकसित हो सकें। जंगली सोयाबीन इन समस्याओं के समाधान के लिए एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन के रूप में सामने आती है।

वनस्पति विशेषताएँ

जंगली सोयाबीन एक पतली तथा फैलने वाली लता जैसी पौधा संरचना रखती है। इसका तना अधिक शाखायुक्त होता है और उस पर हल्के रोएँ पाए जाते हैं। इसकी पत्तियाँ त्रिपर्णी होती हैं, अर्थात एक पत्ती में तीन छोटे पत्ते जुड़े रहते हैं। पत्तियों का रंग सामान्यतः गहरा हरा होता है।

इसके फूल आकार में छोटे होते हैं और सामान्यतः हल्के बैंगनी या गुलाबी रंग के दिखाई देते हैं। फलियाँ पतली और छोटी होती हैं तथा हल्की वक्राकार होती हैं। प्रत्येक फली में सामान्यतः दो से तीन बीज पाए जाते हैं। इसके बीज आकार में छोटे तथा रंग में प्रायः काले या गहरे भूरे होते हैं।

इस पौधे की जड़ें गहराई तक जाती हैं और इनमें नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की ग्रंथियाँ पाई जाती हैं, जो मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती हैं।

उद्गम और प्रसार

जंगली सोयाबीन का मूल स्थान पूर्वी एशिया माना जाता है। यह मुख्य रूप से चीन, कोरिया और जापान के क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उगती है। यह घास के मैदानों, नदी किनारों तथा खुले क्षेत्रों में आसानी से पाई जाती है।

भारत में इसका प्राकृतिक रूप से व्यापक प्रसार नहीं है, किंतु भा.कृ.अनु.प–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर तथा भा.कृ.अनु.प–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली में इसका संरक्षण, संग्रहण और अध्ययन किया जा रहा है।

जंगली सोयाबीन का महत्व

1. आनुवंशिक विविधता का भंडार

जंगली सोयाबीन में कई प्रकार की आनुवंशिक विविधता पाई जाती है। यह विविधता नई और बेहतर किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2. रोग प्रतिरोधी गुण

इस पौधे में कई प्रकार के रोगों के प्रति स्वाभाविक प्रतिरोध देखा गया है। इन गुणों का उपयोग रोगरोधी किस्मों के विकास में किया जा सकता है।

3. कीटों के प्रति सहनशीलता

जंगली सोयाबीन में कुछ ऐसे गुण पाए जाते हैं जो विभिन्न कीटों के प्रभाव को कम कर सकते हैं। इससे भविष्य में कम कीटनाशक उपयोग वाली किस्मों का विकास संभव हो सकता है।

4. सूखा सहन करने की क्षमता

यह पौधा कम जल उपलब्धता की स्थिति में भी जीवित रहने और बढ़ने की क्षमता रखता है।

5. उच्च तापमान में अनुकूलन

जंगली सोयाबीन अधिक तापमान वाली परिस्थितियों में भी वृद्धि कर सकती है, जो जलवायु परिवर्तन के समय में अत्यंत उपयोगी गुण है।

6. प्रतिकूल मृदा परिस्थितियों में वृद्धि

यह पौधा अपेक्षाकृत कम उर्वरता या लवणीय मिट्टी में भी विकसित हो सकता है।

7. नाइट्रोजन स्थिरीकरण

इसकी जड़ों में उपस्थित ग्रंथियाँ वायुमंडल से नाइट्रोजन को स्थिर करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायता करती हैं।

8. बेहतर अंकुरण क्षमता

इसके बीज प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी अंकुरण क्षमता रखते हैं।

9. पोषण गुणवत्ता में सुधार

जंगली सोयाबीन में पाए जाने वाले कुछ आनुवंशिक गुणों का उपयोग सोयाबीन में प्रोटीन तथा तेल की गुणवत्ता सुधारने के लिए किया जा सकता है।

10. टिकाऊ कृषि के लिए उपयोगी

कम संसाधनों में भी अनुकूलन की क्षमता के कारण यह भविष्य की टिकाऊ कृषि प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है।

फसल सुधार में भूमिका

फसल प्रजनन कार्यक्रमों में जंगली सोयाबीन का उपयोग करके कई महत्वपूर्ण गुणों को खेती योग्य सोयाबीन में स्थानांतरित किया जा सकता है। वैज्ञानिक संकरण, चयन और आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी तकनीकों की सहायता से अधिक उत्पादक, रोगरोधी तथा जलवायु-अनुकूल किस्मों का विकास संभव है।

पारिस्थितिक महत्व

जंगली सोयाबीन प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती है और विभिन्न सूक्ष्मजीवों तथा कीटों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। इस प्रकार यह जैव विविधता को बनाए रखने में योगदान देती है।

संरक्षण की आवश्यकता

वर्तमान समय में शहरीकरण, भूमि उपयोग में परिवर्तन तथा प्राकृतिक आवासों के नष्ट होने के कारण कई जंगली पौध प्रजातियाँ खतरे में हैं। इसलिए जंगली सोयाबीन का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए जीन बैंक, बीज भंडारण तथा प्राकृतिक आवासों की सुरक्षा जैसे उपाय अपनाए जाने चाहिए।

निष्कर्ष

जंगली सोयाबीन एक महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन है, जो भविष्य की कृषि के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसकी विविधता, सहनशीलता तथा प्रतिरोधक गुणों के कारण यह नई और बेहतर सोयाबीन किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। आने वाले समय में जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों से निपटने में इसका महत्व और भी बढ़ने की संभावना है।

सच्चा प्रेम स्वतंत्रता देता है, अधिकार का दावा नहीं करता
-रविन्द्र नाथ टैगोर

जलवायु परिवर्तन और सोयाबीन रोग: बदलता मौसम, बदलते रोगजनक

पलक सोलंकी, ज्योति काग, डॉ.हेमंत माहेश्वरी, डॉ.लोकेश मीना, डॉ.संजीव कुमार
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : sanjv007@gmail.com

सोयाबीन को "गोल्डन बीन" के नाम से जाना जाता है क्योंकि यह उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन और तेल का महत्वपूर्ण स्रोत है तथा भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में इसकी प्रमुख भूमिका है। विशेष रूप से मध्य भारत के राज्यों में लाखों किसानों की आजीविका इस फसल पर निर्भर करती है। हालांकि वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन सोयाबीन उत्पादन के सामने एक गंभीर और उभरती हुई चुनौती बनकर खड़ा है।

बढ़ता तापमान, अनियमित बारिश, लम्बे सूखे और अचानक भारी वर्षा जैसी परिस्थितियाँ केवल फसल की वृद्धि को ही नहीं, बल्कि उससे जुड़े रोगों को भी बदल रही हैं। पौध रोग विज्ञान के दृष्टिकोण से यह बदलाव बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि रोग केवल रोगजनक से नहीं, बल्कि "होस्ट–रोगजनक–पर्यावरण" के संतुलन से बनता है। जब पर्यावरण बदलता है, तो रोगों का स्वरूप भी बदल जाता है।

बदलते मौसम का रोगों पर सीधा असर

1. बढ़ता तापमान और चारकोल रॉट

उच्च तापमान और सूखी परिस्थितियाँ मक्रोफोमिना फेजिओलीना नामक फफूंद के लिए अनुकूल होती हैं, जो चारकोल रॉट रोग का कारण है। जब तापमान 30–35 डिग्री सेल्सियस के आसपास रहता है और मिट्टी में नमी कम होती है, तो यह रोगजनक तेजी से सक्रिय हो जाता है। यह जड़ों और तनों में सूक्ष्म संरचनाएँ बनाकर पौधे की जल और पोषक अवशोषण प्रणाली को बाधित करता है। परिणामस्वरूप पौधे मुरझाने लगते हैं और उपज घट जाती है। सूखे के वर्षों में चारकोल रॉट का प्रकोप अधिक देखने को मिल रहा है, जो जलवायु परिवर्तन और रोग के बीच सीधा संबंध दिखाता है (चित्र 1.क)।

2. अनियमित वर्षा और जड़ सड़न

कभी लम्बा सूखा और फिर अचानक भारी वर्षा, यह पैटर्न अब आम होता जा रहा है। अत्यधिक वर्षा से खेतों में जलभराव हो जाता है। ऐसी स्थिति में रायजोक्टोनिया सोलानी और फ्यूजेरियम जैसे मृदा जनित रोगजनक तेजी से सक्रिय हो जाते हैं। जलभराव से मिट्टी में ऑक्सीजन कम हो जाती है, पौधे तनावग्रस्त हो जाते हैं और जड़ सड़न रोग बढ़ जाता है। इस तरह का रोग प्रकोप न केवल पौधे को कमजोर करता है बल्कि खेत में असमान वृद्धि और उत्पादन में गिरावट लाता है (चित्र 1.ख)।

3. आर्द्रता और पत्तीय रोग

उच्च सापेक्षिक आर्द्रता पत्तियों की सतह पर लंबे समय तक नमी बनाए रखती है। यह स्थिति पत्तीय रोगों के लिए आदर्श है। सर्कोस्पोरा और कोलेटोट्राईकम जैसे रोगजनक तेजी से फैलते हैं। पत्तियों पर धब्बे, झुलसा और समय से पहले पत्ती गिरना आम हो जाता है। जब प्रकाश संश्लेषण कम होता है, तो सीधे उत्पादन प्रभावित होता है (चित्र 1.ग, (चित्र 1.घ)।

4. कीट वाहकों की बढ़ती भूमिका

जलवायु परिवर्तन का असर कीटों पर भी पड़ रहा है। तापमान बढ़ने से कीटों की जीवन अवधि और प्रजनन दर बदलती है। सफेद मक्खी की संख्या बढ़ने से पीला मोज़ेक वायरस का प्रसार तेजी से होता है। यह रोग पत्तियों को पीला कर देता है और पौधे की वृद्धि रोक देता है। जहां पहले यह रोग सीमित क्षेत्रों में दिखता था, अब इसका भौगोलिक विस्तार बढ़ता जा रहा है (चित्र 1.ड)।

पौधों की प्रतिरोध क्षमता पर प्रभाव

सूखा, उच्च तापमान और पोषण असंतुलन पौधों को तनावग्रस्त बना देते हैं। तनावग्रस्त पौधे अपनी प्राकृतिक रक्षा प्रणाली को पूरी तरह सक्रिय नहीं कर पाते। रोग प्रतिरोध से जुड़े रसायनों और एंजाइमों का उत्पादन घट सकता है। ऐसे में रोगजनकों को संक्रमण स्थापित करने का बेहतर मौका मिल जाता है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन केवल रोगजनक को मजबूत नहीं करता, बल्कि पौधे को कमजोर भी बनाता है।

आर्थिक असर

रोग प्रकोप बढ़ने का सीधा असर किसान पर पड़ता है। कई क्षेत्रों में 30 से 50 प्रतिशत तक उपज हानि दर्ज की गई है। अधिक कवकनाशी और कीटनाशक उपयोग से लागत बढ़ती है। बीज गुणवत्ता प्रभावित होती है। सोयाबीन तेल और पशु आहार की उपलब्धता पर असर पड़ता है। इसका असर केवल खेत तक सीमित नहीं रहता, बल्कि बाजार और उपभोक्ता तक पहुंचता है।

समाधान क्या है?

जलवायु परिवर्तन एक दीर्घकालिक वैश्विक प्रक्रिया है जिसे पूरी तरह रोकना संभव नहीं है, लेकिन वैज्ञानिक और प्रबंधन उपायों के माध्यम से इसके कृषि पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। विशेषकर सोयाबीन जैसी फसलों में तापमान वृद्धि, अनियमित वर्षा और आर्द्रता में बदलाव के कारण रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। ऐसे में निम्नलिखित उपाय प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

1. रोगरोधी और जलवायु सहनशील किस्में

ऐसी किस्मों का विकास और चयन आवश्यक है जो उच्च तापमान, अनियमित वर्षा और सूखे की स्थिति में भी अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाए रखें। पौध प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से बहु-रोगरोधी और तनाव सहनशील जर्मप्लाज्म का उपयोग कर नई किस्में विकसित की जा सकती हैं। इससे रासायनिक नियंत्रण पर निर्भरता घटती है और उत्पादन स्थिर रहता है।

2. बीज उपचार

बुवाई से पहले बीजों का उपचार एक सरल लेकिन अत्यंत प्रभावी उपाय है। कवकनाशी रसायनों या जैव एजेंट जैसे ट्राइकोडरमा से उपचार करने पर बीज एवं मृदा जनित रोगों का प्रारंभिक संक्रमण कम होता है। इससे अंकुरण बेहतर होता है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि स्वस्थ रहती है, जो आगे चलकर रोग प्रतिरोध को मजबूत करती है।

3. फसल चक्र

लगातार एक ही फसल, विशेषकर सोयाबीन, उगाने से मृदा में रोगजनकों की संख्या बढ़ती जाती है। फसल चक्र अपनाने से रोगजनकों का जीवन चक्र टूटता है और उनकी जनसंख्या स्वाभाविक रूप से घटती है। उदाहरण के लिए सोयाबीन के बाद गेहूँ या मक्का जैसी गैर-मेज़बान फसलें उगाना लाभकारी होता है।

4. बेहतर जल प्रबंधन

अत्यधिक वर्षा और जलभराव की स्थिति में जड़ सड़न एवं अन्य मृदा जनित रोग तेजी से फैलते हैं। खेत में उचित जल निकास व्यवस्था, समतलीकरण और संतुलित सिंचाई प्रबंधन से इन रोगों की संभावना कम की जा सकती है। सूखे की स्थिति में भी नियंत्रित सिंचाई पौधों को तनाव से बचाती है।

5. रोग पूर्वानुमान प्रणाली

मौसम आधारित मॉडल और रोग पूर्वानुमान प्रणाली के माध्यम से तापमान, आर्द्रता और वर्षा के आंकड़ों का विश्लेषण कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कब और कहाँ रोग प्रकोप की संभावना अधिक है। इससे किसान समय रहते रोकथाम के उपाय अपना सकते हैं, जिससे अनावश्यक छिड़काव कम होता है और लागत भी घटती है।

इन सभी उपायों को समन्वित रूप से अपनाने पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सकता है और फसल उत्पादन को अधिक स्थिर एवं सुरक्षित बनाया जा सकता है।

पादप रोग विज्ञान की बढ़ती भूमिका

आज पादप रोग विज्ञान केवल रोग की पहचान तक सीमित नहीं है। यह जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में रोगों के पैटर्न को समझने, नई रोग जातियों की पहचान करने और टिकाऊ प्रबंधन रणनीतियाँ विकसित करने का विज्ञान बन चुका है। आणविक तकनीकों से रोगजनकों की संरचना और अनुकूलन क्षमता का अध्ययन किया जा रहा है। इससे भविष्य के लिए बेहतर तैयारी संभव है। जलवायु परिवर्तन और सोयाबीन रोगों का संबंध स्पष्ट होता जा रहा है। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा और आर्द्रता में बदलाव रोग त्रिकोण को रोगजनक के पक्ष में झुका रहे हैं। यदि समेकित रोग प्रबंधन, जलवायु अनुकूल खेती और वैज्ञानिक अनुसंधान को साथ लेकर चला जाए, तो इस चुनौती का सामना किया जा सकता है।

चित्र 1 (क-घ): सोयाबीन में लगने वाले विभिन्न प्रकार के रोग

कृषि उद्यमिता : इंदौर के ग्रामीण क्षेत्र में सोयाबीन खेती और इसके मूल्य संवर्धित उत्पादों की सफलता की कहानी

डॉ.दीपक मौर्य एवं बी डी कुशवाहा
भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र
संवादी लेखक का ई-मेल: Deepak.Maurya@icar.gov.in

परिचय

इंदौर, मध्यप्रदेश का एक प्रमुख शहर है, जहां शहरीकरण और उद्योगों का तेजी से विकास हो रहा है, लेकिन इसके आसपास के ग्रामीण इलाकों में कृषि अभी भी प्रमुख आजीविका का स्रोत है। विशेष रूप से इंदौर के आसपास के गांवों में कृषि उद्यमिता ने एक नया मोड़ लिया है। यहाँ के किसान, जो पहले केवल पारंपरिक खेती पर निर्भर थे, अब सोयाबीन जैसी फसल की खेती करके न केवल अपनी आय में वृद्धि कर रहे हैं, बल्कि इसके मूल्य संवर्धित उत्पादों से नया बाजार भी बना रहे हैं। यह कहानी एक ऐसे कृषक उद्यमी की है, जिसने सोयाबीन खेती के माध्यम से न केवल अपने जीवन को बदल दिया, बल्कि पूरे गांव की तस्वीर भी बदल दी।

यह कहानी है, रामु की, जो इंदौर के एक छोटे से गांव के किसान हैं। रामु का परिवार पहले से ही कृषि कार्य में लगा हुआ था, लेकिन उनका परिवार बहुत संघर्ष करता था। सोयाबीन का उत्पादन बहुत ज्यादा नहीं था और बाजार की कीमत भी ठीक नहीं मिल पाती थी। रामु के पास खेती के अलावा न ही कोई अन्य व्यवसाय था न ही कोई अन्य विकल्प, जिससे वह अपनी और अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधार सके। लेकिन रामु ने हार नहीं मानी और सोचा कि अगर कुछ नया किया जाए तो शायद कुछ फर्क पड़े।

सोयाबीन की खेती में बदलाव

रामु ने कृषि में सुधार लाने के लिए विभिन्न विकल्पों की खोज शुरू की। एक दिन, उसे कृषि विज्ञान केंद्र इंदौर के माध्यम से राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर का पता चला। अपनी जागरूक प्रवित्ती के कारण वह एक दिन इस संस्थान के भ्रमण के लिए गया जहां उसे यह पता चला कि सोयाबीन एक प्रमुख कृषि उत्पाद है, जिसे देश में निर्यात भी किया जाता है। इसके साथ ही, सोयाबीन के तेल, सोया दूध, सोया पनीर, सोया चंक्स और अन्य मूल्य संवर्धित उत्पादों की भी बहुत मांग है। रामु ने यह तय किया कि वह सिर्फ सोयाबीन की खेती नहीं करेंगे, बल्कि इसके मूल्य संवर्धित उत्पादों को भी बनाने की योजना बनाएंगे। रामु ने राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर के कृषि विशेषज्ञों से सलाह ली और वैज्ञानिक विधियों का पालन किया और सबसे पहले अपने खेत में सोयाबीन की अच्छी गुणवत्ता वाली किस्में लगाई। उन्होंने प्राकृतिक खेती और जैविक खाद का उपयोग करना शुरू किया, जिससे उनकी फसल में न केवल उत्पादकता बढ़ी, बल्कि उत्पादन की गुणवत्ता भी सुधरी। रामु ने खेत में आधुनिक उपकरणों का इस्तेमाल किया और बेहतर सिंचाई व्यवस्था की स्थापना की, जिससे पानी की कमी की समस्या भी हल हो गई।

मूल्य संवर्धित उत्पादों का निर्माण

अब रामु की योजना सोयाबीन से मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाने की थी। उन्होंने राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर के कृषि विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में सोयाबीन तेल और सोया दूध बनाने की शुरुआत की। इसके लिए उन्होंने पहले एक छोटा सा संयंत्र स्थापित किया और फिर धीरे-धीरे इसका विस्तार किया। सोयाबीन तेल का बाजार में बहुत अच्छा दाम मिल रहा था, और रामु ने इसे स्थानीय बाजारों में बेचने के साथ-साथ शहरों में भी पहुंचाना शुरू किया।

आगे बढ़कर रामु ने सोया दूध और सोया पनीर का उत्पादन भी शुरू किया। ये उत्पाद स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बहुत लाभकारी हैं, खासकर शाकाहारी लोगों के लिए। रामु ने विशेषज्ञों के सलाह अनुसार इन उत्पादों की पैकिंग और ब्रांडिंग पर भी ध्यान दिया, ताकि उनका उत्पाद आकर्षक और ग्राहकों के लिए विश्वसनीय दिखे। रामु ने सोचा कि अगर वह केवल गांव में ही उत्पाद बेचेंगे तो ज्यादा लाभ नहीं होगा, इसलिए उन्होंने अपने उत्पादों को शहरों में भी बेचना शुरू किया।

उनकी मेहनत रंग लाई और उनके उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ने लगी। लोग अब सोयाबीन के तेल और सोया उत्पादों के लिए रामु के ब्रांड को पहचानने लगे थे। रामु ने अपने गांव में एक छोटा सा कारखाना भी स्थापित किया, जिससे न केवल उनकी आय बढ़ी, बल्कि आसपास के कई युवाओं को रोजगार भी मिला।

सामुदायिक लाभ और सामाजिक परिवर्तन

रामु ने कृषि उद्यमिता को केवल अपने परिवार के लिए नहीं, बल्कि पूरे गांव के लिए एक अवसर के रूप में देखा। कृषि विज्ञान केंद्र के माध्यम से उन्होंने अपने अनुभवों को गांव के अन्य किसानों के साथ साझा किया और उन्हें भी सोयाबीन की खेती और मूल्य संवर्धन के बारे में बताया। रामु ने उन्हें अपने संयंत्र में प्रशिक्षण देने की शुरुआत की और

जल्द ही गांव के कई किसान इस नए प्रयास से जुड़ गए। रामू ने इसके लिए एक लघु कृषक कृषि व्यवसाय संघ (एसएफएसी) एफपीओ की स्थापन की जिसके परिणामस्वरूप, गांव में सोयाबीन की खेती का दायरा बढ़ा और किसान अपनी उपज को सीधे मूल्य संवर्धन के रूप में बेचने लगे।

रामु की सफलता ने गांव के अन्य लोगों को भी प्रेरित किया और उन्होंने कृषि उद्यमिता के रास्ते पर चलने का निर्णय लिया। अब, गांव में न केवल कृषि उत्पादों का उत्पादन बढ़ा, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी मजबूत हुई। कई महिलाएं और युवा भी रामु के साथ जुड़कर रोजगार प्राप्त करने लगे थे। इस प्रकार, रामु ने न केवल अपनी बल्कि पूरे गांव की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार किया।

नवीनतम प्रौद्योगिकी और विपणन की भूमिका

रामु ने अपनी सफलता में नवीनतम प्रौद्योगिकी और विपणन रणनीतियों का भी महत्वपूर्ण योगदान माना। उन्होंने डिजिटल प्लेटफार्मों का इस्तेमाल करना शुरू किया, ताकि उनके उत्पादों की बिक्री अधिक हो सके। सोशल मीडिया के जरिए उन्होंने अपने उत्पादों को न केवल शहरों में, बल्कि अन्य राज्यों में भी प्रमोट किया। रामु ने यह भी समझा कि अच्छे विपणन के बिना एक अच्छा उत्पाद भी बेकार हो सकता है, इसलिये उन्होंने अपने उत्पादों के लिए एक मजबूत ब्रांड पहचान बनाई।

निष्कर्ष

रामु की यह यात्रा न केवल कृषि उद्यमिता की सफलता की कहानी है, बल्कि यह हमें यह सिखाती है कि कैसे सही समय पर नए विचारों और मेहनत से हम अपने जीवन को बदल सकते हैं। सोयाबीन की खेती और उसके मूल्य संवर्धन के उत्पादों ने रामु के जीवन को नया मोड़ दिया और उन्होंने अपने गांव को भी आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाया। कृषि उद्यमिता ने न केवल किसानों को आत्मनिर्भर बनाया, बल्कि समग्र रूप से ग्रामीण समाज में बदलाव का एक सूत्रपात किया।

रामु की यह कहानी आज के युवा किसानों के लिए एक प्रेरणा है, जो सोचते हैं कि सिर्फ पारंपरिक खेती के जरिए ही आय अर्जित की जा सकती है। यदि रामु जैसे किसान कृषि में नवाचार और उद्यमिता लाकर सफलता पा सकते हैं, तो हम सभी को इस दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए और अपने आसपास के समाज की तस्वीर को बदलने की कोशिश करनी चाहिए।

बर्तन में रखा पानी चमकता है, समुद्र का पानी अस्पष्ट प्रतीत होता है।
लघु सत्य स्पष्ट शब्दों से बताया जा सकता है, पर महान सत्य मौन रहता है।
- रविन्द्र नाथ टैगोर

"उच्च क्षमता फीनोटाइपिंग (High Throughput Phenotyping) हेतु फिनोमिक्स और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एकीकृत उपयोग

डॉ. आलोक शिव, डॉ. वी. नटराज, डॉ. गिरिराज कुमावत, डॉ. वंगाला राजेश, डॉ. हेमंत सिंह माहेश्वरी, डॉ. संजीव कुमार
डॉ. विराज जी. कांबले, डॉ. ज्ञानेश कुमार सातपुते, डॉ. मिलिंद बी. रत्नापारखे, डॉ. संजय गुप्ता एवं डॉ. के. एच. सिंह
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : rajbhartishiv@gmail.com

परिचय:

फीनोटाइपिंग से तात्पर्य पौधों के प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाले लक्षणों जैसे आकारिकी (morphological), शारीरिक (physiological), जैव रासायनिक (biochemical) तथा विकासात्मक (developmental) विशेषताओं के मापन से है। ये लक्षण पौधे के जीनोटाइप और पर्यावरण के परस्पर प्रभाव से निर्धारित होते हैं और फसल की उत्पादकता तथा तनाव सहनशीलता को प्रभावित करते हैं। पारंपरिक रूप से फसल पौधों में फीनोटाइपिंग का कार्य पौधों की ऊँचाई, पत्ती क्षेत्रफल, बायोमास और उपज जैसे लक्षणों को मैन्युअल रूप से मापकर किया जाता रहा है। हालाँकि, यह पारंपरिक विधि अत्यधिक श्रमसाध्य, समय-साध्य और कई बार मानवीय त्रुटियों से प्रभावित होती है, जिसके कारण बड़े पैमाने पर पौधों की जनसंख्या का विश्लेषण करना कठिन हो जाता है (Gill et al., 2022)। दूसरी ओर, जीनोमिक तकनीकों जैसे नेक्स्ट-जेनरेशन सीक्वेंसिंग (NGS) और उच्च-थ्रूपुट जीनोटाइपिंग प्लेटफार्मों ने पौधों के जीनोम का तीव्र विश्लेषण संभव बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप जीनोटाइपिक डेटा की मात्रा तेजी से बढ़ी है, लेकिन फीनोटाइपिक डेटा संग्रह की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है। इस असंतुलन को ही "फीनोटाइपिंग बॉटलनेक" कहा जाता है (Yang et al., 2024)।

इस समस्या के समाधान के लिए फिनोमिक्स आधारित प्रणालियों का विकास किया गया, जो उन्नत सेंसर, इमेजिंग तकनीकों और कम्प्यूटेशनल उपकरणों का उपयोग करके पौधों के लक्षणों का स्वचालित और तीव्र मापन करती हैं (Gill et al., 2022)। इन प्रणालियों से प्राप्त विशाल डेटा सेटों के विश्लेषण के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है। AI आधारित एल्गोरिद्म बड़ी मात्रा में इमेजिंग डेटा का विश्लेषण करके पौधों के विकास, स्वास्थ्य और तनाव प्रतिक्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकते हैं (Maraveas, 2024)।

1. फिनोमिक्स की तकनीकें:

फिनोमिक्स प्रणालियाँ स्वचालित इमेजिंग तकनीकों, पर्यावरणीय सेंसरों, रोबोटिक्स और डेटा विश्लेषण प्लेटफार्मों के संयोजन से कार्य करती हैं। इन प्रणालियों को मुख्य रूप से नियंत्रित-पर्यावरण प्लेटफार्मों और फील्ड-आधारित प्लेटफार्मों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नियंत्रित-पर्यावरण फिनोमिक्स प्रणालियाँ आमतौर पर ग्रीनहाउस या ग्रोथ चेंबर में स्थापित की जाती हैं, जहाँ तापमान, प्रकाश, आर्द्रता और पोषक तत्वों जैसे पर्यावरणीय कारकों को नियंत्रित किया जा सकता है। इन प्रणालियों में अक्सर स्वचालित कन्वेयर सिस्टम का उपयोग किया जाता है जो पौधों को विभिन्न इमेजिंग स्टेशनों तक ले जाता है। इन स्टेशनों पर विभिन्न कोणों से पौधों की छवियाँ ली जाती हैं, जिससे पौधों की संरचना, वृद्धि दर और विकासात्मक परिवर्तनों का विस्तृत विश्लेषण किया जा सकता है (Yang et al., 2024)।

फील्ड-आधारित फिनोमिक्स प्रणालियाँ वास्तविक कृषि परिस्थितियों में पौधों के लक्षणों का मापन करने के लिए विकसित की गई हैं। इनमें ट्रैक्टर-माउंटेड सेंसर, ग्राउंड रोबोट और मानव रहित हवाई वाहन (UAVs) शामिल हैं। UAV आधारित फिनोमिक्स प्रणालियाँ बड़े खेतों की तेज़ी से निगरानी करने में सक्षम होती हैं और मल्टीस्पेक्ट्रल तथा हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग के माध्यम से पौधों के स्वास्थ्य और पोषण स्थिति का विश्लेषण करती हैं (Teodoro et al., 2024)। इसके अतिरिक्त, ग्राउंड-आधारित रोबोटिक प्रणालियाँ भी विकसित की गई हैं जो फसल की कतारों के बीच चलकर उच्च-रिज़ॉल्यूशन डेटा एकत्र करती हैं। इन रोबोटों में RGB कैमरा, LiDAR सेंसर और थर्मल कैमरा जैसे उपकरण लगे होते हैं, जो पौधों की ऊँचाई, छत्र संरचना और पत्ती संरचना का सटीक मापन करने में सक्षम होते हैं (Xu and Li, 2022)। फिनोमिक्स में विभिन्न प्रकार की इमेजिंग तकनीकों का उपयोग किया जाता है। RGB इमेजिंग का उपयोग पौधों के आकारिकी लक्षणों के विश्लेषण के लिए किया जाता है। मल्टीस्पेक्ट्रल और हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग पौधों की शारीरिक और जैव रासायनिक विशेषताओं का अध्ययन करने में सहायक होती हैं। थर्मल इमेजिंग पौधों में जल तनाव की पहचान करने में उपयोगी होती है, जबकि फ्लोरोसेंस इमेजिंग प्रकाश संश्लेषण की दक्षता का अध्ययन करने में सहायक होती है (Maraveas, 2024)।

2. फिनोमिक्स में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग:

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधुनिक फिनोमिक्स प्रणालियों का एक महत्वपूर्ण घटक बन चुकी है क्योंकि यह विशाल डेटा सेटों के विश्लेषण को स्वचालित और प्रभावी बनाती है। मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म जटिल डेटा में छिपे पैटर्न को पहचानने में सक्षम होते हैं और सेंसर डेटा को उपयोगी जैविक जानकारी में परिवर्तित करते हैं। मशीन लर्निंग तकनीकों जैसे रैंडम फॉरेस्ट, सपोर्ट वेक्टर मशीन और ग्रेडिएंट बूस्टिंग एल्गोरिद्म का उपयोग पौधों के लक्षणों की भविष्यवाणी करने के लिए किया जाता है। इन एल्गोरिद्म का उपयोग मल्टीस्पेक्ट्रल इमेजिंग से प्राप्त वनस्पति सूचकांकों के विश्लेषण में किया जाता है और इनके आधार पर बायोमास, उपज और पोषण स्थिति जैसे लक्षणों का अनुमान लगाया जा सकता है (Teodoro et al., 2024)। डीप लर्निंग तकनीकों ने इमेज-आधारित फेनोमिक्स में नई संभावनाएँ पैदा की हैं। विशेष रूप से कॉन्वोल्यूशनल न्यूरल नेटवर्क (CNN) बड़े इमेज डेटा सेटों से स्वतः फीचर निकालने में सक्षम होते हैं। इन तकनीकों का उपयोग पौधों की बीमारियों की पहचान, पत्ती विभाजन, विकास चरणों की पहचान और उपज पूर्वानुमान में किया जा रहा है (Jin et al., 2025)। डीप लर्निंग मॉडल पौधों की हजारों छवियों का विश्लेषण करके पत्तियों के रंग, आकार और बनावट में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों को पहचान सकते हैं, जो अक्सर रोग या पर्यावरणीय तनाव का संकेत होते हैं (Maraveas, 2024)।

3. फसल सुधार में AI आधारित फिनोमिक्स के अनुप्रयोग:

AI आधारित फिनोमिक्स का उपयोग पौध विज्ञान और फसल सुधार के अनेक क्षेत्रों में किया जा रहा है। सबसे महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों में से पौधों के रोगों और पर्यावरणीय तनावों का प्रारंभिक पता लगाना है। उन्नत इमेजिंग तकनीकों और मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म के संयोजन से पौधों में रोग या तनाव के शुरुआती संकेतों की पहचान की जा सकती है, जिससे बड़े पैमाने पर पौध जनसंख्या में सहनशील जीनोटाइप का चयन किया जा सकता है (Gill et al., 2022)। AI आधारित फिनोमिक्स का उपयोग गुण खोज (trait discovery) और आनुवंशिक मानचित्रण में भी किया जाता है। उच्च-रिज़ॉल्यूशन फीनोटाइपिक डेटा को जीनोमिक डेटा के साथ जोड़कर महत्वपूर्ण कृषि लक्षणों से जुड़े क्वांटिटेटिव ट्रेट लोसाई (QTLs) की पहचान की जा सकती है (Yang et al., 2024)। इसके अतिरिक्त, मशीन लर्निंग मॉडल फीनोटाइपिक और पर्यावरणीय डेटा का विश्लेषण करके फसल उपज का पूर्वानुमान लगाने में भी सक्षम होते हैं। UAV और उपग्रह आधारित रिमोट सेंसिंग तकनीकों से प्राप्त डेटा के आधार पर बड़े कृषि क्षेत्रों में फसल उत्पादकता का अनुमान लगाया जा सकता है (Teodoro et al., 2024)। जड़ फीनोटाइपिंग भी AI तकनीकों से काफी लाभान्वित हुई है। चूँकि जड़ प्रणाली मिट्टी के अंदर विकसित होती है, इसलिए उसका अध्ययन पारंपरिक विधियों से कठिन होता है। AI आधारित इमेजिंग प्रणालियाँ जड़ संरचना और विकास का अध्ययन करने में सहायता करती हैं और सूखा सहनशीलता जैसे महत्वपूर्ण लक्षणों की पहचान में मदद करती हैं (Xu and Li, 2022)।

4. फिनोमिक्स और जीनोमिक्स का एकीकरण:

आधुनिक फसल प्रजनन में फिनोमिक्स और जीनोमिक्स का एकीकरण एक महत्वपूर्ण प्रगति है। फिनोमिक्स बड़े पैमाने पर पौधों के लक्षणों के मापन से संबंधित है, जबकि जीनोमिक्स आनुवंशिक विविधता के अध्ययन से संबंधित है। इन दोनों दृष्टिकोणों को संयोजित करके जटिल कृषि लक्षणों के आनुवंशिक आधार को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इन विभिन्न डेटा स्रोतों को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म जीनोमिक, फीनोटाइपिक और पर्यावरणीय डेटा का विश्लेषण करके जटिल संबंधों की पहचान कर सकते हैं और बेहतर प्रजनन निर्णय लेने में सहायता कर सकते हैं (Maraveas, 2024)। इस प्रकार के एकीकृत दृष्टिकोण ने "Breeding 4.0" की अवधारणा को जन्म दिया है, जिसमें बड़े डेटा विश्लेषण और AI आधारित मॉडलिंग के माध्यम से बेहतर किस्मों के विकास की प्रक्रिया को तेज किया जाता है (Yang et al., 2024)।

5. चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाएँ:

AI आधारित फिनोमिक्स में महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद कई चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। विभिन्न शोध संस्थानों में प्रयुक्त सेंसर, इमेजिंग परिस्थितियाँ और डेटा विश्लेषण विधियाँ अलग-अलग होने के कारण डेटा का मानकीकरण एक बड़ी समस्या है (Gill et al., 2022)। इसके अतिरिक्त, डीप लर्निंग मॉडल के प्रशिक्षण के लिए बड़े और अच्छी तरह से लेबल किए गए डेटा सेटों की आवश्यकता होती है, जिन्हें तैयार करना समय-साध्य और विशेषज्ञता-आधारित कार्य है (Maraveas, 2024)। भविष्य में सेंसर तकनीकों, रोबोटिक्स और कम्प्यूटेशनल प्लेटफार्मों में होने वाली प्रगति फिनोमिक्स प्रणालियों को और अधिक प्रभावी बनाएगी। हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग, त्रि-आयामी पौध संरचना विश्लेषण और डिजिटल फसल मॉडलिंग जैसी उभरती तकनीकें पौध विकास और तनाव प्रतिक्रियाओं को अधिक गहराई से समझने में सहायता करेंगी (Yang et al., 2024)। कुल मिलाकर, AI आधारित फेनोमिक्स भविष्य में फसल सुधार कार्यक्रमों को तेज करने और जलवायु-सहिष्णु तथा उच्च उत्पादकता वाली फसल किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

खण्ड
ख
"क्षेत्रीय भाषायी आलेख"

मराठी

सोयाबीन : पौष्टीक महत्व व खाद्य उपयोग

डॉ. बी.यू. दुपारे, प्रमुख शास्त्रज्ञ (कृषि विस्तार)
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : soyextn@gmail.com

सोयाबीन हे विश्वातील सर्वात महत्वपूर्ण तेलवर्गीय आणि ग्रंथिकुळाचे पीक आहे. सोयाबीनची उत्पादकता ग्रंथिकुळातील इतर पीकांपेक्षा अधिक प्रमाणात आहे. हे एक सर्वात स्वस्त व उच्च गुणवत्तेच्या प्रोटीन चे स्त्रोत आहे. यामध्ये जवळपास 40% टक्के प्राटिन व 18-20% तेल असते. सोयाबीन च्या प्रोटीन मध्ये मानव शरिरास आवश्यक असणारी बहुतेक सर्व प्रकारचे अमिनों आम्ल, सोबतच भरपूर प्रमाणात रेशे आणि विटामिन असल्यामूळे भारतीय भोजनात समावेश करण्यास अत्यंत उपयुक्त आहे. देशातील ग्रामिण जनतेमध्ये व्याप्त प्रोटिन कुपोषणापासुन सुटका देण्यास हे पीक आपलं अमुल्य योगदान देण्यास समर्थ आहे. सोयाबीन ने देशातील खाद्य तेलाची आवश्यकता पूर्ती करण्यास तसेच दरवर्षी सोयाबीन पासुन मिळणा-या ढेपीच्या निर्यातीने भरपूर प्रमाणात विदेशी मुद्रा प्राप्त करून देशाच्या अर्थव्यवस्थेस मजबुत कले आहे.

भारतात जवळपास 4 दशकांपूर्वी सोयाबीनच्या व्यावसायिक शेतीस मध्य प्रदेशापासुन सुरूवात झाली आणि सोयाबीन ने इतक्या कमी काळात देशातील तेलवर्गीय पीकांच्या उत्पादनामध्ये प्रथम स्थान प्राप्त केले आहे. नगदी पीक व देशातील काळया मातीच्या क्षेत्रामधिल पीक चक्रात उपयुक्त असल्या कारणांने तेथील शेतकर्यांमध्ये सोयाबीनच्या पीकाबददल आवड सतत वाढत गेली. 1960 च्या दशकात देशामध्ये केवळ 30000 हेक्टेयर क्षेत्रापासुन याची सुरुवात होउन, वर्ष 2024-25 मध्ये या पीका खालील क्षेत्रफळ जवळपास 129 लाख हेक्टर झाले ज्यापासुन सुमारे 135 लाख टन सोयाबीनचे उत्पादन होण्याचा अंदाज आहे. अशाप्रकारे सोयाबीनने देशात पिवळी क्रांती घडवन्यास प्रमुख भुमिका निभावली आहे. विभिन्न सहकारी, शासकीय व खाजगी, संशोधन व विकास संस्था, उद्योजक आणि विस्तार कार्यकर्तांच्या अथक प्रयत्नांनी व शेतकर्यांनी केलेल्या मेहनतीने एकवीसाव्या शतकातील हया चमत्कारिक पीकामध्ये फार चढ़-उतार होउनही देशातील शेतकरयांच्या पीक पदधति मध्ये आपले विशेष स्थान प्राप्त केले आहे. सोया राज्य मध्यप्रदेशातील शेतकर्यांच्या सामाजिक व आर्थिक उत्थानात प्रमुख भुमिका पार पाडणा-रया हया पीकाची व्यावसायीक शेती अलिकडल्या काळात प्रमुख रूपाने मध्यप्रदेष, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक व आंध्रप्रदेशातील शेतकर्यां द्वारे यशस्वी प्रकारे केली जात आहे. परंतु जवळपास 50 वर्ष व्यावसायिक शेती करूनही देषातील जनतेमध्ये सोयाबीनचे खाद्य उपयोग लोकप्रिय नाहीत. सध्या देशातील शेतकर्यां कडुन प्राप्त उत्पादनामधुन सोयाबीन चे सुमारे 90 टक्के भाग सोयाबीन आधारित प्रसंस्करण एककांद्वारे उपयोगात आणले जाते, जिथे तेल काढूण वाचलेल्या अवशेषांचे (खली/डिओसी) परदेशात केल्या जाना-या निर्याती पासुन बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त केली जाते. वाचलेले 10% टक्कयांचा उपयोग बीयाणे आणि अन्य पदार्थ बनवन्या साठी केल्या जातो. प्रस्तुत लेखात सोयाबीनचे पौष्टीक गुण तसेच सोयाबीनचे खाद्य उपयोग वाढविण्यासाठी यापासून विविध खाद्य पदार्थ/व्यंजन बनविण्याच्या प्रसंस्करण कृती बाबत माहिती देण्याचा प्रयत्न केला आहें.

सोयाबीन चे पौष्टीक गुण

1. सोया प्रोटिन

मानव शरिराच्या विकासासाठी आणि स्वस्थ आरोग्यासाठी प्रोटिनची नितांत गरज असते जे फक्त कड़धान्य व अशाकाहारी पदार्थाच्या माध्यमातून प्राप्त होतें. अलिकडील काळात कडधान्य तसेच अशाकाहारी स्त्रोत्रांच्या किंमती मध्ये झालेल्या अभूतपूर्व वाढीस बघून सोयाबीनला सध्याच्या परिस्थितीत सर्वात स्वस्त व उच्च गुणवत्तायुक्त प्रोटीन च विकल्प म्हणून बघितले जाऊ लागले आहे. सोयाबीन मध्ये इतर दाळींच्या तुलनेने (20 टक्के प्रोटिन) कमी किंमतीत (40-50 रूपये/कि.ग्रा.) जवळपास 40 टक्के प्राटिन प्राप्त होते.

2. सोयाबीनचे खाद्य तेल

सोयाबीनच्या तेलात कित्येक प्रकारचे आवश्यक वसायुक्त आम्लं (फैटी ॲसीड) असतात ज्यांची मानव शरीराच्या कित्येक अंवयवांच्या (मस्तिष्क तंतु, दृष्टिपटल कोषिका व जननांग ऊतकांच्या) विकास व संरचनेस आवश्यकता असते. सोबतच यामध्ये ओमेगा-3 व ओमेगा-6 फैटी ॲसीड चा योग्य अनूपात असल्यामुळे हे मानवी शरीरासाठी फार स्वास्थ्यवर्धक आहे.

3. विटामिनांची अधिकता

सोयाबीन मध्ये मानव शरिरास आवश्यक असणारे कित्येक प्रकारचे विटामिन उपलब्ध आहेत. सोयाबीन मध्ये विटामिन 'बी'

काम्पलेक्स श्रेणीचे विटामिन उदाहरणार्थ थायमीन आणि राइबोफ्लेविन ची मात्रा जवळजवळ 11 आणि 34 मि.ग्रा. प्रति ग्राम सोयाबीन असते. हया व्यतिरिक्त अंकुरित सोयाबीन आणि अविकसित सोयाबीन (हिरव्या शेंगा) मध्ये विटामीन 'सी' आणि विटामिन 'ए' (बीटा-कैरोटिन) भरपूर प्रमाणात मिळते. तसेच सोयाबीन हे विटामिन 'ई' (टोकोफीरोल) चे ही चांगले स्त्रोत्र आहे, जे नैसर्गिक प्रतिऑक्सीजनकारक (Anti-oxidant) आहे.

4. लोह आणि कैल्शियम:

सोयाबीन मध्ये चांगल्या प्रमाणात लोह व कैल्शियम समावेष असल्यामूळे हे मानव शरिरात रक्ताचे प्रमाण बनवन्यास मदत करते तसेच हाडांची मजबूती बनवन्याचे कार्य करते.

5. लॅक्टोज असहनशील मुलांकरिता सोयाबीन :

सोयाबीनच्या दुधात लॅक्टोज साखर अनुपस्थित असल्यामूळे ज्या मुलांना गायी-म्हशीच्या दुधात उपस्थित असणारे लॅक्टोजचे पचन होत नाही म्हणजेच ज्या मुलांमध्ये लॅक्टोज एन्जाइम ची कमतरता असते त्यांना सोयाबीनचे दुध एक चांगले विकल्प आहे.

6. मधुमेहाच्या रोगियांसाठी लाभकारी

सोयाबीन मध्ये कार्बोहाइड्रेट्सची मात्रा जवळपास 20-30 टक्केच असते आणि स्टार्च तर जवळपास नसतेच. अश्या हया जैविक रसायन संरचनेमुळे मधुमेहाच्या रोगियांसाठी सोयाबीन फार उपयोगी आहे.

7. हृदय रोगियांसाठी लाभकारी :

सोयाबीन बीयाण्यांमध्ये जवळपास 20 टक्के तेल असते, ज्यात पॉलि-अन-सॅचूरेटेड वसीय आम्लांची (पुफा)अधिक असल्यामुळें हृदय रोगियांसाठी फार उपयोगी ठरते. त्याचप्रकारे सोयाबीन दुध पण कॉलेस्ट्रॉल रहित असते जे हृदय रोगियांसाठी फार स्वास्थ्यवर्धक आहे.

8.स्त्रियांसबंधित व्याधिंकरिता सोयाबीन पदार्थांचे उपयोग :

सोयाबीन पदार्थामध्ये आसोफ्लेवोन नामक जैव रसायन मिळते जे स्त्रियांसबंधित बर्याच आजारांना कमी करण्यास महत्वपूर्ण ठरते. कारण हया जैव रसायनात इस्ट्रोजनिक प्रभाव, टायरोसिन काईनेज आणि आयुवृद्धी प्रभावांना कमी करण्यास प्राकृतिक प्रति आक्सीजनकारक गुणांचा समावेश आहे.

9. सोया आइसोफ्लेवान द्वारे रजोनिवृत्ति (मीनोपॉज) च्या त्रासात कमी :

स्त्रियांना रजोनिवृत्ति क्रियेच्या वेळेत रात्री घाम येणे, रागिटपणा, चेहरा लाल होणे, इत्यादी सारखे लक्षण दिसतात. जवळपास 20 ग्रा. सोयाबीन प्रोटिन (50 ग्रा. सोयाबीन) च्या दररोज उपयोगाने, ज्यामध्ये 34 मिलीग्राम आयसोफ्लेवोन ची मात्रा असते रजोनिवृत्ति च्या लक्षणास कमी करण्यास मदत मिळते.

10.सोया आयसोफ्लेवोन द्वारे स्तन कैंसर पासून बचाव :

राष्ट्रीय आणि अंतर्राष्ट्रीय पातळीवर केल्या गेलेल्या संशोधनाद्वारे असे निष्कर्ष तथ्य समोर आले आहे कि, सोया आसोफ्लेवोन स्तन कैंसर च्या शक्यतेस कमी करतो.

11. सोयाबीन द्वारे ओस्टीयोपोरोसिस रोगापासून बचाव :

रजोनिवृत्ति नंतर स्त्रियांमध्ये इस्ट्रोजन च्या कमी मूळे हाड़ं कमजोर होण्याचे लक्षण बघितले जातात, ज्यामूळे हाड़ तुटण्याची शक्यता असते. अश्याच प्रकारचे लक्षणं वृद्ध व दूध पाजणार्या स्त्रियांमध्ये पण बघितले जातात. संशोधन निष्कर्षानुसार रजोनिवृत्ति झालेल्या स्त्रिंयामध्ये दररोज 40 ग्रा. सोयाबीन प्रोटीन (25 मिली ग्राम आइसोफ्लेवोन) उपयोगात आणल्याने अस्थियांच्या तत्वांची सघनता वाढवली जाते.

सोयाबीन आधारित खाद्य पदार्थ

सोयाबीन पासून अनेक खाद्य पदार्थ बनविले जाऊ शकतात. पण हयासंबंधी अतिशय महत्वपूर्ण गोष्ट लक्षात ठेवावी की, सोयाबीन कधीही कच्ची खाऊ नये. हयाचा नेहमी प्रसंस्करीत करूनच उपयोग करावा. सोबत विशेष काळजी ही घ्यावी की कधीही जास्त प्रमाणात खाऊ नये. हयामध्ये ट्रिप्सीन नामक अपौष्टिक तत्व असल्यामूळे खाद्य पदार्थात उपयोगात आणण्यापूर्वी त्याला प्रसंस्करण (ताप प्रक्रिया) द्वारे नष्ट करणे अत्यंत गरजेचे आहे.

सोयाबीन नमकिन :

- सोयाबीनला कोमट पाण्यामध्ये 6-8 तास भिजवून ठेवावे.
- भिजलेल्या सोयाबीनचे अतिरिक्त पानी/ओलंसरपणा कमी करण्यास सोयाबीनला सुती कापडावर पसरवावे.
- हया नंतर कढ़ईत तेल गरम करून सोयाबीनला तळावे.
- तळलेल्या सोयाबीन मध्ये स्वादानुसार मीठ, लाल मिर्ची पावडर व इतर मसाले घालून एकत्र करावे. स्वादिष्ट सोयाबीन नमकीन खाण्यास तयार!

सोयाबीनचे पीठ :

- सोयाबीनला साफ करून कमीत कमी 20 मिनीट उकड़ावे.
- उरलेले पानी काढून सोयाबीन ला चांगल्या रितीने 2-3 दिवस उन्हात वाळवावे.

• अशाप्रकारे वाळलेल्या सोयाबीनचे पीठ बनवावे ज्यास 9 किलो गव्हाच्या पिठासोबत मिळवुन पोळया बनवन्यासाठि उपयोगात आणु शकतो. हया पीठाचा पोळया तसेच दुसरे सोयाबीन आधारित खाद्य पदार्थ बनविण्यासाठी उपयोगात आणले जाऊ शकते. किंवा 1 किलो सोयाबीनला 9 किलो. गहु / ज्वारी / बाजरी / मक्का सोबत मिळवुन पोळया बनविन्यासाठी चक्कीद्वारे दळून पीठ तयार करावे.

सोयाबीन पीठ आधारित खाद्य पदार्थ :

सोयाबीन पीठाचा उपयोग करून बेसन/मैदा आधारित खाद्य पदार्थ जसे, सोया सेंव, सोया चकली, शंकरपाळे, मीठाचे शंकरपाळे, सोया मठरी, सोया बिस्किट, सोया पापड़ इत्यादी बनविले जाऊ शकते. हे पदार्थ बनवताना बेसन/मैदयामध्ये 30 टक्क्यांपर्यत सोयाबीनचे पीठाचा वापर केला जाउ शकतो.

सोया दूध :

• सोयाबीन साफ करून समप्रमाणात पाणी घालून प्रेशर कुकर मध्ये उकडावे.

• 3 मि. नंतर प्रेशर कुकर ची वाफ काढून लगेच कुकर खोलावे. त्यानंतर सोयाबीनला थंड पाण्याणे धुऊन, 3-4 तास भिजू घालावे.

• भिजलेल्या सोयाबीनला गरम पाण्या सोबत (1:8 प्रमाणात) मिक्सर मध्ये वाटावे.

• वाटलेल्या सोयाबीनला 10 मिनिट उकडून गाळून घ्यावे. गाळलेल्या द्रावणास सोया दुध आणि वाचलेल्या अवशेषाला ओकारा म्हणतात, ज्याचा उपयोग करून ओकारा आधारित कित्येक पदार्थ बनविले जाऊ शकते.

• अशाप्रकारे सोया दूध बनवावे आणि थंड करून, आवडीचा इसेन्स घालून सुगंधीत सोया दूधाचा आस्वाद घेऊ शकता.

• 1 किलो सोयाबीन पासुन जवळपास 8 ते 10 लिटर दूध बनविले जाऊ शकते. हया दूधाचा उपयोग पनीर, दही, आणि श्रीखंड बनविण्यास केला जाऊ शकतो.

सोया पनीर (टोफू) :

• सोया दूधात (5 प्रतिशत) कैल्शियम क्लोराइड (डायहायड्रेट) चे द्रावण घालून दूधास फाडावे.

"सफलता का धनी बनने की कोशिश मत करो। बल्कि मूल्यवान व्यक्ति बनने की कोशिश करो।"
– अल्बर्ट आइंस्टीन

सोयाबीनमध्ये तण, कीट, रोग नियंत्रण, कापनी, मळणी आणि साठवणूक

डॉ बी.यू. दुपारे, डॉ राकेश कुमार वर्मा, डॉ. लोकेश कुमार मीणा, डॉ. संजीव कुमार,
डॉ. पुनम कुचलान आणि डॉ. के.एच.सिंह
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : soyextn@gmail.com

अमेरिकेतील आयातित सोयाबीन वानांची भारतीय हवामान क्षेत्रात चाचणी घेतल्या नंतर १९७० च्या दशका नंतर भारतात व्यावसायिक सोयाबीन लागवड यशस्वीरित्या सुरू झाली. वर्ष 1967 मध्ये भारतीय कृषी संशोधन परिषदेने (आयसीएआर) नवी दिल्ली येथील पुसा येथील भारतीय कृषी संशोधन संस्था आणि त्यानंतर गोविंद बल्लभ पंत कृषी आणि तंत्रज्ञान विद्यापीठ, पंतनगर येथे सुरू केलेल्या अखिल भारतीय समन्वित सोयाबीन संशोधन प्रकल्प केंद्राच्या स्थापने पाठोपाठ देशभरातील विविध राज्यांमध्ये अश्या प्रकारचे केन्द्रंची स्थापना करण्यात आली होती. या केन्द्रा द्वारे आज पर्यंत केल्या गेलेल्या संशोधन चाचण्या आणि विविधता सुधारणा कार्यक्रमांद्वारे असंख्य तंत्रज्ञान आणि कृषी पद्धती विकसित केल्या गेल्या आहेत. सोयाबीनच्या योग्य उत्पादनासाठी, प्रमुख कृषी पद्धती आणि पद्धती आठ टप्प्यांमध्ये विभागल्या आहेत आणि पेरणीपूर्वीचे पहिले चार टप्पे, त्यांचे महत्त्व आणि संबंधित माहिती या लेखात सादर केली आहे. या टप्प्यात सोयाबीन पिकामध्ये आर्थिक नुकसान करणारे मुख्य घटक तन, कीटक व रोग नियंत्रण बाबत चर्चा केलेली आहे.

अ. सोयाबीनमध्ये तण व्यवस्थापन

वेळेवर व्यवस्थापन नाही केल्यास, सोयाबीन उत्पादनातील विविध जैविक घटकांपैकी केवळ तणच 20-70 टक्के नुकसान करू शकतात तथापि, हे पिकाच्या टप्प्यावर, तणांचा प्रकार आणि त्यांची घनता/कालावधी यावर अवलंबून असते. पाणी, हवा, प्रकाश आणि पोषक तत्वांसाठी तण पिकाशी जोरदार स्पर्धा करतात. म्हणून, वेळेवर तण व्यवस्थापन ही एक महत्त्वाची कृषी पद्धत आहे. यासाठी यांत्रिक पद्धती किंवा योग्य कृषी पद्धती वापरल्या जाऊ शकतात. असेही आढळून आले आहे की तण पिकासाठी उपयुक्त असलेल्या पोषक तत्वांपैकी 20-50 % शोषून घेतात.

खरीप च्या हंगामात किंवा पावसावर अवलंबून असलेल्या सोयाबीन पिकांमध्ये दोन मुख्य प्रकारचे तण आढळतात: (अ) अरुंद पानांचे/एकदलयुक्त तण (बंडारा-बंडारी, लहान चिकिया, खेतपारा, दुब, भातभाजी, सांवा गवत, खेकडा गवत, कार्ना गवत, कानस, डायबांग, बोकना/कंकौआ, मकरा, पेरा गवत, मोथा, इ.) (ब) रुंद पानांचे तण: मोठे आणि लहान दूधी, जंगली राजगिरा, पांढरे कोंबडी, राममुनिया, कप्पी, हजारदाना, लहान आणि मोठे लुनिया, जंगली ताग आणि अंबाडी, भांगडा, ग्राउंडचेरी, सेसुलिया, इ.

तण व्यवस्थापनाच्या दृष्टिकोनातून पिकाचे सुरुवातीचे 45-60 दिवस महत्त्वाचे असल्याने, शेत तणमुक्त ठेवणे अत्यंत महत्वाचे आहे. यासाठी, पेरणीनंतर 20-40 दिवसांनी निंदाई किंवा बैल किंवा ट्रॅक्टरद्वारे डोरा/कुल्पा वापरून दोनदा हाताने तण काढणे फायदेशीर असल्याचे आढळून आले आहे. याव्यतिरिक्त, 20 दिवसांच्या कालावधीत आच्छादन (मल्चिंग) केल्याने तणांचे नियंत्रण होते आणि सेंद्रिय घटक टिकून राहतात. यामुळे जमिनीतील ओलावा देखील भरून निघतो आणि उपलब्ध ओलावा टिकून राहतो, ज्यामुळे सोयाबीनचे उत्पादन वाढते. तथापि, कधीकधी, विशेषतः काळी माती असलेल्या भागात, सतत पाऊस पडल्याने तण काढणे किंवा डोरा/कुल्पा वापरणे अशक्य होते. अशा परिस्थितीत, तणांमुळे होणाऱ्या संभाव्य नुकसानापासून पिकाचे संरक्षण करण्यासाठी रासायनिक तणनाशकांचा वापर केला जाऊ शकतो. हे करण्यासाठी, तुम्ही तुमच्या शेतात आढळणाऱ्या तणांच्या प्रकार आणि घनतेनुसार योग्य तणनाशकांची फवारणी करू शकता.

सोयाबीन पिकांसाठी शिफारस केलेले तणनाशक तीन प्रकारांमध्ये वर्गीकृत केले आहेत: (1) पेरणीपूर्वी उपयोगी तणनाशके, (2) पेरणीनंतर लगेच वापरले जाणारे तणनाशके आणि (3) उभ्या पिकात वापरले जाणारे तणनाशके. त्यांच्या वापराची वेळ, डोस आणि रासायनिक घटकांची माहिती (तक्ता 1) मध्ये दिली आहे. या तीन प्रकारच्या तणनाशकांपैकी फक्त एक निवडणे आणि ते तुमच्या शेतात वापरणे आणि दरवर्षी रासायनिक चक्राचे पालन करणे देखील महत्त्वाचे आहे. तुमच्या शेतात वापरल्या जाणाऱ्या तणनाशकांचा प्रकार (मोनोकोटायलेडोनस / डायकोटायलेडोनस) लक्षात घेण्यासारखे आहे. त्यानुसार तणनाशके निवडा. दोन्ही प्रकारचे तण आढळल्यास पूर्वमिश्रित तणनाशके देखील वापरली जाऊ शकतात.

तक्ता 1: सोयाबीन पिकासाठी शिफारसित तननशाकांची यादी

क्र.	तणनाशक	मात्रा (प्रति हेक्टेयर)
	अ. पेरनी पूर्व उपयोगी तणनाशक (PPI)	
1.	डायक्लोसुलम 0.9%+ पेण्डीमिथालीन 35%SE (22.5 + 875 सक्रीय तत्व/ha)	2.5 ली.
2.	पेण्डीमिथालीन 30%+इमेझेथापायर 2% EC	2.5-3.0 ली.
3.	फ्लूक्लोरलिन 45% EC	2.22-3.33 ली.
	ब. पेरनी नंतर लगेच वापरले जाणारे किंवा अंकुरण पूर्व उपयोगी तणनाशक (PE)	
4.	डायक्लोसुलम 0.9%+ पेण्डीमिथालीन 35%SE (22.5 + 875 ai/ha)	2.5 ली.
5.	डायक्लोसुलम 84 डब्ल्यू.डी.जी.	26 ग्राम
6.	सल्फेन्ट्राझोन 39.6 एस.सी.	0.75 ली.
7.	क्लोमोझोन 50 ई.सी.	1.50 - 2.00 ली.
8.	पेण्डीमिथालीन 30 ई.सी.	2.50-3.30 ली.
9.	पेण्डीमिथालीन 38.7 सी.एस.	1.50-1.75 कि.ग्रा.
10.	फ्लूमिआक्साझिन 50 एस.सी.	0.25 ली.
11.	मेट्रीब्युझिन 70 डब्ल्यू.पी.	0.75-1.00 कि.ग्रा.
12.	सल्फेन्ट्राझोन+क्लोमोझोन	1.25 ली.
13.	पायरोक्सासल्फोन 85 डब्ल्यू.जी.	150 ग्रा.
14.	मेटालोक्लोर 50 ई.सी.	2.00 ली.
	स. उभ्या पिकात वापरले जाणारे तणनाशके	
	पेरनीच्या 10 -12 दिवसानंतर उपयोगी (POE)	
15.	क्लोरीम्यूरान इथाईल 25 डब्ल्यू.पी. +सर्फेक्टेन्ट	36 ग्राम
16.	बेन्टाझोन 480 एस.एल.	2.00 ली.
	पेरनीच्या 15 - 20 दिवसानंतर उपयोगी (POE)	
17.	इमेझेथापायर 10 एस.एल.	1.00 ली.
18.	इमेझेथापायर 70% डब्ल्यू.जी+सर्फेक्टेन्ट	100 ग्रा.
19.	क्विजालोफाप इथाईल 5 ई.सी.	0.75-1.00 ली.
20.	क्विजालोफाप-पी-इथाईल 10 ई.सी.	375-450 मि.ली.
21.	फेनाक्सीफाप-पी- इथाईल 9.3 ई.सी. (9% w/v)	1.11 ली.
22.	क्विजालोफाप-पी-टेफ्युरिल 4.41 ई.सी.	0.75- 1.00 ली.
23.	फ्ल्यूआजीफॉप-पी-ब्युटाईल 13.4 ई.सी.	1.00-2.00 ली.
24.	हेलाक्सिफॉप आर मिथाईल 10.5 ई.सी.	1.0-1.25 ली.
25.	प्रोपाक्विजाफॉप 10 ई.सी.	0.50-0.75 ली.
26.	क्लेथोडियम 25% w/w (240 g/L) ई.सी	0.50 -0.75 ली.
27.	फ्लूथियासेट मिथाईल 10.3 ई.सी.	125 मि.ली.
	स. पेरनीच्या 15 - 20 दिवसानंतर उपयोगी पूर्वमिश्रित तणनाशक	
28.	फ्लूआजिआफॉप-पी-ब्युटाईल11.1% w/w +फोमेसाफेन 11.1% w/w SL	1.00 ली.
29.	इमाझेथापायर 35%+इमेजामॉक्स 35% WG	100 ग्रा.
30.	प्रोपाक्विजाफॉप 2.5% +इमाझेथापायर 3.75% w/w ME	2.00 ली.
31.	सोडियम एसीफ्लोरफेन 16.5% +क्लोडिनाफाप प्रोपारगील 8% EC	1.00 ली.
32.	फोमेसाफेन 12 %+ क्विजालोफाप इथाईल 3% w/w SC	1.50 ली.

क्र.	तणनाशक	मात्रा (प्रति हेक्टेयर)
33.	फोमेसाफेन 12.5% + क्विजालोफाप इथाईल 4.68% EC	1.00 ली.
34.	क्विजालोफाप इथाईल 10% EC + क्लोरीम्यूरान इथाईल 25% WP + सर्फेक्टेन्ट (0.2)	
	(Herbicide) (Twin pack)	375 मिली+36 ग्रा.+0.2%
35.	हेलाक्सिफॉप आर मिथाईल 12.8 % + इमाझेथापायर 10% (w/w) ME	0.825 ली.
36.	फोमेसाफेन 12.5% + फेनाक्सीफाप-पी- इथाईल 10%+ क्लोरीम्यूरान इथाईल 0.9% ME	
	(125 + 100 + 9 ai./ha)	1.00 ली.
37.	फ्लूथियासेट मिथाईल 2.5% + क्विजालोफाप इथाईल 10% EC	0.50 ली.
38.	क्विजालोफाप इथाईल 7.5% + इमाझेथापायर 15% w/w EC	0.50 ली.
39.	फेनाक्सीफाप-पी- इथाईल 6%+ क्लोरीम्यूरान इथाईल 0.9% + इमाझेथापायर 10% SC	1.00 ली.

ब. सोयाबीनवरील प्रमुख कीटक आणि त्यांचे व्यवस्थापन

1. तंबाखू अळी (स्पोडोप्टेरा लिटुरा)

गेल्या काही वर्षांत सोयाबीन पिकांमध्ये तंबाखू अळी चा प्रादुर्भाव वारंवार दिसून आला आहे, ज्यामुळे सोयाबीन उत्पादनात आर्थिक नुकसान वाढले आहे. अनेक पिकांवर वाढण्याची क्षमता, तसेच मोठ्या प्रमाणात अंडी घालण्याची क्षमता आणि सामान्यतः वापरल्या जाणाऱ्या कीटकनाशका विरोधात प्रतिकार शक्ति असल्यामुळे, शेतकऱ्यांनी या किडीच्या व्यवस्थापनासाठी खालील पद्धतींचा वापर करावा.

- फ़क्त शिफरासित वानांची शेती करावी.
- आपल्या शेतात वेगवेगळ्या 4-5 ठिकाणी तंबाखू अळी आकर्षक विशेष फेरोमोन सापळे लावा. फेरोमोन सापळे लावताना स्वच्छ कापडाचा वापर करावा.
- पक्ष्यांना तंबाखू अळ्या खाण्यास सोयीसाठी शेतात 8-10 ठिकाणी पक्ष्यांसाठी बसण्याची व्यवस्था करावी.
- तुमच्या शेताचे नियमितपणे निरीक्षण करा आणि तंबाखू अळीच्या प्रादुर्भावाच्या सुरुवातीच्या टप्प्यात झाडांवर/पानांवर अळ्याचे थवे दिसताच नष्ट करावे.
- सुरुवातीच्या काळात अळ्याच्या जैविक नियंत्रणासाठी, SLNPV 250 LE/हेक्टर किंवा बॅसिलस थुरिंगिएन्सिस/ब्यूवेरिया बॅसियाना 1 लिटर/हेक्टर या प्रमाणात फवारणी करा.
- गरजेनुसार, शिफारस केलेल्या कीटकनाशकाची प्रति हेक्टर 500 लिटर पाण्यात मिसळून फवारणी करा.

2. हिरवे सेमीलूपर सुरवंट हिरवी सेमीलूपर अळी

सोयाबीन पिकांमध्ये वेगवेगळ्या रंगाच्या किंवा आकाराच्या चार प्रकारच्या हिरव्या अळ्या आढळून येतात. सुरुवातीच्या काळात, या अळ्या पानांना छिद्र पाडतात, पाने पूर्णपणे जाळीदार करतात, ज्यामुळे सोयाबीन उत्पादनात लक्षणीय घट होते. गंभीर प्रादुर्भावात, कळ्या, फुले आणि शेंगा प्रभावित होतात, ज्यामुळे वंध्यत्व नावाची स्थिती निर्माण होते. कमी पाऊस, जास्त आर्द्रता आणि उच्च तापमान असलेल्या हवामानात या अळ्या जास्त नुकसान करतात. हे टाळण्यासाठी, खालील प्रतिबंधात्मक उपायांची शिफारस केली जाते.

- योग्य बियाणे दर व झाडांची संख्या असावी.
- नायट्रोजनयुक्त खते फक्त शिफारस केलेल्या प्रमाणात वापरा. जास्त प्रमाणात वापरल्याने अळ्याचा प्रादुर्भाव वाढतो.
- पक्ष्यांना अळ्या खाण्यास मदत व्हावी म्हणून, त्यांना तुमच्या शेतात 8-10 ठिकाणी त्यांच्या बसण्याची व्यवस्था करावी.
- तुमच्या शेताचे नियमितपणे निरीक्षण करा आणि अळ्याच्या आणि प्रादुर्भावाच्या अगदी सुरुवातीलाच अळ्या/अंडी नष्ट करा.
- सुरुवातीच्या टप्प्यात सुरवंटांच्या जैविक नियंत्रणासाठी, बॅसिलस थुरिंगिएन्सिस/ब्यूवेरिया बॅसियाना प्रति हेक्टर 1 लिटर किंवा 1 किलो या दराने फवारणी करा.
- ज्या शेतात दरवर्षी सेमीलूपर अळ्याचा प्रादुर्भाव होतो, तेथे सोयाबीन फुलोऱ्याच्या 4-5 दिवस आधी क्लोराँट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी (150 मिली./हेक्टर) कीटकनाशकाची फवारणी करा.
- जर हे शक्य नसेल, तर आवश्यकतेनुसार प्रति हेक्टर 500 लिटर पाण्यात मिसळून शिफारस केलेल्या कीटकनाशकाची पिकावर फवारणी करा.

3. चन्याची अळी (हेलिओथिस आर्मिजेरा)

गेल्या काही वर्षांत, सोयाबीन पिकांमध्ये तंबाखूच्या अळी सोबत हेलिओथिस अळीचा एकाच वेळी प्रादुर्भाव वारंवार दिसून आला आहे, ज्यामुळे सोयाबीन उत्पादनात आर्थिक नुकसान झाले आहे.

अनेक पिकांवर वाढण्याची क्षमता, उच्च अंडी देण्याची क्षमता आणि सामान्यतः वापरल्या जाणाऱ्या कीटकनाशकांना प्रतिकारशक्ति असल्यामुळे, शेतकऱ्यांना या अळीचे व्यवस्थापन करण्यासाठी खालील उपाय योजना करावी.

- योग्य बियाणे दर व झाडांची संख्या असावी.
- पक्ष्यांना अळ्या खाण्यास मदत व्हावी म्हणून, त्यांना तुमच्या शेतात 8-10 ठिकाणी त्यांच्या बसण्याची व्यवस्था करावी.
- तुमच्या शेताचे नियमितपणे निरीक्षण करा आणि अळ्याच्या आणि प्रादुर्भावाच्या अगदी सुरुवातीलाच अळ्या/अंडी नष्ट करा
- शेतात 4-5 ठिकाणी या अळ्या आकर्षित करण्यासाठी विशेष फेरोमोन सापळे बसवा. फेरोमोन सापळे लावताना स्वच्छ कापडाचा वापर करा.
- सुरुवातीच्या टप्प्यात अळीच्या जैविक नियंत्रणासाठी, 250 एलई/हेक्टर दराने एच.ए.एन.पी.व्ही. किंवा 1 लिटर/हेक्टर दराने बॅसिलस थुरिंगिएन्सिस/ब्यूवेरिया बॅसियाना फवारणी करा.
- अलिकडच्या वर्षांत, या अळ्या सोयाबीनच्या फुलांवर खाताना आढळले आहेत. म्हणून, फुलधारणेच्या अवस्थेतही, शिफारस केलेल्या कीटकनाशकांची प्रति हेक्टर 500 लिटर पाण्यात मिसळून फवारणी करा.

4. चक्री भुंगा (गर्डल बीटल)

हा सोयाबीनचा एक प्रमुख कीटक आहे. पीक 25 दिवसांचे झाल्यानंतर याची लक्षणे सामान्यतः दिसून येतात. ही एक जटिल जीवनचक्र असलेली कीट आहे. जुलै-ऑगस्टच्या पहिल्या पंधरवड्यात पिकावर अंडी घातल्या पासून या कीटकाचे संपूर्ण जीवनचक्र पिकावर असते. तथापि, ऑगस्ट-सप्टेंबरमध्ये त्याने घातलेली अंडी पुढील पावसाळ्यापर्यंत जीवंत असते. या प्रादुर्भावाचे सर्वात सोपे लक्षण म्हणजे मादीने अंडी घालण्यासाठी छिद्रे करून पाने सुकणे आणि लटकणे. शेतकऱ्यांना याच्या व्यवस्थापनासाठी खालील उपाय योजना करावी

- शिफारस केलेले बियाणे दर आणि योग्य झाडांची संख्या ठेवावी अन्यथा, गर्डल बीटलचा प्रादुर्भाव वाढेल आणि आर्थिक नुकसान वाढेल.
- शक्य असल्यास, शेताच्या आजूबाजूला ढेंचा नावाचे ग्रीन मेनुअर पीक लावा, जे गर्डल बीटल ला आकर्षित करते आणि सोयाबीन पिकांमध्ये त्यांचा प्रादुर्भाव कमी करण्यास मदत करते.
- तुमच्या शेतात गर्डल बीटलचा प्रादुर्भाव दिसून येताच, प्रादुर्भावित पाने फाडून नष्ट करा किंवा जाळून टाका.
- जर प्रादुर्भाव कायम राहिला तर, शिफारस केलेले कीटकनाशक प्रति हेक्टर 500 लिटर पाण्यात मिसळून पिकावर फवारणी करा.

5. खोडमाशी

ही कीटक जवळजवळ सर्व सोयाबीन उत्पादक क्षेत्रांमध्ये पिकांवर दिसून येते. हिची प्रौढ माशी सामान्य घरमाशीसारखीच असते, परंतु आकाराने सुमारे 2 मिमी आणि चमकदार काळी असते. ती पाकळ्या किंवा पानांच्या आत अंडी घालते. अंड्यातून बाहेर पडणारी लहान अळी या किडीचा सर्वात हानिकारक टप्पा आहे. पूर्ण विकसित अळी फिकट पिवळा रंगाची आणि अंदाजे 3-4 मिमी लांब असते. ती पानांच्या नसांमधून खोडात वाकडे बोगदे खोदून खातात. अश्या प्रकारच्या प्रादुर्भावामुळे उगवणानंतर 7-10 दिवसांत, जेव्हा प्रभावित झाडे पूर्णपणे सुकतात, तेव्हा सर्वात जास्त नुकसान होते. यामुळे शेतात झाडांची संख्या कमी होते आणि उत्पादन कमी होते. खोडमाशी सोयाबीन पिकावर 4-5 पिढ्या घालवतात. पिकाच्या शेवटच्या टप्प्यात प्रादुर्भाव झाला तर झाड मरत नाही, परंतु खोडातील बोगद्यामुळे शेंगांची संख्या आणि दान्यांचे वजन कमी होते. काही सोयाबीनमध्ये, दाने अजिबात विकसित होत नाही. आयुष्यमान (अंदाजे 10-12 दिवस) पूर्ण करण्यापूर्वी, या अळीचा वयस्क खोडात बाहेर पडण्याचे छिद्र तयार करते आणि नंतर अळीत रूपांतरित होतो. काही दिवसांनी, अळी छिद्रातून बाहेर पडतो आणि पुन्हा त्याचे जीवनचक्र सुरू करत असते.

६. बिहार केसाळ सुरवंट

या प्रौढ अळीचे पंख फिकट पिवळे असतात ज्यात असंख्य काळे ठिपके असतात आणि पोट गुलाबी असते. ह्या अळीचा सुरुवातीला मंद पिवळा असतो, नंतर लालसर तपकिरी होतो. तरुण अळ्या पानांच्या खालच्या बाजूस असलेल्या क्लोरोफिलवर एकत्रितपणे खातात, ज्यामुळे ते तपकिरी-पिवळे दिसतात. त्यांच्या शेवटच्या टप्प्यात, अळ्या कडांवरील पानांवर खातात. खराब झालेले पाने सांगाड्यासारखे/जाळीदार दिसतात. व्यवस्थापनासाठी खालील उपाययोजना एकात्मिक पद्धतीने राबवाव्यात:

- अळ्या एकासोबत 600-700 अंडी घालतात तेव्हा अंडी गोळा करणे आणि नष्ट करणे लाभदायक असते.
- कीड़ीची संख्या कमी करण्यासाठी आणि संक्रमित वनस्पतींचे भाग काढून नष्ट करावे.
- मान्सूनपूर्व पेरणी टाळावी, कारण पहिल्या मान्सूनपूर्व पावसानंतर लगेचच अळ्या बाहेर पडतात.
- अळ्यांना आश्रय देणारी पर्यायी झाडे आणि तण काढून टाकावेत. अळ्यांना आकर्षित करण्यासाठी आणि मारण्यासाठी शेताच्या सीमेवर चवळी, जट्रोफा किंवा कॅलोट्रोपिस सारखी आकर्षक पिके वापरा.

- प्रौढांना पकडण्यासाठी प्रति हेक्टर एक प्रकाश सापळा (200 वॅट बल्ब) वापरा.
- बॅसिलस थुरिंगिएन्सिस/ब्यूवेरिया बॅसियाना 1 किलो/हेक्टर या दराने वापरा.
- कोळी, शिकार करणारे मॅन्टिसेस, हिरवे लेसविंग्ज, डॅमसेल फ्लाय/ड्रॅगन फ्लाय, शील्ड बग्स, लेडीबर्ड बीटल, ग्राउंड बीटल, ब्रॅकोनिड्स, ट्रायकोग्रामॅटिड्स, हिरवे मस्कर्डिन फंगस इत्यादी जैविक नियंत्रण घटकांचे संवर्धन करा.
- या उपाययोजना करूनही जर संख्या अनियंत्रित राहिली तर सोयाबीन पिकांसाठी शिफारस केलेले कीटकनाशके (तक्ता 2) 500 लिटर पाण्यात मिसळून वापरा.

तक्ता 1: सोयाबीन पिकासाठी शिफारसित तननशाकांची यादी

क्र.	कीटनाशक	कीट	मात्रा/हे.
1	थायामिथोक्सम 30 एफ.एस. (बीजोपचार हेत)	शूट फ्लाई (खोडमाशी)	10 मिली/किग्रा. बीज
2	थायामिथोक्सम 30 % WS (बीज प्रक्रिया साठी)	जासीड खोडमाशी, चक्री भुंगा, पांढरी माशी	4 मिली/किग्रा. बीज 6 मिली/किग्रा. बीज
3	क्लोरफेनापायर 240 g/L SC	हिरवी सेमीलूपर अळी एवं तम्बाकू अळी	500 मि.ली.
4	क्लोरफ्लूआजुरोन 05.40 % EC	चन्या ची अळी, तम्बाकू अळी	500 मि.ली.
5	बायफेंथ्रिन 32 % + क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 12% WG	पांढरी माशी, खोडमाशी, हिरवी सेमीलूपर अळी	250 ग्रा
6	पाय्रिप्रोक्सिफेन 10 % + बायफेंथ्रिन 10 % w/w EC	पांढरी माशी	1ली.
7	एसिटामिप्रिड 25% + बाय्फेन्थ्रिन 25 % WG	पांढरी माशी , चक्री भुंगा, हिरवी सेमीलूपर अळी व तम्बाकू अळी	250 ग्रा.
8	ब्रोफ्लानिलाइड 300 एस.सी.	चन्या ची अळी, तम्बाकू अळी हिरवी सेमीलूपर अळी	42-62 ग्राम
9	क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 18.5 एस.सी	हिरवी सेमीलूपर अळी, खोडमाशी व चक्री भुंगा	150 मिली
10	क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 47.85 % w/w SC	हिरवी सेमीलूपर अळी तम्बाकू अळी, खोडमाशी व चक्री भुंगा	500 मि.ली.
11	इमामेक्टिन बेंजोएट 01.90 ई.सी.	हिरवी सेमीलूपर अळी, फली छेदक, चक्री भुंगा व तम्बाकू अळी	425 मि.ली.
12	ईथिओन 50 ईसी.	चक्री भुंगा व खोडमाशी	1500 मि.ली.
13	फ्लूबेंडियामाइड 20 डब्ल्यू.जी.	तम्बाकू अळी व हिरवी सेमीलूपर अळी	250-300 ग्रा.
14	फ्लूबेंडियामाइड 39.35 एस.सी	पर्णभक्षी अळ्या	150 मि.ली.
15	इमिडाक्लोप्रिड 48 एफ.एस.	जासिड	125 मि.ली.
16	इंडोक्साकार्ब 15.8 ई.सी.	हिरवी सेमीलूपर अळी, चन्याची अळी व खोडमाशी	333 मि.ली.
17	इंडोक्साकार्ब 14.50 SC	तम्बाकू अळी	333 मि.ली.
18	आइसोसायक्लोसेरम 9.2% W/W Dc (10% W/V) DC	लीफ वर्म, हिरवी सेमीलूपर अळी, चक्री भुंगा, व खोडमाशी	600 मि.ली.
19	लैम्बडा सायहेलोथ्रिन 04.90 सी.एस.	खोडमाशी, हिरवी सेमीलूपर अळी	300 मि.ली.
20	प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी.	हिरवी सेमीलूपर अळी व चक्री भुंगा	1 ली.
21	क्विनालफॉस 25 ई.सी.	लीफ वीविल	1 ली.
22	क्विनालफॉस 01.50 डी.पी.	पोड बोरर	250 ग्राम
23	स्पायनेटोरम 11.7 एस.सी	तम्बाकू अळी	450 मि.ली.
24	टेट्रानिलिप्रोल 18.18 एस.सी.	चक्री भुंगा, हिरवी सेमीलूपर अळी, तम्बाकू अळी	250-300 मि.ली.
25	थायक्लोप्रिड 21.7 एस.सी.	चक्री भुंगा	750 मि.ली.
26	बीटासायफ्लुथ्रिन 08.49 %+इमिडाक्लोप्रिड 19.81 % w/w ओ.डी.	चक्री भुंगा, हिरवी सेमीलूपर अळी	350 मि.ली.
27	कार्टाप हायड्रोक्लोराइड 04 %+ फिप्रोंनिल 00.50 % CG	लीफ वर्म, चक्री भुंगा, हिरवी सेमीलूपर अळी, खोडमाशी	500 मि.ली.
28	क्लोरएन्ट्रानिलिप्रोल 09.30 %+लैम्बडा सायहेलोथ्रिन 04.60 % जेड.सी.	लीफ वर्म, चक्री भुंगा, हिरवी सेमीलूपर अळी, खोडमाशी	200 मि.ली.
29	नोवाल्युरोन + इन्डोक्साकार्ब एस.सी.	हिरवी सेमीलूपर अळी, तम्बाकू अळी चन्याची अळी	825-875 मि.ली.
30	थायमिथोक्सम 12.60 % +लैम्बडा सायहेलोथ्रिन 09.50 % जेड.सी.	खोडमाशी, हिरवी सेमीलूपर अळी, , चक्री भुंगा,	125 मि.ली.
31	कार्बोफ्यूरान 03 % सी.जी	रूट नोट नीमाटोड	1500 ग्राम
32	फ्लोकुमफेन 0.005% Block Bait (Strom)	उंदीर	15-20 बेट

स. सोयाबीनचे प्रमुख रोग आणि त्यांचे व्यवस्थापन

कोळशाचे कुजणे

हा रोग मॅक्रोफोमिना फेसोलिना नावाच्या बुरशीमुळे होतो, ज्यामुळे मुळ कुजतात आणि खोड जळते. संसर्ग सामान्यतः तरुण रोपांवर आणि पिकाच्या सुरुवातीच्या टप्प्यात होतो. कमी आर्द्रता आणि 30 ते 40 अंश सेल्सिअस तापमान इष्टतम असते. दुष्काळी परिस्थितीत, फुले येताना आणि शेंगा परिपक्व होण्याच्या दरम्यान लक्षणे दिसून येतात, ज्यामुळे सोयाबीन उत्पादनाच्या 77% पर्यंत नुकसान होते. झाडांची जास्त संख्या आणि असंतुलित पोषक/खतांच्या उपयोग मुळे या रोगाची तीव्रता वाढते. याचे संक्रमण रोगजनक माती आणि बियाण्यांमुळे होतो. संक्रमित झाडांना लहान पाने असतात आणि जर त्वरित नियंत्रण केले नाही तर पाने पिवळी आणि नंतर तपकिरी होतात, ज्यामुळे झाडे मरतात. फाटलेल्या देठाच्या खालच्या पृष्ठभागावर आणि मुळांवर असंख्य काळे फोड दिसतात. रोगग्रस्त देठ आणि मुळांच्या भागांचे बाह्य आवरण काढून टाकल्याने, असंख्य लहान, काळे स्क्लेरोटिया दिसतात, ज्यामुळे देठ काळे होतात, जे या रोगाचे एक प्रमुख लक्षण आहे.

2. अँथ्रॅकनोज आणि शेंगदाण्याचा करपा

हा रोग कोलेटोट्रिचम ट्रंकॅटम नावाच्या बुरशीमुळे होतो आणि जेव्हा सतत पाऊस पडतो आणि जास्त आर्द्रता असते तेव्हा तो अधिक गंभीर होतो. या रोगाचे जीवाणु बियाणे, माती आणि संक्रमित झाडांच्या अवशेषांमध्ये टिकून राहते. परिणामी बियांच्या कोटिलेडॉनवर गडद तपकिरी ठिपके येतात. हा रोग पिकाच्या सर्व टप्प्यांवर दिसू शकतो, परंतु त्याची लक्षणे सामान्यतः दाने भरण्याच्या वेळी देठ आणि शेंगांवर विविध आकाराचे पिवळे आणि गडद तपकिरी ठिपके म्हणून दिसून येतात. हे ठिपके नंतर काळ्या बुरशीजन्य रचनांनी झाकलेले असतात, ज्यामुळे त्या उघड्या डोळ्यांना दिसतात. पानांच्या खालच्या बाजूच्या शिरा पिवळ्या होणे, पाने कुरळे होणे आणि गळणे ही देखील या रोगाची लक्षणे आहेत. संसर्गामुळे शेंगांवर लहान तपकिरी ठिपके पडतात, ज्यामुळे नंतर शेंगा पिवळ्या तपकिरी होतात, ज्यामुळे दाने आकुंचन पावतात, योग्य नसतात. कधीकधी, पाने हिरवी असतानाही, शेंगा तपकिरी होण्याची चिन्हे दिसतात.

3. रायझोक्टोनिया एरियल ब्लाइट/वेब ब्लाइट

हा रोग रायझोक्टोनिया सोलानी नावाच्या बुरशीमुळे होतो. उष्ण आणि दमट वातावरण या रोगास अनुकूल आहे. हा माती आणि बियाण्यांमधून होणारा रोग आहे आणि सर्व प्रदेशात आढळतो, परंतु मध्य प्रदेश आणि उत्तरांचलमध्ये त्याची तीव्रता जास्त आहे.

या रोगाचे लक्षण-लहान किंवा मोठे राखाडी-तपकिरी ते लाल-तपकिरी ठिपके प्रथम खालच्या पानांवर दिसतात, जे नंतर गडद तपकिरी होतात. कधीकधी, पाने देखील गळून पडतात, ज्यामुळे देठांवर उघडे देठ राहतात. देठांवर, देठांवर आणि शेंगांवर अंडाकृती ते किंचित लांब डाग तयार होतात, ज्यामुळे गडद तपकिरी स्क्लेरोटिया तयार होतो. शेंगांमधून बियाण्यांवर हलके तपकिरी बुडलेले डाग देखील तयार होतात.

व्यवस्थापन :

- 3-4 वर्षातून एकदा उन्हाळ्यात शेताची खोल नांगरणी करावी
- पेरनी च्या आधी बियाण्यांवर ॲझोक्सीस्ट्रोबिन २.५% + थायोफेनेट मिथाइल ११.२५% + थायामेथोक्साम २५% एफएस १० मिली/किलो बियाणे किंवा कार्बोक्सीन ३७.५% + थायरम ३७.५% (@ २-३ ग्रॅम) किंवा ट्रायकोडर्मा विरिडी (८-१० ग्रॅम) किंवा पेनफ्लुफेन + ट्रायफ्लॉक्सीस्ट्रोबिन ३८ एफएस (८-१० मिली/हेक्टर) प्रति किलो बियाणे या प्रमाणात प्रक्रिया करावी.
- प्रभावित झाडे उपटून जाळा किंवा खड्ड्यात गाडून टाकावी.
- जर झाडांची संख्या जास्त असेल तर जास्तीची झाडे उपटून टाकावे.

4. कॉलर रॉट

हा रोग स्क्लेरोटियम रोल्फसी नावाच्या बुरशीमुळे होतो. उबदार आणि दमट वातावरण या रोगाला अनुकूल आहे. त्यामुळे 30-40 टक्क्यांपर्यंत उत्पादनात घट होऊ शकते. हा रोग मुळ कुजणे आणि मरणे या स्वरूपात दिसून येतो. तरुण रोपे कमकुवत होतात आणि मरतात. जमिनीजवळ असलेल्या देठाचा खालचा भाग बुरशीच्या पांढऱ्या मायसेलियमने झाकलेला असतो. यामध्ये लाल-तपकिरी, मोहरीच्या बियांच्या आकाराचा, गोल स्क्लेरोटिया त्यावर तयार होतो, जो या रोगाचे मुख्य लक्षण आहे. देठाचा हा भाग नंतर कुजतो, ज्यामुळे वनस्पती कोमेजते आणि पडते. पेरणीच्या वेळी शिफारस केलेल्या बुरशीनाशकांनी बियाण्यांवर प्रक्रिया करून हा रोग रोखता येतो.

5 यलो मोझॅक विषाणू

हा रोग मध्य भारतात मूग बीन यलो मोझॅक इंडिया विषाणू आणि दक्षिण भारतात मूग बीन यलो मोझॅक विषाणूच्या संसर्गामुळे होतो. सुरुवातीला सोयाबीनच्या पानांवर पिवळे डाग दिसतात. हा पिवळापणा हळूहळू पसरतो आणि पाने आकुंचन पावतात आणि वाकडी होतात. बाधित झाडे उशिरा आणि खूप कमी शेंगा आणि बिया तयार करतात. या रोगाचे मुख्य लक्षण म्हणजे पानांवर पिवळ्या-हिरव्या मोझॅकची निर्मिती. या संसर्गामुळे तेलाचे उत्पादन देखील कमी

होते. हा विषाणू बेमिसिया टॅबासी नावाच्या पांढऱ्या माशीमुळे पसरतो. या रोगापासून बचाव करण्यासाठी, रोग-प्रतिरोधक वाणांचा अवलंब करा. किंवा, पेरणीच्या वेळी थायामेथोक्साम (30 डब्ल्यूएएस 10 मिली/किलो बियाणे) किंवा इमिडाक्लोप्रिड 48 एफएस (1.25 मिली/किलो बियाणे) या प्रमाणात बियाण्याची प्रक्रिया करा. ज्या भागात हा रोग सलग अनेक वर्षांपासून होत आहे, तेथे पांढऱ्या माशीचा प्रादुर्भाव सुरुवातीच्या टप्प्यात रोखण्यासाठी फ्लुनिकॅमिड 50% तुमच्या शेतात लावा.

कापनी आणि मळणी

सोयाबीन पिकांची कापणी योग्य वेळी करावी. यामुळे शेंगा फुटल्यावर धान्य पसरल्याने होणारे नुकसान कमी होते. सोयाबीनच्या शेंगा भरताना किंवा परिपक्वतेदरम्यान सतत पाऊस पडल्याने सोयाबीनची गुणवत्ता कमी होऊ शकते किंवा शेंगा फुटू शकतात. शेंगा फुटल्याने किंवा अंकुर फुटल्यामुळे बियाण्याच्या गुणवत्तेत घट झाल्यामुळे होणारे नुकसान टाळण्यासाठी योग्य वेळी पीक काढणे उचित आहे. म्हणून, 90 टक्के शेंगा पिवळ्या झाल्यावर (जेव्हा शेंगांमध्ये 14-16 टक्के ओलावा असतो) कापणी करा, त्यांना उन्हात वाळवा आणि मळणी करावी. मळणी दरम्यान सोयाबीनची गुणवत्ता राखण्यासाठी, थ्रेशर मंद गतीने (350-400 आरपीएम) चालवण्याची शिफारस केली जाते.

साठवणूक

कापनीला उशीर झाल्यास, पिकाचे पावसापासून संरक्षण करण्यासाठी सुरक्षित ठिकाणी साठवणे उचित आहे. साठवणीदरम्यान बुरशीजन्य रोगांचा संसर्ग टाळण्यासाठी, कापणीनंतर, बियाणे 3 ते 4 दिवस (जेव्हा सोयाबीनच्या दाण्यांमध्ये ओलावा 10 टक्क्यांपर्यंत असतो) उन्हात पूर्णपणे वाळवावे. साठवणूक कक्ष थंड, हवेशीर, कीटक आणि ओलावामुक्त असावा. शक्य असल्यास, सोयाबीनच्या पिशव्या उभ्या ठेवण्यासाठी साठवणूक कक्षेत लाकडी प्लॅटफॉर्म उभे करा. जर पिशव्या साठवून ठेवत असाल तर, प्लॅटफॉर्म 4-5 पिशव्यांपेक्षा जास्त किंवा ५ फूट उंचीपर्यंत नसावेत जेणेकरून सोयाबीनच्या उगवणीवर परिणाम होणार नाही याची खात्री करा. साठवणूक करताना, सोयाबीनच्या पिशव्या काळजीपूर्वक प्लॅटफॉर्मवर ठेवाव्या आणि त्या उंचीवरून फेकू नये. साठवणूक गृहाच्या भिंतींमध्ये ओलावा असल्यास बुरशीजन्य/रोगाच्या संसर्गापासून सोयाबीन बियाणे वाचवण्यासाठी, पिशव्या भिंतींच्या थेट संपर्कात येणार नाहीत याची देखील खात्री करा.

"एक समय में एक काम करो,
और ऐसा करते समय अपनी पूरी आत्मा उसमें डाल दो।"
— स्वामी विवेकानंद

कृषि उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धन: संकल्पना, गरज आणि क्षमता

मराठी

पूर्णिमा लांडे, युवा पेशेवर
भा.कृ.अनु.प.- राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर, मध्य प्रदेश, 452001
संवादी लेखक का ई-मेल : poornima.lande@gmail.com

भारत हा एक कृषीप्रधान देश आहे जिथे मोठ्या संख्येने लोक त्यांच्या उपजीविकेसाठी शेतीवर अवलंबून आहेत. पारंपारिकपणे, शेतकरी त्यांचे उत्पादन कच्च्या स्वरूपात विकतात, ज्यामुळे त्यांना तुलनेने कमी नफा मिळतो. आज, कृषी क्षेत्राच्या विकासासाठी आणि शेतकऱ्यांचे उत्पन्न वाढवण्यासाठी, केवळ उत्पादन वाढवणे पुरेसे नाही; तर कृषी उत्पादनांचा अधिक चांगल्या प्रकारे वापर करणे आणि त्यापासून अधिक आर्थिक फायदे मिळवणे देखील आवश्यक आहे.

या संदर्भात, कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धनाची संकल्पना अत्यंत महत्त्वाची बनते. मूल्यवर्धन कोणत्याही कच्च्या कृषी उत्पादनाचे प्रक्रिया, पॅकेजिंग, जतन आणि विपणनाद्वारे अधिक उपयुक्त आणि मौल्यवान उत्पादनात रूपांतर करते. यामुळे केवळ उत्पादनाचे बाजार मूल्य वाढत नाही तर ग्राहकांना चांगल्या दर्जाचे उत्पादन देखील मिळते.

1. मूल्यवर्धनाची संकल्पना

मूल्यवर्धन म्हणजे विविध तंत्रांद्वारे कच्च्या कृषी उत्पादनाचे रूपांतर अशा प्रकारे करण्याची प्रक्रिया ज्यामुळे त्याची उपयुक्तता, गुणवत्ता आणि बाजार मूल्य वाढते.

सोप्या भाषेत सांगायचे तर, जेव्हा एखाद्या उत्पादनाचे प्रक्रिया किंवा परिवर्तनाद्वारे रूपांतर केले जाते आणि त्याचे आर्थिक मूल्य वाढते तेव्हा या प्रक्रियेला मूल्यवर्धन म्हणतात.

उदाहरणार्थ:

- गव्हापासून पीठ, ब्रेड आणि बिस्किटे बनवणे
- दुधापासून दही, चीज आणि तूप बनवणे
- फळांपासून जॅम, जेली आणि ज्यूस बनवणे
- सोयाबीनपासून सोया दूध, सोया चीज (टोफू) आणि सोया नगेट्स बनवणे

या

सर्व उदाहरणांमध्ये, कच्च्या उत्पादनाचे प्रक्रियेद्वारे नवीन उत्पादनात रूपांतर होते, ज्यामुळे त्याचे मूल्य अनेक पटींनी वाढते.

2. मूल्यवर्धनाची गरज

कृषी आणि अन्न प्रक्रिया क्षेत्रात मूल्यवर्धनाची गरज खालील कारणांसाठी महत्त्वाची आहे:

2.1 शेतकऱ्यांचे उत्पन्न वाढवणे: प्रक्रिया केलेल्या उत्पादनांचे बाजार मूल्य कच्च्या कृषी उत्पादनांपेक्षा जास्त असते, ज्यामुळे शेतकऱ्यांचे उत्पन्न वाढते.

2.2 कृषी उत्पादनांचा चांगला वापर: मूल्यवर्धनाद्वारे, कृषी उत्पादनांचे विविध उपयुक्त आणि पौष्टिक उत्पादनांमध्ये रूपांतर करता येते.

2.3 अन्न जतन: प्रक्रिया करून, अन्न दीर्घकाळ टिकवून ठेवता येते, ज्यामुळे खराब होण्याची शक्यता कमी होते.

2.4 रोजगाराच्या संधी: मूल्यवर्धन उद्योगांचा विकास ग्रामीण भागात लघु आणि कुटीर उद्योगांना प्रोत्साहन देतो आणि नवीन रोजगाराच्या संधी निर्माण करतो.

2.5 अन्न विविधता आणि पोषण: प्रक्रियेद्वारे, विविध प्रकारचे पौष्टिक अन्न तयार केले जाऊ शकते, ज्यामुळे ग्राहकांना वैविध्यपूर्ण आणि संतुलित आहार मिळतो.

3. प्रमुख मूल्यवर्धन प्रक्रिया

मूल्यवर्धन प्रक्रियेमध्ये अनेक महत्त्वाचे टप्पे समाविष्ट असतात:

प्रक्रिया	विवरण
प्रसंस्करण (Processing)	प्रसंस्करण म्हणजे कच्च्या कृषी उत्पादनांचे साफसफाई, कापणे, दळणे, स्वयंपाक करणे, वाळवणे किंवा इतर तंत्रांद्वारे वापरण्यायोग्य अन्नात रूपांतर करण्याची प्रक्रिया. या टप्प्यात, कच्च्या उत्पादनाचे दळणे, उकळणे, भाजणे आणि किण्वन करणे यासारख्या नवीन उत्पादनांमध्ये रूपांतर करण्यासाठी विविध तंत्रे वापरली जातात.
ग्रेडिंग (Grading)	ग्रेडिंग म्हणजे कृषी उत्पादनांची गुणवत्ता, आकार, रंग, वजन आणि इतर वैशिष्ट्यांवर आधारित वेगवेगळ्या श्रेणींमध्ये (ग्रेड) विभागणी करण्याची प्रक्रिया. या प्रक्रियेचा प्राथमिक उद्देश म्हणजे बाजारात सातत्यपूर्ण दर्जेदार उत्पादने उपलब्ध आहेत याची खात्री करणे आणि वाजवी किंमत सुनिश्चित करणे. कृषी उत्पादनांच्या मूल्यवर्धनात प्रतवारी महत्त्वाची भूमिका बजावते. **उदाहरणार्थ:** फळे आणि भाज्या - आकार आणि रंगानुसार **तृणधान्ये -** धान्याच्या आकार आणि गुणवत्तेनुसार **सोयाबीन -** धान्याच्या आकार, ओलावा आणि गुणवत्तेनुसार प्रतवारी केल्यानंतर, उत्पादने पॅक केली जातात आणि बाजारात पाठवली जातात, ज्यामुळे त्यांना चांगली किंमत मिळते.
पैकेजिंग (Packaging)	पॅकेजिंग म्हणजे कृषी किंवा अन्न उत्पादनांचे संरक्षण करण्यासाठी, वाहतूक सुलभ करण्यासाठी आणि ग्राहकांना आकर्षित करण्यासाठी योग्य साहित्यात पॅकेजिंग करण्याची प्रक्रिया. पॅकेजिंगचा प्राथमिक उद्देश उत्पादनाचे ओलावा, धूळ, कीटक, जीवाणू आणि इतर बाह्य प्रभावांपासून संरक्षण करणे आणि त्याची गुणवत्ता आणि ताजेपणा राखणे आहे. पॅकेजिंग कृषी उत्पादनांच्या मूल्यवर्धनात महत्त्वाची भूमिका बजावते, जसे की: उत्पादनाचे संरक्षण करणे, शेल्फ लाइफ वाढवणे, वाहतूक सुलभ करणे, ग्राहकांना आकर्षित करणे आणि माहिती प्रदान करणे.
भंडारण (Storage)	भंडारण म्हणजे शेती किंवा अन्न उत्पादनांना सुरक्षित आणि योग्य परिस्थितीत ठेवण्याची प्रक्रिया ज्यामुळे त्यांची गुणवत्ता, ताजेपणा आणि पौष्टिक मूल्य दीर्घकाळ टिकून राहते. साठवणुकीचा प्राथमिक उद्देश म्हणजे उत्पादनाचे ओलावा, कीटक, बुरशी, तापमान आणि इतर बाह्य प्रभावांपासून संरक्षण करणे, खराब होण्यापासून रोखणे आणि त्याचे दीर्घकालीन शेल्फ लाइफ सुनिश्चित करणे. शेती उत्पादनांचे मूल्य वाढविण्यात साठवणूक महत्त्वाची भूमिका बजावते. 1. उत्पादनाची गुणवत्ता राखणे 2. अन्नाची नासाडी कमी करणे 3. वेळेवर बाजारपेठेत विक्री 4. सतत पुरवठा **मुख्य साठवणूक पद्धती:** गोदामात साठवणूक, शीतगृह, सायलो साठवणूक आणि घरगुती साठवणूक
विपणन (Marketing)	मार्केटिंग ही अशी प्रक्रिया आहे ज्याद्वारे कृषी उत्पादने उत्पादकाकडून (शेतकरी) ग्राहकाकडे नेली जातात. त्यात खरेदी, विक्री, वाहतूक, साठवणूक, जाहिरात आणि वितरण यासारख्या क्रियाकलापांचा समावेश आहे. मार्केटिंगची उदाहरणे **धान्ये आणि डाळी -** मंडई आणि घाऊक बाजारात विकल्या जातात **फळे आणि भाज्या -** किरकोळ बाजारात आणि सुपरमार्केटमध्ये विकल्या जातात **प्रक्रिया केलेले अन्न उत्पादने -** स्टोअरमध्ये किंवा ऑनलाइन प्लॅटफॉर्ममध्ये पॅक केले जातात **सोयाबीन उत्पादने -** बाजारात पॅकेजिंगमध्ये विकल्या जातात, जसे की सोया दूध, सोया नगेट्स इ.

4. कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धनाची शक्यता

भारतात कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धनाची प्रचंड क्षमता आहे. देशात विविध प्रकारची पिके, फळे, भाज्या, तेलबिया आणि डाळींचे उत्पादन होते, ज्यांचे प्रक्रिया, प्रतवारी, पॅकेजिंग, साठवणूक आणि योग्य विपणन याद्वारे विविध उपयुक्त आणि मौल्यवान अन्न उत्पादनांमध्ये रूपांतर करता येते. कृषी उत्पादनांवर प्रक्रिया केल्याने त्यांची गुणवत्ता, उपयुक्तता आणि शेल्फ लाइफ वाढते, ज्यामुळे त्यांचे आर्थिक मूल्य वाढते. अन्न प्रक्रिया उद्योगाच्या सध्याच्या वाढीमुळे शेतकऱ्यांचे उत्पन्न वाढवण्याची प्रचंड क्षमता निर्माण झाली आहेच, शिवाय कृषी क्षेत्र अधिक फायदेशीर आणि शाश्वत बनण्यास देखील मदत होते. शिवाय, मूल्यवर्धनामुळे कृषी उत्पादनांचा अपव्यय कमी होऊ शकतो आणि ग्राहकांना वैविध्यपूर्ण आणि पौष्टिक आहार मिळू शकतो.

सोयाबीन, गहू, मका, फळे आणि भाज्या यासारख्या कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धनाची प्रचंड क्षमता आहे. उदाहरणार्थ, सोयाबीनचा वापर सोया दूध, सोया पीठ, सोया नगेट्स, टोफू (सोया चीज) आणि इतर अनेक पौष्टिक उत्पादने तयार करण्यासाठी केला जाऊ शकतो, ज्यांना बाजारात जास्त मागणी आहे. त्याचप्रमाणे, गहू पीठ, ब्रेड, बिस्किटे आणि इतर बेकरी उत्पादने बनवण्यासाठी वापरला जातो, तर मक्याचा वापर कॉर्न फ्लेक्स, स्टार्च आणि इतर अन्न उत्पादने तयार करण्यासाठी केला जाऊ शकतो. फळे आणि भाज्यांवर प्रक्रिया करून जॅम, जेली, ज्यूस, लोणचे, सॉस आणि चिप्स यासारख्या विविध उत्पादनांचे उत्पादन केले जाते, ज्यामुळे त्यांची उपयुक्तता आणि बाजार मूल्य दोन्ही वाढते.

शिवाय, आधुनिक तंत्रज्ञान, सुधारित पॅकेजिंग, शीतगृह सुविधा आणि प्रभावी विपणन यंत्रणेमुळे कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धनाची क्षमता वाढली आहे. अशाप्रकारे, कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धन केवळ शेतकऱ्यांना त्यांच्या उत्पादनांना चांगले भाव मिळवून देण्यास मदत करत नाही तर ग्रामीण भागात रोजगार निर्मिती, अन्न प्रक्रिया उद्योग विकसित करण्यात आणि देशाच्या अर्थव्यवस्थेला बळकटी देण्यात देखील महत्त्वाची भूमिका बजावते.

5. मूल्यवर्धनाचे फायदे

- मूल्यवर्धनामुळे अनेक आर्थिक आणि सामाजिक फायदे मिळतात:
- शेतकऱ्यांना त्यांच्या उत्पादनांना चांगला भाव मिळतो. कृषि आधारित उद्योगों का विकास होता है
- ग्रामीण भागात रोजगाराच्या संधी वाढतात
- अन्न उत्पादनांची गुणवत्ता आणि विविधता वाढते
- कृषी अर्थव्यवस्था मजबूत होते

6. निष्कर्ष

कृषी क्षेत्राच्या विकासासाठी कृषी उत्पादनांमध्ये मूल्यवर्धन करणे अत्यंत महत्त्वाचे आहे. त्यामुळे कृषी उत्पादनांचा चांगला वापर होऊ शकतो आणि शेतकऱ्यांचे उत्पन्न लक्षणीयरीत्या वाढू शकते.

जर आधुनिक प्रक्रिया तंत्रे, प्रशिक्षण कार्यक्रम आणि प्रभावी विपणन प्रणालींना प्रोत्साहन दिले गेले तर ग्रामीण विकास, रोजगार निर्मिती आणि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मजबूत करण्यात मूल्यवर्धन महत्त्वपूर्ण भूमिका बजावू शकते.

मारवाड़ी

सोयाबीन: स्वर्ण फसल अणि प्रोटीन रो खजानों

अशोक जायसवाल, डॉ.आलोक शिव एवं डॉ.चंदू सिंह
भा.कृ.अनु प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर – 452001
भा.कृ.अनु प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान पूसा, नई दिल्ली, दिल्ली 110012

भारत एक खेती प्रधान देश है, जिथे जियादातर जनसंख्या अपनी रोजी-रोटी खातर खेती पर निर्भर रहवे है। बदलता समय रा साथ खेती री पद्धतियाँ में भी बदलाव आयो है अणि अब ऐसी फसलां ने जियादा महत्व दियो जावै है, ज्या पोषण, आमदनी अणि जमीन री उर्वरता—तीनूं दृष्टि सूं लाभदायक होवे। सोयाबीन भी ऐसी ई एक बहुउपयोगी फसल है, जिणे "स्वर्ण फसल" रो नाम दियो गयो है। यो नाम सिरफ इणा सुनहरा दाणां खातर नीं, पर इणरा आर्थिक अणि पोषण संबंधी महत्व खातर भी दियो गयो है। सोयाबीन एक मुख्य तिलहनी अणि दलहनी फसल है, जेमां भरपूर मात्रा में प्रोटीन (लगभग 40 प्रतिशत) अणि तेल (लगभग 18–20 प्रतिशत) मिलै है। एही कारण सूं इणने "प्रोटीन रो खजानों" भी कयो जावै है। आज रा समय में, जद कुपोषण अणि संतुलित आहार री समस्या एक बड़ी चुनौती बनी हुई है, तद सोयाबीन जेसा पौष्टिक खाद्य पदार्थां रो महत्व और भी बढ़ जावै है। इणा सूं बननारा उत्पाद—जैसां सोया दूध, टोफू, सोया चंक्स अणि सोयाबीन रो तेल—मानव स्वास्थ्य खातर घणा लाभदायक होवे है। विश्व स्तर पर भी सोयाबीन रो खास स्थान है। एशिया सूं सुरू होके यो फसल आज अमेरिका अणि यूरोप तक फैल गी है। भारत में भी इरो उत्पादन लगातार बढ़ रह्यो है, खासकर देश रा मध्य अणि पश्चिमी भागां में। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र अणि राजस्थान जेसा राज्य इरा मुख्य उत्पादक क्षेत्र है अणि इण राज्यां री अर्थव्यवस्था में सोयाबीन री घणी महत्वपुर्ण भूमिका है।

सोयाबीन सिरफ एक नकदी फसल ही नीं, पर यो मिट्टी री उर्वरता बढ़ावण में भी मददगार है। इणी जड़ां में रहनारा जीवाणु वायुमंडल री नाइट्रोजन ने जमीन में स्थिर कर देवे है, जिण सूं मिट्टी और जियादा उपजाऊ बन जावै है। एरी वजह सूं सोयाबीन पर्यावरण संरक्षण अणि सतत खेती खातर भी उपयोगी सिद्ध होवे है। आज जद खेती में आधुनिकीकरण अणि वैज्ञानिक पद्धतियां रो उपयोग बढ़ रह्यो है, तद सोयाबीन री खेती किसानां खातर आमदनी रो एक मजबूत साधन बन गी है। कम लागत, कम समय अणि ज्यादा लाभ देणारी यो फसल ग्रामीण विकास अणि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ने मजबूत बनावण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। ए प्रकार सोयाबीन सिरफ एक फसल नीं, पर पोषण, पर्यावरण अणि आर्थिक समृद्धि रो आधार है। एही कारण सूं इणने "स्वर्ण फसल अणि प्रोटीन रो खजानों" कयो जावै है।

उत्पत्ति अणि इतिहास

सोयाबीन रो मूल स्थान चीन मान्यो जावै है। लगभग तीन हजार वर्ष पहलां एशिया में इणी खेती शुरू हुई थी। धीरे-धीरे यो फसल जापान, कोरिया अणि अन्य एशियाई देशां में फैल गी। बीसवीं शताब्दी में सोयाबीन री खेती अमेरिका अणि यूरोप में भी लोकप्रिय हो गी। भारत में इरो विस्तार खास तौर सूं 1980 रा दशक पाछै बढ़्यो। आज रा समय में मध्य प्रदेश ने "सोयाबीन राज्य" कयो जावै है, क्यूंकि इथै देश में सबसे जियादा उत्पादन होवे है।

सोयाबीन रो पौधो अणि इणी विशेषताएँ

सोयाबीन एक दलहनी फसल है। इरो पौधो सामान्य तौर सूं 30 सूं 100 सेंटीमीटर तक ऊँचो होवेलो है। इणा पत्ता हरा अणि नाना-नाना होवे है, अणि फूल हल्का बैंगनी या सफेद रंग रा होवे है। पौधा में फलियां लागे है, जिणरा भीतर सोयाबीन रा बीज होवे है।

- यो फसल तुलनात्मक रूप सूं कम समय में तैयार हो जावै है।
- यो मिट्टी री उर्वरता बढ़ावण में मददगार होवे है।
- इमां प्रोटीन अणि तेल री मात्रा घणी होवे है।

- इणी खेती तुलनात्मक रूप सूं कम लागत में करी जा सके है।
- एही विशेषतां कारण किसान इणने बड़े पैमाने पर उगावै है।

सोयाबीन का पौधा और फलियाँ

सोयाबीन की फसल का खेत

जलवायु अणि मिट्टी

सोयाबीन खरीफ मौसम री फसल है अणि इणी सफल खेती खातर उपयुक्त जलवायु अणि मिट्टी रो होणो घणो जरूरी है। ए फसल खातर 20°C सूं 30°C तक रो तापमान अनुकूल मान्यो जावै है अणि लगभग 60 सूं 100 सेंटीमीटर वर्षा इणी अच्छी बढ़त में मददगार होवे है। घणी ठंड, पाला या खेत में पानी भराव सोयाबीन खातर नुकसानदायक होवे है, इस कारण खेत में पानी रो सही निकास होणो जरूरी है। मिट्टी री दृष्टि सूं अच्छी जल निकासी वाली दोमट या काली कपासीय मिट्टी सबसे उत्तम मानवी जावै है। मिट्टी रो pH मान लगभग 6.0 सूं 7.5 बीच होणो चाहिये, जिण सूं पौधां री जड़ां रो विकास ठीक रीते सूं हो सके।

उपजाऊ, भुरभुरी अणि जैविक पदार्थां सूं भरपूर मिट्टी सोयाबीन री ज्यादा पैदावार खातर उपयुक्त मानवी जावै है।

खेती री विधि, रोग-कीट प्रबंधन अणि कटाई

सोयाबीन री सफल खेती खातर सबसे पहलां जमीन री अच्छी तैयारी जरूरी होवे है। खेत ने 2–3 बार जुताई कर मिट्टी ने भुरभुरी अणि समतल बनायो जावै है, जिण सूं पानी रो निकास ठीक रहै। आखरी जुताई रा समय गोबर री खाद या अन्य जैविक खाद मिलावणो लाभदायक रहै है, क्यूंकि इण सूं मिट्टी री उर्वरता बढ़े है। बुवाई खातर प्रमाणित अणि रोगमुक्त बीज रो चयन करनो चाहिये।

सोयाबीन री बुवाई जून–जुलाई में मानसून री शुरुआत रा साथ करवी जावै है अणि बीजां ने 30–45 सेमी कतार दूरी पर बोवो जावै है। बुवाई सूं पहलां बीज उपचार करनो घणो जरूरी होवे है, जिण सूं शुरूआती अवस्था में रोग अणि कीटां सूं बचाव हो सके। घणी वर्षा वालां क्षेत्रां में अतिरिक्त सिंचाई री जरूरत नीं पड़ै, पण अगर वर्षा कम होवे तो फूल आवण अणि दाणो भरावण री अवस्था में सिंचाई करवी चाहिये। उर्वरक प्रबंधन में नाइट्रोजन, फास्फोरस अणि पोटाश रो संतुलित उपयोग करायो जावै है। सोयाबीन री जड़ां में रहनारा जीवाणु नाइट्रोजन स्थिरीकरण करै है, जिण सूं मिट्टी री उर्वरता बढ़े है। रोग अणि कीट प्रबंधन भी घणो महत्वपूर्ण है। सोयाबीन में तना मक्खी अणि गर्डल बीटल जेसा कीट अणि पीळो मोज़ेक वायरस अणि पत्ती धब्बा रोग मुख्य समस्या है। इण सूं बचाव खातर बीज उपचार, समय पर कीटनाशक अणि फफूंदनाशक दवां रो छिड़काव अणि फसल चक्र अपनावणो जरूरी है। सोयाबीन री फसल लगभग 90–110 दिन में पक के तैयार हो जावै है। जद पौधां री पत्ता पीळा पड़के गिरण लाग जावै अणि फलियां सूख जावै, तद कटाई करवी चाहिये। भारत में इरा मुख्य उत्पादक राज्यां में महाराष्ट्र, राजस्थान अणि मध्य प्रदेश शामिल है। औसतन 15–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उत्पादन मिल सके है, जबकि उन्नत तकनीक अणि अच्छी देखभाल सूं इण सूं ज्यादा उपज भी मिल सके है।

उपयोग अणि महत्व

सोयाबीन आधुनिक खेती अणि आहार विज्ञान में घणी बहुउपयोगी अणि महत्वपूर्ण फसल है, जिणे इणा विशेष पोषण गुणां कारण “सुनहरो दाणो” या “चमत्कारी फसल” भी कयो जावै है। शाकाहारी लोगां खातर सोयाबीन प्रोटीन रो एक उत्तम स्रोत मान्यो जावै है। यो शरीर री वृद्धि, ऊतकां रो निर्माण अणि समग्र स्वास्थ्य खातर घणो लाभदायक होवे है। इरो मुख्य महत्व इमां मौजूद उच्च प्रोटीन (लगभग 40–42%) अणि आवश्यक वसा (लगभग 20%) कारण है, जिण सूं यो शाकाहारी लोगां खातर मांस जेसो प्रोटीन रो एक बढ़ियो विकल्प बन जावै है। इरा उपयोगां री विविधता इणने अन्य फसलां सूं अलग

बनावे है। एक तरफ इरो उपयोग खाद्य तेल निकालण खातर करायो जावै है, तो दूसरी तरफ इणा प्रसंस्कृत उत्पाद—जेसा टोफू, सोया दूध, सोया बड़ी अणि सोया सॉस—पूरी दुनिया में चाव सूं खावै जावै है। औद्योगिक दृष्टि सूं भी सोयाबीन रो घणो महत्व है, क्यूंकि तेल निकाल्या पाछै बचण वाली "खली" (सोया मील) पशुआं अणि पोल्ट्री खातर प्रोटीन रो मुख्य स्रोत होवे है। इणा साथ ही इण सूं बायोडीजल, स्याही अणि प्लास्टिक जेसा पर्यावरण-अनुकूल उत्पाद भी बनावै जावै है। स्वास्थ्य री दृष्टि सूं यो हड्डियां ने मजबूत करै है, हृदय रोगां रो खतरो कम करै है अणि मधुमेह नियंत्रण में भी मददगार होवे है। आर्थिक दृष्टि सूं यो किसानां खातर भरोसेमंद नकदी फसल साबित होवे है अणि मिट्टी री उर्वरता बढ़ावण में भी मदद करै है।

सोया पनीर (टोफू)

सोया दूध

सोया आटा

आर्थिक महत्व

- विदेशी मुद्रा रो अर्जन: भारत दुनिया रा मुख्य सोयाबीन उत्पादक देशां में सूं एक है। तेल निकाल्या पाछै बचण वालो सोया मील घणा पैमाने पर निर्यात करायो जावै है, जिण सूं देश ने करोड़ां रुपयां री विदेशी मुद्रा मिलै है।
- खाद्य तेल में आत्मनिर्भरता: भारत अपनी खाद्य तेल री जरूरत खातर आयात पर घणो निर्भर है। सोयाबीन रो घरेलू उत्पादन ए निर्भरता ने कम करवा अणि देश रा आयात बिल ने घटावण में महत्वपूर्ण भूमिका निभावै है।
- रोजगार रा अवसर: सोयाबीन री खेती सूं लेके इणा प्रसंस्करण तक, यो लाखां लोगां ने रोजगार देवै है। तेल मिलां, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयां अणि पशु आहार उद्योगां में इणी भारी मांग कारण प्रत्यक्ष अणि अप्रत्यक्ष रोजगार पैदा होवे है।
- पशुपालन अणि पोल्ट्री उद्योग रो आधार: सोयाबीन पोल्ट्री अणि जलीय कृषि खातर प्रोटीन रो सबसे सस्तो अणि सुलभ स्रोत है। ए उद्योगां री कम लागत अणि मुनाफो घणी हद तक सोयाबीन री कीमत अणि उपलब्धता पर निर्भर रहै है।
- कम लागत, ज्यादा लाभ: अन्य फसलां री तुलना में सोयाबीन में खाद अणि पानी री जरूरत तुलनात्मक रूप सूं कम होवे है। यो एक 'लेग्यूम' फसल है, ज्या वायुमंडल सूं नाइट्रोजन लेके मिट्टी री उर्वरता बढ़ावै है, जिण सूं किसानां रो उर्वरक पर होण वालो खर्चो कम हो जावै है।
- औद्योगिक कच्चो माल: सोयाबीन रो उपयोग सिरफ भोजन तक सीमित नीं है। इरो उपयोग बायोडीजल, पेंट, लुब्रिकेंट्स अणि फार्मास्युटिकल उद्योगां खातर महत्वपूर्ण कच्चा माल रा रूप में करायो जावै है, जिण सूं औद्योगिक विकास में योगदान मिलै है।

खण्ड
ग
राजभाषा
सामान्य

संस्थान में 2025-2026 के दौरान राजभाषा - कार्यान्वयन सम्बन्धी वार्षिक गतिविधियाँ

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय सोयाबीन अनुसन्धान संस्थान, इंदौर में राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु अनेकानेक कार्यक्रम किये जा रहे है | जिनका स्वरुप भारतीय सोयाबीन अनुसन्धान संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति के साथ दृष्टिगोचर होते है, जो राजभाषा के प्रगामी प्रयोग में अत्यंत सार्थक सिद्ध हो रहे है | इस क्षेत्र में किये जा रहे क्रिया कलापों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है :

(क) राजभाषा नियम 1976 के नियम का अनुपालन :

संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी शासकीय कार्यों हेतु राजभाषा नियम 1976 के उपनियम (1) तथा (4) के अनुसार लिखे जाने वाली टिप्पणियों एवं अन्य कार्य हिन्दी में करते हैं |

(ख) राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक :

- प्रथम बैठक :07 अप्रैल 2025
- द्वितीय बैठक : 07 जुलाई 2025
- तृतीय बैठक : 08 अक्टूबर 2025
- चतुर्थ बैठक : 04 जनवरी 2026

(ग) हिन्दी कार्यशालाएं :

संस्थान के अधिकारीयों एवं कर्मचारियों की हिन्दी में कार्य करने के दौरान होने वाली समस्यायों के निराकरण हेतु संस्थान में हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है | इसके अतिरिक्त कार्यशालाओं के आयोजन का मुख्य ध्येय यह भी होता है कि हिन्दी का प्रयोग किस प्रकार सरल से सरलतम की ओर बढाया जा सकता है | इसलिए प्रत्येक तिमाही में कम से कम एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है | ताकि संस्थान के सभी संवर्गों में हिन्दी में कार्य संपन्न करने के रुझान में उत्तरोत्तर प्रगति हो सके | इस उद्देश्य हेतु सम्बंधित विषयानुसार कार्यशालाएं संपन्न की जाती हैं |

(घ) प्रशिक्षण :

संस्थान में राजभाषा के प्रचार-प्रसार हेतु कृषकों एवं प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण सम्बन्धित सारी सामग्रियां हिन्दी में प्रदान की जा रही है |

(ङ) शब्द कोष का वितरण :

संसदीय राजभाषा समिति के निरिक्षण के दौरान प्रो. रीता बहुगुणा जोशी, संयोजक , दूसरी उपसमिति संसदीय राजभाषा कि अध्यक्षता में संसदीय राजभाषा समिति नेनिरिक्षण के दौरान आश्वासन दिया था कि संस्थान में सभी कार्मिकों को हिन्दी शब्द कोश प्रदान किया जाये जिससे किसी भी कार्मिकों को हिन्दी में कार्य करने में असुविधा न हो| इस आश्वासन के प्रतिपालन स्वरुप संस्थान के सभी कार्मिकों को हिंदी से अंग्रेजी एवं अंग्रेजी से हिंदी के शब्द कोश हिंदी प्रकोष्ठ द्वारा क्रय कर प्रदान किया गया ताकि कर्मचारियों, अधिकारियो एवं वैज्ञानिकों के हिन्दी शब्द ज्ञान में वृद्धि करने के साथ ही साथ हिन्दी के कार्यालयीन उपयोग में भी सहायता प्रदान कर सके|

(च) अनुवाद द्विभाषीय प्रपत्र :

संस्थान में कार्यालयीन कार्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पत्रों, प्रपत्रों आदि का अनुवाद कार्य भी प्रगति पर है, जिससे दैनंदिन के साथ ही प्रायः प्रयुक्त होने वाले सभी प्रकार के पत्रों, प्रपत्रों का द्विभाषी मुद्रित रूप सम्मिलित है | यह कार्य राजभाषा कार्यान्वयन की दिशा में स्थाई एवं आधारभूत उपलब्धि है |

(छ) राजभाषा तिमाही रिपोर्ट का प्रेषण :

संस्थान में राजभाषा हिन्दी से सम्बंधित समस्त कार्यों का विवरण तिमाही हिन्दी रिपोर्ट के माध्यम से सम्बंदित विभागों को ऑनलाइन एवं द्वित्गामी डाकसेवा से प्रेषित किया जाता है | इस कार्य को धरातलीय रूप प्रदान करने में संस्थान के समस्त सम्बंधित अनुभाग का सक्रिय एवं सराहनीय योगदान होता है |

(ज) राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3(3) :

संस्थान में राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3(3) से सम्बंधित दस्तावेजों जैसे : सामान्य आदेश, अधिसूचनाएं, प्रेस-विज्ञप्ति, संविदा, लाइसेंस, परमिट, टेंडर के फार्म और नोटिस, संकल्प, नियम इत्यादि को (हिन्दी और अंग्रेजी) द्विभाषी रूप में निकला जाता है, ताकि राजभाषा सम्बंधित दिशा-निर्देशों का पालन सतत होता रहे

(झ) यूनिकोड की सुविधा :

संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारी की हिन्दी में कार्य करने की रूचि में वृद्धि करने हेतु समस्त कम्पुटर में हिन्दी यूनिकोड की व्यवस्था प्रदान की गई है, जिससे एक सामान फॉण्ट के माध्यम से पूरा संस्थान एक ही दिशा की ओर अग्रसित हो सके |

(ञ) मौलिक लेखन कार्य का प्रादुर्भाव :

संस्थान में राजभाषा सम्बन्धी विभिन्न क्रियाकलापों के साथ मौलिक लेखन कार्य को द्विगामी आयाम प्रदान करने में अधिकारियों एवं कर्मचारी की रूचि अद्वितीय है । संस्थानों द्वारा प्रकाशित होने वाली "सोयवृतिका पत्रिका" में अपनी लेखनी प्रदान करते हैं ।

(ट) संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उप समिति निरिक्षण

दिनांक 04.07.2025 को संसदीय राजभाषा समिति की दूसरी उप समिति द्वारा संस्थान का निरिक्षण किया गया ।

(ठ) नगर राजभाषा कार्यान्वयन नराकास की बैठक :

दिनांक 03 जुलाई 2025 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास) की बैठक में, जो आयकर विभाग, इंदौर में आयोजित की गई थी, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान से डॉ. के. एच. सिंह, निदेशक तथा डॉ. पुनम कुचलान, प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी (राजभाषा) ने भाग लिया।

- दिनांक 22 जनवरी 2026 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास) की बैठक में, जो भारतीय प्रबंध संस्थान इंदौर में आयोजित की गई, भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान से डॉ. के. एच. सिंह, निदेशक, डॉ. पुनम कुचलान, प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी (राजभाषा); तथा श्री आई. आर. खान, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी ने भाग लिया।

(ड) हिंदी पखवाड़ा : परिषद् के दिशा-निर्देश एवं हिन्दी के क्षेत्र में भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर द्वारा प्राप्त गरिमा को बनाए रखने के लिए दिनांक 01-17 सितंबर 2025 के दौरान "हिन्दी पखवाड़ा-2025" का आयोजन किया गया । हिन्दी पखवाड़ा के माध्यम से हमारा यह प्रयास रहा है कि संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों की रूचि हिन्दी में काम करने के प्रति निरंतर बढ़ती रहे तथा राजभाषा हिन्दी का प्रगामी विकास और प्रचार-प्रसार निरंतर होता रहे । हिन्दी पखवाड़ा के दौरान विभिन्न प्रतियोगिता का आयोजन किया गया ।

दिनांक 17 मार्च 2026 को हिन्दी कार्यशाला में श्री गणेश मीणा ने संस्थान में हिन्दी राजभाषा के नियमों का पालन किस प्रकार किया जावे पर व्याख्यान दिया

दिनांक 09 जुलाई 2025 को हिन्दी कार्यशाला में श्री अनुराग सकरगाय ने कंठस्थ–0.2 ऐप पर व्याख्यान दिया

दिनांक 10 सितम्बर 2025 को हिन्दी कार्यशाला में श्री त्रिपुरारीलाल शर्मा ने राजभाषा अधिनियम एवं क्रियानवयन पर व्याख्यान दिया

दिनांक 04 दिसम्बर 2025 को हिन्दी कार्यशाला में श्रीमती सुपर्णा दास गुप्ता ने राजभाषा नीति एवं कार्यान्वयन पर व्याख्यान दिया

हिन्दी पखवाड़ा

ICAR-NATIONAL SOYBEAN RESEARCH INSTITUTE, INDORE
भा.कृ.अनु.प. - राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर

भा.कृ.अनु.प.
भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान
इंदौर

अक्टूबर 2025- मार्च 2026 के दौरान संस्थान में हुए कार्यक्रमों की झलक

संस्थान ने 14 सितम्बर से 2 अक्टूबर 2025 तक स्वच्छता ही सेवा है अभियान कार्यक्रम मनाया

संस्थान ने 16–31 दिसम्बर 2025 तक स्वच्छता पखवाड़ा कार्यक्रम मनाया

23 दिसम्बर 2025 को संस्थान ने राष्ट्रीय किसान दिवस सह:सोया कृषक मेला का आयोजन किया जिसमें किसानों को नई किस्मों के बीज उपलब्ध कराये गये ।

दिनांक 11 दिसम्बर 2025 को संस्थान ने अपना स्थापना दिवस मनाया इस कार्यक्रम में कोटा कृषि विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ.ए.के.व्यास, पूर्व डी.डी.जी.क्रॉपसांईस डॉ.एस.पी.तिवारी, संस्थान के पूर्व निर्देशक डॉ.वी.एस.भाटिया एवं सोपा के एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर ने कार्यक्रम में शामिल होकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई ।

संस्थान में दिनांक 11 अक्टूबर 2025 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा धन धान्य योजना एवं दलहन में आत्मनिर्भरता मिशन लांच करने का वेबकास्ट आयोजित किया गया जिसमें माननीय सांसद श्री शंकर लालवानी जी ने भाग लिया ।

संस्थान में दिनांक 27 अक्टूबर 2025 को सर्तकता जागरूकता सप्ताह के अंतर्गत विषय विशेषज्ञ डी.एस.पी.श्री आनंद चौहान जी ने व्याख्यान दिया

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर को 05.12.2025 भोपाल में सॉलिडेरिडाड एशिया द्वारा आयोजित एक प्रोग्राम में ऑर्गनाइज़ेशन कैटेगरी में रीजेनरेटिव एग्रीकल्चर के लिए प्रोफेसर रतन लाल अवॉर्ड मिला

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में 31 दिसम्बर 2026 को कर्मयोगी मीटिंग आयोजित की गई, जिसमें सभी कर्मचारी ने सक्रिय सहभागिता की।

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में 07 जनवरी 2026 सोया फूड प्रोसेसिंग एवं संबद्ध क्षेत्र पर आयोजित पाँच दिवसीय उद्यमिता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम का तृतीय दिवस सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में 26 जनवरी 2026 77वें गणतंत्र दिवस के अवसर पर संस्थान में ध्वजारोहण एवं विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. के. एच. सिंह ने संबोधन दिया तथा सभी को राष्ट्रभक्ति, एकता एवं कर्तव्यनिष्ठा का संदेश दिया।

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में 27.01.2026 पॉलीहाउस निर्माण हेतु भूमि पूजन कार्यक्रम निदेशक डॉ. के. एच. सिंह की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ। साथ ही ICICI Foundation द्वारा वित्तीय साक्षरता और जागरूकता विषय पर एक महत्वपूर्ण व्याख्यान भी आयोजित किया गया।

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में दिनांक 17 फरवरी 2026 को आयोजित भारत विस्तार कार्यक्रम के शुभारंभ के लाइव वेबकास्ट के दौरान भारत सरकार के माननीय कृषि और किसान कल्याण मंत्री, श्री शिवराज सिंह चौहान का संबोधन

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर मध्यप्रदेश शासन परियोजना के अंतर्गत ग्राम बन, तहसील राणापुर में दिनांक 16 फरवरी 2026 को "कृषक प्रशिक्षण एवं गेहूँ दिवस" का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया।

भा.कृ.अनु.प. – राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर में 20 फरवरी 2026 को "डाकघर वित्तीय साक्षरता शिविर" का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने सहभागिता कर डाकघर की विभिन्न बचत और निवेश योजनाओं की जानकारी प्राप्त की।

"खुद वो बदलाव बनिए जो आप दुनिया में देखना चाहते हैं।"
— महात्मा गांधी

देवनागरी लिपि का संवैधानिक एवं वर्तमान स्वरूप

श्याम किशोर वर्मा
भा.कृ.अनु.प.,– राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर
संवादी लेखक का ई-मेल: nrcshyam@gmail.com

सारांश – 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिए जाने का निर्णय लिया तथा सन् 1950 में संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के द्वारा हिन्दी को देवनागरी लिपि में राजभाषा का दर्जा दिया गया। देवनागरी लिपि में हिन्दी के अलावा कई और भाषायें लिखी जाती है। देवनागरी लिपि को नागरी लिपि और हिन्दी लिपि भी कहा जाता है। यह दुनिया कि सबसे ज्यादा उपयोग होने वाली लिपियों में से एक है। लिपि का कार्य भावों का अंकन है। अपने इस कार्य में जो लिपि जितनी सफल होगी, उसे उतनी शक्ति संपन्न तथा उपयोगी होगी। प्राचीन नगर लिपि के पश्चिमी रुपसे देवनागरी लिपि विकसित हुई है। नागरी लिपि का समुचित विकास 10वीं शताब्दी से माना जाता है। डॉ. भोलाराम तिवारी के अनुसार नागरी लिपि की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी तक अनिर्णित है। इस सबंध में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मानना है कि यह निर्विवाद सत्य है कि जिस तरह श्रेष्ठ वाडयम् वाली भाषा संस्कृत परिष्कृत एवं परिमार्जित होने के कारण देववाणी कहा जाता है, उसी प्रकार संस्कृत वाडयम् को लिपि बद्ध करने के कारण इस परीष्कृत एवं परीमार्जित नागरी लिपि को देवनागरी नाम दिया गया है। भारत में अग्रेंजों के आगमन और उनके प्रचार–प्रसार के बाद रोमन लिपि ने भारत में अपने पैर फैलाए। यहॉ के निवासियों ने उसके प्रति विशेष लगाव दिखाया और उसे अंतर्राष्ट्रीय महत्व की बताते हुए उसे स्वीकार ही नहीं किया, अपितु उसके प्रचार–प्रसार में योगदान भी दिया, जिसका प्रभाव भाषाशास्त्रियों पर भी पड़ा और डॉ. सुनीती कुमार चटर्जी जैसे विद्वान इसको देवनागरी के स्थान पर अपनाने की वकालत करने लगे। लेकिन देवनागरी लिपि में यह सामर्थ है कि वह केवल भारतीय भाषाओं के शब्दों की ही नही, अपितु विदेशी ध्वनियों को भी अंकित करने में पर्याप्त समर्थ है।

प्रस्तावना – भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के मुताबिक, देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया है। संविधान के इस अनुच्छेद के तहत, सरकारी कामकाज में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी का उपयोग किया जाता है। संविधान में 14 सितंबर 1949 को देवनागरी लिपि में हिन्दी को राजभाषा घोषित करने का फैसला किया था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा 1917 में भरुच (गुजरात) में सर्वप्रथम राजभाषा के रुप में हिन्दी को मान्यता प्रदान की गई थी। तत् पश्चात् 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिए जाने का निर्णय लिया तथा 1950 में संविधान के अनुच्छेद 343(1) के द्वारा हिन्दी के देवनागरी लिपि में राजभाषा का दर्जा दिया गया। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनुरोध पर 1953 से 14 सितंबर को हिन्दी–दिवस के रुप में मनाया जाता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से लेकर अनुच्छेद 351 तक राजभाषा संबंधी संवैधानिक प्रावधान किए गए। भारत सरकार गृह मंत्रालय के अधीन राजभाषा का गठन किया गया। राष्ट्रपति के आदेश द्वारा 1960 में आयोग की स्थापना के बाद 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ, तत् पश्चात् 1968 में राजभाषा संबंधी प्रस्ताव पारित किया गया राजभाषा अधिनियम की धारा 4 के तहत राजभाषा संसदीय समिति 1976 में गठित की गई। राजभाषा नियम 1976 में लागू किए गए तथा राजभाषा संसदीय समिति की अनुशंसा पर राष्ट्रपति द्वारा राजभाषा नीति बनाई जाकर लागू की गई। देवनागरी लिपि में हिन्दी के अलावा कई और भाषाऐं लिखी जाती है इन में कुछ भाषायें हैं – संस्कृत, मराठी, पालि, कोंकणी, सिंधी, कश्मीरी, नेवाली, डोगरी, खस, तमांग आदि तथा हरियाणवी बुंदेली, गढ़वाली, बार्डो, अंगिका, मगही, भोजपुरी, नागपुरी, मैथिली, सताली, कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, विष्णु पुरिया, मणिपुरी, और उर्दू भाषाऐं भी देवनागरी

लिपि और हिन्दी में लिखी जाती है। देवनागरी लिपि को नागरी लिपि और हिन्दी लिपि भी कहा जाता है यह दुनिया की सबसे ज्यादा उपयोग होने वाली लिपियों में से एक है। लिपि का कार्य भावों का अंकन है। अपने इस कार्य में जो लिपि जितनी ही सफल होगी, उसे उतनी शक्ति–संपन्न तथा उपयोगी कहा जाएगा। रज्जू लिपि तथा भावमूलक लिपि की अपनी सीमाएँ हैं। अतः ध्वनि–मूलक लिपि की तुलना में उन्हें उपयोगी नहीं कहा जा सकता है। ध्वनि–मूलक लिपि में भी वर्णात्मक लिपि, अक्षरात्मक लिपि की तुलना में अधिक वैज्ञानिक तथा उपयोगी है, क्योंकि उसके द्वारा ध्वनियों का अंकन अधिक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। इस श्रेणी की लिपि केवल रोम तथा उससे निकली कुछ अन्य लिपियाँ हैं।

देवनागरी लिपि का संक्षिप्त परिचय

प्राचीन नगर लिपि के पश्चिमी रूप से देवनागरी लिपि विकसित हुई है। नागरी लिपि का समुचित विकास 10वीं शताब्दी से माना जाता है। प्राचीन अभिलेखों की लिखावट के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भीमदेव प्रथम (1028 ई.) और भीमदेव द्वितीय (1200 ई.) तथा उदयवर्मन (1200 ई.) के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि वर्तमान हिन्दी के बहुत समीप है। डॉ. कपिल देव द्विवेदी के अनुसार इस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि का प्रारंभ 1000 ई. से 1200 ई. तक मानना उचित है। 18वीं शती की नागरी लिपि प्रायः वर्तमान नागरी के तुल्य पूर्ण विकसित थी। केवल कुछ मात्राओं में अंतर पाया जाता है।

देवनागरी लिपि का नामकरण

देवनगारी लिपि के नामकरण का विषय विवादित है –

1. गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा सर्वाधिक प्रयोग होने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा।
2. कुछ विद्वान बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' में उल्लिखित 'नाग' लिपि से उसका संबंध स्थापित करते हैं, परन्तु डॉ. बार्नेट का मत है कि नाग लिपि एवं नागरी लिपि, दोनों सर्वथा भिन्न लिपियाँ हैं।
3. कुछ विद्वानों के अनुसार प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा।
4. आर.एम. शास्त्री के अनुसार देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण से पूर्व यहाँ पर उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों के द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यंत्रों के बीच में अंकित किए जाते थे। इन यंत्रों को 'देवनगर' और उन चिह्नों को 'देवनागर' कहा जाता था। इन चिह्नों से ही इसका विकास होने के कारण इसका नाम 'देवनागरी' पड़ा।
5. 'देवनगर' अर्थात् 'काशी' में प्रचार के कारण यह 'देवनागरी' कहलाई।
6. एक मत यह भी है कि पाटलीपुत्र को पहले 'नागर' और चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहा जाता था। उन्हीं के नाम पर इस लिपि को 'देवनागरी' नाम दिया गया।
7. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – मध्य युग के स्थापत्य की एक शैली का नाम 'नागर' था, जिसमें चौकोर आकृतियाँ होती थीं। इधर नागरी लिपि के अधिकांश अक्षर भी चौकोर होते हैं। इसी आधार पर इसे नागरी या सम्मान देने के लिए 'देवनागरी' लिपि कहा गया। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये मत बहुत प्रामाणिक नहीं हैं। अतः 'नागरी' लिपि की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी तक अनिर्णीत है। इसी संबंध में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मानना है – उक्त मतों में से कौन–सा मत सर्वथा ठीक है, यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जिस तरह श्रेष्ठ वाङ्मय वाली भाषा संस्कृत परिष्कृत एवं परिमार्जित होने के कारण 'देववाणी' कहा जाता है, उसी तरह संस्कृत वांङ्मय को लिपिबद्ध करने के कारण इस परिष्कृत एवं परिमार्जित नागरी लिपि को 'देवनागरी' नाम दिया गया है।

देवनागरी लिपि का विकास

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (700–800 ई.) के एक शिलालेख में मिलता है। आठवीं शताब्दी में राष्ट्रकूट नरेशों में भी यही लिपि प्रचलित थी

और नवीं शताब्दी में बड़ौदा के ध्रुवराज ने भी अपने राज्यादेशों में इसी लिपि का प्रयोग किया था। विजयनगर राज्य और कोकड़ में भी इसी देवनागरी लिपि का प्रचार था। इसी आधार पर कुछ विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि देवनागरी का विकास सर्वप्रथम दक्षिण में ही हुआ था और वहीं से बाद में यह लिपि उत्तर में प्रचलित हुई। डॉ. सक्सेना यह भी मानते हैं कि यह लिपि भारत के सर्वाधिक क्षेत्र में प्रचलित रही है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात आदि प्रांतों में उपलब्ध शिलालेख, ताम्रपत्र, हस्तलेख, प्राचीन ग्रंथ आदि में देवनागरी लिपि ही अधिक मिलती है। आज भी यह लिपि संपूर्ण हिन्दी प्रदेश के अतिरिक्त भारत के अधिकांश प्रांतों में प्रयुक्त होती है और हिन्दी, संस्कृत, मराठी, नेपाली तथा हिन्दी की सभी बोलियों में इसी लिपि का प्रयोग होता है। ईसा की आठवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक देवनागरी लिपि मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा, मारवाड़ के परिहार राजा, मध्यप्रदेश के हैहय वंशी राजा, राठौर और कलचुरी नरेश, कन्नौज के गहडवाद और गुजरात के सोलंकी राजाओं में पर्याप्त मात्रा में प्रचलित रही। आरंभ में इस लिपि के वर्णों पर शिरोरेखा न थी और अ, घ, म, य, ष, त और स के सिर दो भागों में विभक्त थे। साथ ही दसवीं शताब्दी की देवनागरी लिपि के अनेक वर्ण आधुनिक वर्णों से बहुत पृथक थे। धीरे–धीरे उन्हें सुन्दर बनाने का प्रयास होता रहा और चौदहवीं शताब्दी में आकर इस लिपि के वर्णों का यह रूप स्थिर हो गया, जो आजकल मिलता है। नागरी लिपि के विकास की गाथा बहुत लंबी है, जिसमें विशिष्ट महत्व उन प्रभावों का है, जो इस पर पड़े हैं।

(अ) फ़ारसी के प्रभाव के परिणामस्वरूप नुक़्ते या बिन्दु का प्रयोग प्रारंभ हुआ, जिसमें जिह्वामूलीय ध्वनियाँ – क़, ग़, ज़ आदि रूप में लिखी जाती है।

(आ) कुछ लोग नागरी लिपि शिरोरेखा के बिना लिखते हैं, यह गुजराती प्रभाव माना जा सकता है।

(इ) डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार बंगाली लिपि ने भी देवनागरी लिपि को प्रभावित किया है। बंगला लिपि के अधिकांश वर्ण गोल होते हैं। देवनागरी लिपि के अधिकांश वर्ण चौकोर होते थे, लेकिन आजकल देवनागरी लिपि के अधिकांश वर्ण गोल लिखे जाते हैं।

(ई) देवनागरी लिपि में अंग्रेज़ी का भी प्रभाव देखा जा सकता है। इसके प्रभाव से अल्पविराम (,), अर्धविराम (;), प्रश्नवाचक चिह्न (?), विस्मयादिबोधक चिह्न (!), उद्धरण (भ) आदि का विकास तो हुआ ही है। साथ ही अंग्रेज़ी की कतिपय ध्वनियों को अंकित करने के लिए भी प्रयास हुआ है। जैसे कॉलेज, डॉक्टर आदि में (ॉ) ध्वनि। अब तो पूर्ण विराम के लिए भी (.) का प्रयोग होने लगा है।

(उ) मराठी के प्रभाव के कारण पूर्व प्रचलित 'अ' अब 'अ' रुप ले चुका है। इसी प्रकार 'झ' के स्थान पर 'झ' और 'ल' वर्ण मराठी के प्रभाव से ही आते है।

अंकों की उत्पत्ति

अंकों की उत्पत्ति के बारे में कई मत प्रचलित हैं। कुछ इनकी उत्पत्ति रेखाओं में मानते हैं, क्योंकि आज भी अनपढ़ व्यक्ति गणना के लिए ए प्ए प्प्ए जैसी रेखाएँ खींच कर गणना करते हैं।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि अंकों के सूचक शब्दों के प्रथम अक्षर से अंकों का विकास हुआ है। जैसे –

एक	के	ए	से	1
द्वौ	के	द्व	से	2
त्रीणि	के	त्र	से	3
चत्वारि	के	च	से	4
पंच	के	५	से	5
षष्ठ	के	ष	से	6
सप्त	के	स	से	7
अष्ठ	के	अ	से	8
नव	के	न	से	9

प्राचीन लिपि में शून्य के लिए कोई चिह्न नहीं मिलता। पहले दस, बीस, सौ, हज़ार आदि के लिए अलग–अलग चिह्न प्रचलित थे। परन्तु नवीन देवनागरी लिपि में '0' का प्रयोग देखा जाता है। इस शून्य के प्रचार से बड़ी सरलता आ गई है। वे नवीन

अंकों के चिह्न ईसा की पाँचवीं शताब्दी से आरंभ हो गए माने जाते हैं। परन्तु शून्य का विकास बहुत बाद में हुआ था।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार देवनागरी पर्याप्त काल से भारतीय आर्य भाषाओं की लिपि रही है और आज भी हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा समस्त हिन्दी बोलियों की यही लिपि है। भारत के संविधान ने जब हिन्दी को राजभाषा घोषित किया है, तभी से देवनागरी को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है। यह लिपि संस्कृत भाषा की एकमात्र लिपि है। इस लिपि की अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. देवनागरी लिपि में स्वर और व्यंजन को अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से क्रमबद्ध किया गया है। इसमें 14 स्वर और 35 मूल व्यंजन है। साथ ही तीन संयुक्त व्यंजन – क्ष, त्र और ज्ञ – भी हैं। ड़, ढ़ जैसे कुछ और व्यंजनों का समावेश भी इस लिपि में कर लिया गया है।

2. यह लिपि अत्यंत गत्यात्मक एवं व्यावहारिक है। इसीलिए इसमें आवश्यकतानुसार अनेक ध्वनि–चिह्नों का समावेश होता रहा है। इसी प्रकार अन्य चिह्नों, जैसे ऑ, अऽ, ऍ आदि, को भी अपना लिया गया है। ऐसा करने से भारत की सभी भाषाओं को लिखने के लिए उपयोगी हो सकती है।

3. यह लिपि वर्णनात्मक है और इसके वर्णों के नाम उच्चारण के सर्वथा अनुरूप हैं। रोमन लिपि में एच (भ्), टी(ज), एस (ै) वर्ण किसी भी शब्द में आता है तो उनका उच्चारण 'ह', 'ट', 'स' होता है। लेकिन देवनागरी में ऐसी समस्या नहीं है। इसमें वर्ण अलग से हो या शब्द के साथ, एक ही उच्चाण होता है।

4. प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न होना ही लिपि की वैज्ञानिकता का परिचायक है और देवनागरी लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न हैं। उदाहरण के लिए रोमन में 'क' ध्वनि के लिए ब्ए ज्ञए फ का प्रयोग होता है, जैसे ब्ंजए ज्ञपजमए फनपजमण

5. इस लिपि में स्वरों की ह्रस्व और दीर्घ मात्राएँ विद्यमान हैं, जिससे व्यंजन के साथ उनका प्रयोग बड़ी सरलता से हो सकता है।

6. इसमें व्यंजनों का संयोग अंकित करने की पद्धति सर्वथा उपयुक्त है।

7. देवनागरी लिपि के वर्ण अत्यंत कलात्मक, सुन्दर एवं सुगठित ढ़ंग से लिखे जाते हैं और इस लिपि में लिखित शब्द अपेक्षाकृत कम स्थान घेरते हैं। जैसे देवनागरी लिपि में लिखित 'महेश्वर' रोमन लिपि में लिखित डीम्ेींूंत से कम स्थान लेता है।

8. इस लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है। लेकिन कुछ भाषाओं में ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए देखिए – रोमन में ज्ञदपमिश में ज्ञश का उच्चारण नहीं होता तथा छपहीजश में हीश का उच्चारण नहीं होता। ऐसे कई शब्द हैं।

9. देवनागरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वर्णों के उच्चारण निश्चित हैं और वे प्रत्येक स्थान पर इसी प्रकार उच्चरित किए जाते हैं। लेकिन रोमन में किसी वर्ण का अलग–अलग स्थान पर अलग–अलग उच्चारण होता है। जैसे ठनजश का उच्चारण 'बट' होता है तो च्नजश का उच्चारण 'पुट' होता है। यहाँ नश का उच्चारण पहले शब्द में 'अ' की तरह और दूसरे शब्द में 'उ' की तरह किया जाता है।

10.स्वर की ह्रस्वता और दीर्घता एक ही आकृति में थोड़ा–सा अंतर करके दिखाना देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है। जैसे ह्रस्व 'अ' और दीर्घ 'आ'।

11.देवनागरी लिपि के निर्माण में एक और विशेषता उल्लेखनीय है कि इनका निर्माण उच्चारण को ध्यान में रखकर बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। जैसे – सर्वप्रथम हम कंठ से बोलते हैं, तो यहाँ पर भी 'अ, क, ख, ग, घ, ङ' कंठ्य ध्वनियाँ हैं। इसके उपरान्त हमारे वाग्यंत्र में तालु है तो 'इ, च, छ, ज, झ, ञ' तालव्य ध्वनियाँ हैं। तदनन्तर मूर्धा आती है तो यहाँ भी 'ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण' मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इसके बाद दन्त आते हैं तो 'त, थ, द, ध, न' दन्त्य ध्वनियाँ हैं। इसके बाद ओष्ठ आते हैं तो 'उ, प, फ, ब, भ, म' ओष्ठ्य ध्वनियाँ हैं। इस तरह क्रम से वाग्यंत्र के अनुसार ध्वनि–चिह्नों का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति पर किया गया है।

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

विद्वानों का मानना है कि देवनागरी लिपि में भी कुछ

कमियाँ है, जैसे –

1. देवनागरी लिपि में चिह्नों की एकरूपता सर्वत्र नहीं दिखाई देती। जैसे 'र' के लिए 'र्क' एवं 'क्र' जैसे दो चिह्न।

2. देवनागरी लिपि में मात्राओं के प्रयोग की कोई एक व्यवस्था नहीं है। कहीं कोई मात्रा ऊपर लगती है तो कोई मात्रा नीचे लगती है, कहीं आगे लगती है तो कहीं पीछे लगती है। जैसे – ए की मात्रा ऊपर लगती है (के), 'ऊ' की मात्रा नीचे लगती है (कू), 'इ' की मात्रा आगे लगती है (कि) और 'ई' की मात्रा पीछे लगती है (की)।

3. इस लिपि में संयुक्त व्यंजनों के लिखने का ढ़ंग भी समान नहीं है। कहीं तो पहला व्यंजन आधा करके लिखा जाता है, जैसे गुप्त, अम्ब आदि, तो कहीं दूसरा व्यंजन आधा करके लिखा जाता है, जैसे भ्रम, क्रम आदि। कहीं–कहीं ऐसा संयोग होता है कि एक नया ही रूप होता है। जैसे 'क' और 'ष' के योग से 'क्ष' बनता है तो 'त' और 'र' के योग से 'त्र' तथा 'ज' और 'ञ' के योग से 'ज्ञ' बनते हैं।

4. इस लिपि के अक्षरात्मक होने के कारण इसका ध्वनिशास्त्रीय अध्ययन करना सर्वथा दुष्कर कार्य है, क्योंकि इसके शब्द पढ़कर कोई यह पता नहीं लगा सकता कि अमुक शब्द में कितनी ध्वनियाँ हैं। जैसे 'मर्म' शब्द के उच्चारण में पाँच ध्वनियाँ हैं – म्, अ, र, म, अ। लेकिन शब्द में तीन ही ध्वनियाँ लिखी गई हैं

5. इस लिपि में अखिल भारतीय लिपि बनने की भी क्षमता नहीं है, क्योंकि इसमें ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ', जो द्रविड लिपियों में पाए जाते हैं, का अभाव है तथा उनके जैसे 'ष', 'र' भी नहीं हैं।

6. इस लिपि के लिखने में शिरोरेखा भी बड़ी मुश्किलें पैदा करती है, क्योंकि यदि 'भ' के ऊपर पूरी शिरोरेखा डाली जाती है तो वह 'म' पढ़ा जाएगा। ऐसे ही 'ध' के ऊपर पूरी शिरोरेखा डाली जाती है तो वह 'घ' पढ़ा जाएगा।

7. इसके अतिरिक्त इस लिपि में दो प्रकार के अक्षर भी प्रचलित हो गए हैं। जैसे 'अ', 'झ', 'श' 'ऋ' आदि वर्ण दो प्रकार से लिखे जाते हैं।

देवनागरी लिपि में सुधार

डॉ. भोलानाथ तिवारी देवनागरी लिपि में सुधार के कुछ सुझाव इस प्रकार दिए हैं –

1. एक ध्वनि के लिए एक चिह्न होना वैज्ञानिक लिपि की महत्वपूर्ण विशेषता है। अतः एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न को लेकर बाकी का परित्याग करना चाहिए।
2. यह लिपि संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा सिन्धी भाषाओं के लिए प्रयुक्त हो रही है। अतः आवश्यक है कि इन सभी भाषाओं के ध्वनिग्रामों का निर्धारण कर, जितने अक्षर न हो, उन्हें जोड़ लेना चाहिए।
3. वैज्ञानिक लिपि में अक्षर उसी क्रम में लिखे जाने चाहिए, जिस क्रम से वे बोले जाते हैं।
4. अक्षरों में समानता के कारण भ्रम की गुंजाइश बनी रहना स्वाभाविक है। जैसे 'खाना – रवाना'। डॉ. भोलानाथ तिवारी का सुझाव है कि यह भ्रम 'ख' के नीचे के भाग को मिला देने से दूर हो सकता है। म, भ, घ, ध में भी भ्रम होता है। इससे बचने के लिए 'भ' तथा 'ध' को घुण्डीदार किया जाए।
5. वैज्ञानिक लिपि में लेखन की एकरूपता भी आवश्यक है। हिन्दी में शिरोरेखा, बिन्दी तथा अनुस्वार आदि के संबंध में एकरूपता नहीं है। इस संबंध में एक पद्धति को स्वीकार कर लेना चाहिए।

देवनागरी लिपि में सुधार का इतिहास

यह मानते हुए भी कि देवनागरी लिपि अन्य लिपियों की अपेक्षा कहीं अधिक वैज्ञानिक एवं उपयोगी है, किन्तु आज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इसमें भी सुधार होना अत्यंत आवश्यक जान पड़ा। फलतः इस दिशा में कई प्रयास हुए। देवनागरी लिपि में सुधार करने की ओर सर्वप्रथम मुम्बई राज्य के विद्वानों का ध्यान गया और महादेव गोविन्द रानाडे ने एक सुधार की योजना तैयार की। तदनन्तर महाराष्ट्र साहित्य परिषद, पुणे एक लिपि–सुधार समिति का गठन किया और मराठी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार–विमर्श कर एक प्रस्ताव भी पारित किया गया।

लोकमान्य तिलक ने 1904 ई. में अपने पत्र 'केसरी' में इस सुधार की चर्चा की और 1926 ई. तक उन्होंने टाइपों में छँटाई करते–करते 190 टाइपों का फाण्ट निर्मित कराया, जो 'तिलक टाइप' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके उपरांत महात्मा गांधी, विनोबा भावे तथा काका कालेलकर ने भी इस लिपि को सरल एवं सुगम बनाने का प्रयास किया। इसके बारे में 'हरिजन' में काका कालेलकर का एक लेख छपा, जिसमें यह सुझाव दिय गया था कि 'अ' पर मात्राएँ लगाकर सभी स्वरों की जानकारी कराई जा सकती है। साथ ही संयुक्ताक्षरों के विषय में भी उन्होंने कई प्रयोग बताये थे। इस सुधार को महात्मागांधी का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। इसी कारण यह लिपि काका कालेलकर के द्वारा राष्ट्रभाषा परिषद, वर्धा की पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं आदि में प्रचलित हुई। इतना ही नहीं, विनोबा जी ने भी अपने 'लोकनगरी' के माध्यम से इस सुधार के लिए प्रयास किए। डॉ. श्यामसुन्दर दास का प्रस्ताव था कि पंचम वर्ण को मिलाने के स्थान पर सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग होना चाहिए। जैसे 'अङ्क' के स्थान पर 'अंक', 'मञ्च' के स्थान पर 'मंच', 'दन्त' के स्थान पर 'दंत', 'पम्प' के स्थान पर 'पंप' आदि।

डॉ. गोरख प्रसाद का प्रस्ताव था कि जितनी भी मात्राएँ लगाई जाएँ, वे सभी व्यंजनों के पश्चात् दाहिनी ओर लगाई जानी चाहिए। ऐसा नहीं कि कई बायीं ओर, कहीं दायीं ओर, कहीं ऊपर तो कहीं नीचे। काशी के विद्वान श्रीनिवास का सुझाव था कि देवनागरी लिपि में से सभी महाप्राण ध्वनियाँ निकाल देनी चाहिए और उनके स्थान पर अल्पप्राण ध्वनि के नीचे कोई चिह्न लगाकर उसे महाप्राण बना लेना चाहिए। इससे लिपि के अक्षर एवं वर्ण कम हो जाएँगे और यह अधिक उपयोगी हो जाएगी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। सम्मेलन ने एक लिपि–सुधार समिति का गठन किया था (1941), जिसमें निम्नलिखित सुझाव आए –

1. अ, ऊ, ए, ऐ की मात्राओं, अनुस्वार तथा रेफ को ऊपर या नीचे न रखकर उच्चारण–क्रम से अलग रखना चाहिए।
2. ह्रस्व 'इ' की मात्रा को व्यंजन के आगे लगाया जाए, किन्तु उसे तनिक नीचे से बायीं ओर मोड़ दिया जाए और दीर्घ 'ई' की मात्रा को तनिक दायीं ओर मोड़ दिया जाए।
3. संयुक्त अक्षरों के आधे अक्षर को आधे रूप में तथा पूरे अक्षर को पूरे रूप में लिखा जाए।
4. इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ के स्थान पर 'अ' में मात्रा लगाकर लिखी जाएँ। जैसे अि, अी, अु, अू, अे, अै आदि।

इसके बाद 1947 ई. में उत्तर प्रदेश सरकार ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में एक लिपि–सुधार समिति का गठन कया। इस समिति ने पूर्ववत सभी सुझावों का अध्ययन कर निम्नलिखित सुझाव दिए:

1. 'अ' की बारहखड़ी भ्रामक है।
2. मात्राएँ यथास्थान बनी रहें, किन्तु उन्हें थोड़ा दाहिनी ओर हटाकर रखा जाए।
3. अनुस्वार पंचम वर्ण की जगह सर्वत्र शून्य (0) का प्रयोग किया जाए।
4. द्विविध अक्षरों में से अ, झ, ध, भ, त्र, क्ष, श्र, द्य को रखा जाए।
5. पाई वाले व्यंजनों को छोड़कर संयोग में हलन्त चिह्न लगाया जाए।
6. 'ल' को वर्णमाला में स्थान दिया जाए।

1953 में उत्तरप्रदेश सरकार ने अन्य प्रदेशों की सरकार के प्रतिनिधियों और विद्वानों को एक गोष्ठी में उन सुझावों को तनिक संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त इस गोष्ठी में ह्रस्व 'इ' की मात्रा को तनिक छोटे रूप में लिखने की तथा 'ख' को मिलाकर लिखने का निर्णय लिया गया।

1953 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक परिषद की बैठक लखनऊ में हुई, जिसमें अनेक प्रांतों के मुख्यमंत्री तथा शिक्षा मंत्री, अनेक भाषाशास्त्री आदि एकत्र हुए और उन्होंने लिपि–सुधार संबंधी अनेक सुझाव दिए, जो निम्नलिखित हैं –

1. ह्रस्व 'इ' की मात्रा (ि) और ख, ध, भ, छ के स्थान पर छोटी–सी बड़ी 'ई' मात्रा (ी) तथा मिला हुआ ख, ध, भ, छ अपनाया जाए।
2. संयुक्त वर्णों के स्वतंत्र चिह्नों (क्ष,त्र, श्र) आदि को छोड़कर शेष वर्णों को मिलाकर ही लिखा जाए। जैसे क्र, क्ष,त्र,श्र आदि।

इस प्रकार देवनागरी लिपि के सुधार के लिए पर्याप्त प्रयास किए गए, लेकिन इसके प्राचीन रूप का प्रयोग प्रचलित बना रहा। इतना ही अवश्य है कि 'अ' का प्रयोग प्रचलित हो गया। साथ ही कुछ चिह्न भी जुडे। जैस डॉक्टर, कॉलेज आदि में।

रोमन लिपि के साथ देवनागरी लिपि की तुलना

भारत में अंग्रेज़ों के आगमन और उनके प्रसार के बाद रोमन लिपि ने भारत में अपने पैर फैलाए। यहाँ के निवासियों ने उसके प्रति विशेष लगाव दिखाया और उसे अंतर्राष्ट्रीय महत्व की बताते हुए उसे स्वीकार ही नहीं किया, अपितु उसके प्रचार–प्रसार में योगदान भी दिया, जिसका प्रभाव भाषाशास्त्रियों पर भी पड़ा और डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वान इसको देवनागरी के स्थान पर अपनाने की वकालत करने लगे।

1. रोमन लिपि वर्णनात्मक है और इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग–अलग चिह्न है। इसके विपरीत देवनागरी लिपि अक्षरात्मक है और इसकी व्यंजन ध्वनियों के दो ध्वनियों का योग होता है। परिणामतः देवनागरी लिपि में ध्वनि–शास्त्रीय अध्ययन की सुविधा नही है। जैसे यदि रोमन लिपि में 'महेन्द्र' डीमदकतं लिखें तो स्पष्ट पता चलता है कि शब्द में आठ ध्वनियाँ हैं, जबकि देवनागरी लिपि में 'महेन्द्र' में चार ध्वनियों का ही पता चलता है। वैसे इस शब्द में म् + अ + ह् + ए + न् + द् + र + अ मिलाकर आठ ध्वनियाँ हैं। किन्तु व्यंजनों में ह्रस्व ऐसा मिला रहता है कि उसका बोध सहसा साधारण व्यक्ति को नहीं होता।
2. रोमन लिपि में उच्चारण के अनुरूप लिपि चिह्न हैं और इसमें अरबी लिपि की भाँति एक वर्ण के लिए कई ध्वनियाँ हैं। देवनागरी में भी यद्यपि उच्चारण के अनुसार ही वर्ण है, फिर भी कुछ वर्ण ऐसे हैं, जिनका उच्चारण प्रायः लुप्त हो चुका है और उनके ध्वनि चिह्न अभी भी विद्यमान हैं, जैसे ङ, ञ आदि। अब प्रायः 'अङ्क' लिखने के स्थान पर 'अंक' और 'मञ्च' लिखने के स्थान पर 'मंच' लिखा जाता है।
3. रोमन लिपि में जिस ध्वनि का उच्चारण जहाँ किया जाता है, वह ध्वनि वहीं लिखी जाती है, जबकि देवनागरी लिपि में यह बात नहीं देखी जाती। जैसे – रोमन लिपि में भ्ैज्प्छ ।च्न्त लिखते हैं, तो यहाँ पर H+A+S+T+I+N+A+P+U+R शब्द के अंतर्गत सभी ध्वनियाँ वहीं अंकित हैं, जहाँ वे बोली जाती हैं। यही शब्द देवनागरी में लिखा जाए तो पता चलेगा कि 'ह+स्ति+ना+पु+र' में जो ह्रस्व 'इ', 'स' और 'त' के बाद बोली जा रही है, जबकि वह लिखा गया है 'स' और 'त' के पहले।

रोमन लिपि की भी कुछ कमियाँ हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1. रोमन लिपि में सभी प्रकार की ध्वनियों के चिह्न नहीं हैं, जबकि देवनागरी में प्रायः सभी ध्वनि–चिह्न विद्यमान हैं। जैस रोमन लिपि में दन्त्य ध्वनियाँ – त, थ, द, ध नहीं हैं, इनके स्थान पर भी ट, ठ, ड, ढ ध्वनियों का प्रयोग होता है। इस कारण रोमन लिपि में 'तोता' को 'टोटा' और 'दर' को 'डर' लिखा जाता है और इनके ये दोनों शब्द पढ़े जाते हैं, जिससे ध्वनि–परिवर्तन के साथ अर्थ–परिवर्तन भी होते हैं।
2. रोमन लिपि में 'ड़' और 'ढ़' ध्वनि के लिए भी कोई चिह्न नहीं है और इनके लिए R', 'RH' का प्रयोग किया जाता है। इससे यह होता है कि 'रोकड़' को त्व्झ ।त (रोकर) लिखा जाता है तथा 'बाढ़मेर' को 'BARHMER' लिखा जाता है, जिसे 'बारहमेर' भी पढ़ सकते हैं। अतः 'जो कुछ लिखा जाए, वही पढ़ा जाय' वाले सिद्धांत की पूर्ति रोमन लिपि से नहीं होती।
3. रोमन लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए भी कोई स्वतंत्र चिह्न नहीं है। अतएम उसमें भ् लगाकर महाप्राण ध्वनियाँ बनाई जाती है – जैसे 'ख' के लिए 'kh', 'घ' के लिए हीशए 'छ' के लिए बीशए 'झ' के लिए रीश आदि। लेकिन 'ह' से कोई महाप्राण ध्वनि नहीं निकलती।
4. रोमन लिपि में मात्राओं का सर्वथा अभाव है। इसके फलस्वरूप इसमें लिखे हुए शब्दों से यह जानना अत्यंत कठिन हो जाता है कि कहाँ पर ह्रस्व 'अ' और कहाँ पर दीर्घ 'आ' का प्रयोग हुआ है। 'इ' और 'उ' की स्थिति भी ऐसी है। जैसे रोमन लिपि में त।ड।

(राम)एैभ्ल।ड। (श्याम) लिखा जाता है, तो अधिकांश लोग इन्हें 'रामा', 'श्यामा' पढ़ते हैं। इसी प्रकार 'गुप्त' को 'गुप्ता', 'शुक्ल' को 'शुक्ला', 'मिश्र' को 'मिश्रा' कहने की जो प्रथा चल निकली है – उसका मूल कारण रोमन लिपि ही है, क्योंकि रोमन लिपि में ळन्च्ज।एैभ्न्झस।ए डैभ्त।ए लिखते हैं और 'आ' का उच्चारण होता है, जबकि हिन्दी में यह ह्रस्व 'अ' है। अतः यह उच्चारण के सर्वथा अनुकूल लिपि–चिह्नों वाली लिपि नहीं है।

5. रोमन लिपि में लिखे हुए शब्दों को अलग–अलग पढ़ा और बोला जाता है, क्योंकि उसमें ध्वनि–चिह्नों का अभाव है। जैसे हरियाणा लिखा है तो इसे 'हरियान', हरीयान, हरियाना आदि पढ़ा जाता है, लेकिन 'हरियाणा' कदापि नहीं पढ़ा जा सकता, क्योंकि रोमन लिपि में 'ण' के लिए कोई ध्वनि–चिह्न नहीं है। इसके लिए 'न' ;छद्ध से काम लिया जाता है।
6. रोमन लिपि की अपूर्णता के कारण बहुत–से भारतीय नगरों के नामों का उच्चारण अशुद्ध होता रहा है। जैसे – 'दिल्ली' को 'डलही', 'कलकत्ता' को 'कैलकटा', 'लखनऊ' को 'लकनाऊ', 'देहरादून' को 'डेराडून' आदि बोला जाता है।

डॉ. सक्सेना के अनुसार भले ही रोमन लिपि वर्णनात्मक होने के कारण अधिक वैज्ञानिक मानी जाती है, किन्तु उसमें भारतीय शब्दों को शुद्ध रूप में लिखने की क्षमता नहीं है। उसमें ध्वनि–चिह्नों का अभाव है। लेकिन देवनागरी लिपि में यह सामर्थ्य है कि वह केवल भारतीय भाषाओं के शब्दों को ही नहीं, अपितु विदेशी ध्वनियों को भी अंकित करने में पर्याप्त समर्थ है। इसके लिपि चिह्नों की बहुलता से कई विद्वान चौंक उठते हैं और इसे जटिल एवं कठिन बताते हैं। लेकिन लिपि–चिह्नों की बहुलता ही इसे सर्वथा उपयोगी एवं वैज्ञानिक बना रही है, जिससे सभी प्रकार के उच्चारणों को सुगमता से अंकित कर सकती है। अतएव रोमन लिपि से देवनागरी लिपि की तुलना करने पर डॉ. सक्सेना का मत है कि रोमन लिपि की अपेक्षा देवनागरी लिपि कहीं उत्तम एवं उपयोगी है। इस लिपि की वर्णमाला भले ही कुछ बड़ी है, किन्तु यह लिपि सभी प्रकार के ध्वनि–चिह्नों से परिपूर्ण है। विश्व की सभी लिपियाँ अपूर्ण हैं, जबकि देवनागरी लिपि पर्याप्त पूर्ण है। इसके साथ ही संसार की किसी भी लिपि में इतनी सरलता से किसी भी भाषा को रूपांतरित नहीं किया जा सकता, जितनी सुगमता से देवनागरी लिपि में किया जा सकता है।

निष्कर्ष –

देवनागरी लिपि पर्याप्त काल से भारतीय आर्यभाषाओं की लिपि रही है, और आज भी हिन्दी, मराठी, नेपाली, तथा समस्त हिन्दी बोलियों की यही लिपि है। भारत के संविधान ने जब हिन्दी को राजभाषा घोषित किया है, तभी से देवनागरी को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। यह लिपि संस्कृत भाषा की भी एकमात्र लिपि है। देवनागरी लिपि को एकरुपता प्रदान करने एवं उसमें कुछ कमियों को दूर करने के लिए मानकीकरण किया गया है। लिपि सुधार के लिए कुछ सुझाव भी भाषाशास्त्रियों के द्वारा समय–समय पर प्रदान किए गए हैं। रोमन लिपि की अपेक्षा देवनागरी लिपि कहीं उत्तम एवं उपयोगी है। इस लिपि की वर्णमाला भले ही कुछ बड़ी है, किन्तु यह लिपि सभी प्रकार के ध्वनि–चिन्हों से परिपूर्ण है। रोमन लिपि की अपेक्षा देवनागरी लिपि कहीं उत्तम एवं उपयोगी है। देवनागरी लिपि की वर्णमाला भले ही कुछ बड़ी है, किन्तु यह लिपि सभी प्रकार के ध्वनि–चिन्हों से परिपूर्ण है।

किसान का दर्द

दिन-रात जो मेहनत करें, देश के लिए बलिदान करें,
वह कौन हैं? वह किसान हैं.

जिस कपड़े से बेटी झूलती थी, उसी कपड़े से झूलता रह गया.
क्या होगा उस बेटी का, जिसका सब-कुछ छीन गया.

न मिला सम्मान, न मिला अधिकार,
यह कैसा भारत हैं, मुझे हैं तकरार.

दुनिया में एक-मात्र हैं, भारत देश कृषि-प्रधान,
तो फिर किसानों को, क्यों नहीं मिला मान-सम्मान?

बदलने की आवश्यकता हैं, किसानों को हक़ दिलाना हैं,
सोयाबीन की खेती कर, उन्हें ऊँचाई पर पहुचना हैं.

आओ मिलकर बदलाव लाये, किसानों को हक़ दिलाये,
सुख-समृद्धि, शांति से, उनके घर खुशहाली लाये.

अरिया दुपारे, इंदौर

कर्मयोगी मिशन का महत्व: कृषि क्षेत्र में एक नई दिशा

डॉ.संगीता श्रीवास्तव एवं डॉ.प्रियंका श्रीवास्तव
मानव संसाधन विकास प्रकोष्ठ
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
संवादी लेखक का ई-मेल : sangeeta.pme.isri@gmail.com

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या का संबंध सीधे कृषि से है। कृषि न केवल हमारे देश की आर्थिक धारा को जीवित रखती है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक धारा से भी जुड़ी हुई है। भारत में कृषि के क्षेत्र में निरंतर सुधार और विकास की आवश्यकता है ताकि किसान बेहतर तकनीक का इस्तेमाल कर सकें और अपनी उपज को अधिकतम लाभकारी बना सकें। इसी दिशा में, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के तहत कर्मयोगी मिशन कृषि क्षेत्र में एक नई दिशा प्रदान करता है। तो, आइए, सबसे पहले समझते हैं कि कर्मयोगी मिशन वास्तव मेंहै क्या ? मिशन कर्मयोगी, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा भारतीय प्रशासनिक सेवा के कर्मचारियों और सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों के कौशल, नैतिकता और दक्षता में सुधार करने और नागरिक सेवा सुधारों के लिए नागरिक-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाकर सरकार-नागरिक संपर्क को बढ़ाने के लिए शुरू किया गया एक कार्यक्रम है। विशेष रूप से भारतीय कृषि प्रणाली में सुधार के लिए कर्मयोगी मिशन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इससे कर्मचारियों और किसानों के लिए बेहतर तकनीक, प्रबंधन और योजना निर्माण संभव हो रहा है।

कर्मयोगी मिशन का उद्देश्य और कृषि क्षेत्र

कर्मयोगी मिशन का उद्देश्य भारत में सरकारी कर्मचारियों की कार्यकुशलता में सुधार करना है। ICAR के तहत, यह मिशन कृषि से संबंधित कर्मचारियों, कृषि वैज्ञानिकों, और कृषि के क्षेत्र में काम करने वाले अधिकारियों के लिए विशेष रूप से विकसित किया गया है। इसका उद्देश्य उन्हें उच्च स्तर की विशेषज्ञता, प्रबंधन कौशल और नैतिकता के साथ कृषि क्षेत्र में बेहतर सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित करना है।यह मिशन न केवल कृषि के क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकारियों, सरकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण पर ध्यान केंद्रित करता है, बल्कि इसका एक बड़ा उद्देश्य किसानों को कौशल और तकनीकी ज्ञान से अवगतकराना हैऔर कृषि क्षेत्र में सुधार और नवाचार को बढ़ावा देना भी है।

कृषि में कर्मयोगी मिशन का महत्व

1. कृषि कर्मचारियों का कौशल विकास:

कर्मयोगी मिशन का प्रमुख उद्देश्य सरकारी कर्मचारियों के कौशल और कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। कृषि क्षेत्र के कर्मचारियों को बेहतर प्रशिक्षण देने के लिए यह मिशन एक व्यापक कार्यक्रम पेश करता है। इससे कृषि अधिकारियों को उन्नत खेती तकनीकों, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, सटीक कृषि, उर्वरक प्रबंधन और अन्य संबंधित विषयों पर विशेष प्रशिक्षण मिलता है। इसके परिणामस्वरूप कृषि अधिकारियों की कार्यकुशलता में सुधार होता है, जो किसानों को बेहतर मार्गदर्शन और सेवाएं प्रदान करने में सहायक होता है।

2. कृषि वैज्ञानिकों के लिए नवाचार और अनुसंधान का बढ़ावा:

कर्मयोगी मिशन का एक महत्वपूर्ण पहलू है कृषि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नवाचार और सुधार। कर्मयोगी मिशन कृषि वैज्ञानिकों को न केवल नई तकनीकी जानकारी और वैज्ञानिक तरीकों से अवगत कराता है, बल्कि उन्हें अनुसंधान और नवाचार के माध्यम से कृषि क्षेत्र में सुधार करने की प्रेरणा भी देता है। इसमें कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक कौशल, तकनीकी जानकारी और समग्र कृषि प्रबंधन के सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।इसके परिणामस्वरूप नए कृषि उत्पाद, उन्नत बीज, और सटीक खेती, उर्वरक का सही उपयोगऔर जल प्रबंधन के बेहतर तरीके किसानों तक पहुंचते हैं, जो उनके उत्पादन को बढ़ाते हैं और उन्हें अधिक लाभ प्रदान करते हैं।

3. प्रौद्योगिकी का उपयोग और सटीक कृषि:

कर्मयोगी मिशन में तकनीकी प्रशिक्षण और डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग प्रमुख है। कृषि कर्मयोगियों को डिजिटल उपकरणों का इस्तेमाल सिखाया जाता है, जिससे वे सटीक कृषि और स्मार्ट फार्मिंग जैसी तकनीकों को प्रभावी तरीके से लागू कर सकते हैं। इससे खेती में लागत कम होती है, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन में सहायता मिलती है और किसानों की आय में वृद्धि होती है।

4. कृषि कार्यों का उचित प्रबंधन:

कर्मयोगी मिशन के अंतर्गत, कृषि कर्मयोगियों को बेहतर समय प्रबंधन और कृषि कार्यों के संचालन में दक्षता हासिल करने के लिए

प्रशिक्षित किया जाता है। यह प्रबंधन कौशल कृषि कार्यों को अधिक व्यवस्थित और पारदर्शी बनाने में मदद करता है। इससे किसानों को अपनी खेती में अनावश्यक देरी और समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता, और उत्पादन में वृद्धि होती है।

5. किसान-केन्द्रित दृष्टिकोण:

कर्मयोगी मिशन का प्रमुख उद्देश्य किसानों को उनकी कठिनाइयों को कम करने के लिए सही मार्गदर्शन और संसाधन प्रदान करना है। कृषि कर्मयोगी मिशन का उद्देश्य किसानों को न केवल नई तकनीक के बारे में बताना है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि किसान उस तकनीक को अपनी खेती में अपनाएं और उसे आर्थिक दृष्टिकोण से लाभकारी बनाएं।

6. समय प्रबंधन और कार्यकुशलता:

कर्मयोगी मिशन के तहत कृषि कर्मयोगियों को समय प्रबंधन और कार्यकुशलता का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। यह प्रशिक्षण कृषि कार्यों में दक्षता बढ़ाने में मदद करता है, जिससे खेती में समय की बचत होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

7. नैतिकता और ईमानदारी:

कर्मयोगी मिशन का एक प्रमुख पहलू यह है कि कृषि कर्मयोगियों में नैतिकता और ईमानदारी का समावेश किया जाए। यह कृषि कर्मयोगियोंको नैतिकता और ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। जब कृषि कर्मयोगियों के बीच पारदर्शिता और ईमानदारी होती है, तो यह किसानों के विश्वास को बढ़ाता है और सरकार की योजनाओं का सही तरीके से कार्यान्वयन सुनिश्चित करता है।यह किसानों के साथ बेहतर संबंध बनाने और कृषि कार्यों को पारदर्शिता और निष्ठा के साथ करने में मदद करता है। इससे कृषि क्षेत्र में भ्रष्टाचार की संभावना कम होती है और सरकारी योजनाओं का लाभ किसानों तक सही तरीके से पहुँचता है।

8. कृषि क्षेत्र में सामाजिक और आर्थिक बदलाव:

कर्मयोगी मिशन के तहत कृषि कर्मयोगियों को किसानों के बीच जाकर उनकी समस्याओं को समझने और समाधान देने के लिए प्रेरित किया जाता है। इससे न केवल कृषि कार्य में सुधार होता है, बल्कि यह समाज में भी सकारात्मक बदलाव लाता है। किसानों को नई तकनीकें, सरकार की योजनाओं का लाभ, और बेहतर मार्गदर्शन मिलता है, जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

निष्कर्ष

कर्मयोगी मिशन कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार लाने की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है। यह मिशन न केवल कृषि कर्मचारियों के लिए बेहतर प्रशिक्षण, तकनीकी जानकारी और प्रबंधन कौशल विकास प्रदान करता है, बल्कि यह किसानों को नई तकनीकों से अवगत कराकर उनकी उत्पादकता और आय में वृद्धि करता है, जिससे पूरे कृषि क्षेत्र में सुधार होता है । इससे न केवल कृषि कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है, बल्कि यह किसानों को नई तकनीकों, बेहतर योजनाओं और उचित मार्गदर्शन के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त करने में मदद करता है। कर्मयोगी मिशन के माध्यम से, हम कृषि क्षेत्र में बेहतर कार्यकुशलता, नैतिकता, और आधुनिकता ला सकते हैं, जिससे भारतीय कृषि और किसानों का भविष्य उज्जवल बनेगा।यदि इस मिशन के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में सुधार को सही दिशा में लागू किया जाए, तो भारतीय कृषि क्षेत्र की समृद्धि और किसानों की स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव आ सकता है।

निर्भया की शक्ति और निर्भया की प्रतिक्षा

इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों की कर्मस्थली
घनघोर खाण्डव का वह दौर
तिरस्कार की नींव पर
जिस धरा पर बना इन्द्रप्रस्थ
कुरुओं के इस वंश से
वैभव के इस स्थल पर
होता था धर्मार्थ प्रकाश
युधिष्ठिर के धर्म ध्यान में
नारी का सम्मान अपमान
परीक्षित के समय काल में
कलयुग के आगमन का आगाज
समय की धुरी पर घुमकर
इन्द्रप्रस्थ का नाम बदलकर
दिल्ली का नाम पहनकर
मुगलों के शासनकाल में
लाल किले का लाल सलाम
भारत भूमि की धरा पर
जब हुआ फिरंगियों का प्रवेश
बनाकर सत्ता का केन्द्र धरा पर
इसकी धुरी पर घुमता राष्ट्र
इस दिल्ली के सफल काल में
बनते रहे कई प्रधान
जिनकी निष्ठुरता ने इस दिल्ली को
दिया असंवेदनाओ का प्रकाश
आज की दिल्ली के इस रुप में
खौफ और भय के इस मंजर में
सत्ता के चश्मों से देखा
जाता है आम इंसान
वह एक रात भी दिल्ली की
चकाचौंध की इस दिल्ली की
इंसानो के बीच में
नर पिसाचों के बीच में
भीड़भाड़ की अंधगलियों में
दरिंदगी की इस हवा में
एक झोंका था एक आंधी थी
दरिंदों के इस झोंके में
दिल्ली के इस जंगल में
इंसानों से पशु चले थे
न जाने वे कहां चले थे
कानून के रखवालों से क्या
इनके हाथ मिले थे
इस इंसानी जंगल में
वे भी तो इनके साथ चले थे
न तो अंधेरा था
न कोई सन्नाटा सा था
सारी रात का अनुशासन सा था
दिल्ली के ये रखवाले
प्रजातंत्र के ये रखवाले
कहां गये थे कहां गये थे
इसी घड़ी मे इसी समय मे
दो सहयात्री निकल पड़े थे
घर जाने की सोंच रहे थे
मन मे सपने संजो रहे थे
निकल पड़े थे गंतव्य पथ पर
अपने घर के अपने पथ पर
दिल्ली राजधानी में
सपनों को साकार करने
जीवनपथ को आसान करने
मां बाप और भाई बहन के
सपनो को साकार करने
जब वे अपने गांव से चले थे
मां रोई थी बहन रोई थी
भाई रोया था पिता रोया था
कोई न घर में सोया था
सुबह होती थी शाम होती थी
बहन बेटी की याद रोती थी
सुबह शाम खाने की टेबल पर
बहन की याद में

बेटी की याद में
एक रोटी तो बची रहती थी
और आंखों में एक झलकता
निर्भया की बनी रहती थी
थोड़ा थोड़ा बहन का हिस्सा
भाई बचाकर तारे रखता था
मॉ की ममता के तारो से
बेटी का संबल बना रहता था
घर का आंगन तो सुना था
मॉ का ऑचल भी भीगा था
बेटी की राह देखते देखते
मॉ बाप का दिन जो कटता
और इंतजार की घड़ी में
समय न कटता समय न कटता
दिल्ली शहर पर था भरोसा
हम स्वतंत्र हैं इस दिल्ली में
इस दिल्ली की सड़कों पर
क्या जाने ऐसा भी होगा
जैसा होना मुमकिन नही था
उस बेटी को यकीन नहीं था
अपने भविष्य के सपने संजोकर
हम आये हैं इस दिल्ली में
क्या दिल्ली इतनी सस्ती है
यहां क्या इतनी मस्ती है
पशुओं से भी ज्यादा नासमझी है
जंगलों के अनुशासन से भी बदतर
यहां की सड़कों का आलम है
भारी भीड़ और चलती सड़कें
क्यों मर घट सी हो जाती है
और न जाने इस भीड़ में
कौन नर पिसाच बन जाते है
सिवर लाईन के कीड़े भी
अपने अनुशासन में रहते हैं
और गंदगी के आलम में
अपनी दुनिया बनाते हैं
और सुरक्षित रहकर मानव से
अपना जीवन बिताते हैं
ऐसे सोचों इन कीड़ों जैसे
मानवरुपी नर पिसाच नही रह पाते हैं
नही छोड़ते तुम बहन बेटी को
अपने खराब कर्मों से
इस दिल्ली की सड़कों पर
एक रात वो बस चली थी
ऐसे नर पिसाचों के हाथों में
चारों ओर से बंद रखी थी
कई चौराहों को छोड़ चुकी थी
वह ऐसी कोन घड़ी थी
सारी दिल्ली देख रही थी
वह सड़कों पर दौड़ रही थी
न जाने वह किस ओर चली थी
दरिंदों ने क्या सोच रखी थी
असहाय सी असुरक्षित सी
यह प्रलय का
और विध्वंस का
जैसे मानों समय बना था
जनमानस के अर्न्तद्वंद का
इस रात में अलाव जगा था
देखो देखो इस दिल्ली में
नर पिसाच बन आए हैं
इस समय के कुचक्रमें
कौन कौन फंस सकता है
यह भान नही है जनमानस को
क्या तमाशा है इन राहों पर
जहां दरिंदों का साया है
कौन घिरेगा इस भंवर में
क्या कुछ होने वाला है
रात्रि का यह पहर भी
अनजान रहने वाला है
क्या होगा निर्भया बेटी पर
कौन जान पाता है

श्याम किशोर वर्मा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
भा.कृ.अनु.प. राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान इंदौर

शिक्षा का महत्त्व

आओ पढ़े, आओ लिखे. भारत को हम ऊँचा करें.
अज्ञान को मिटाके हम, इस जीवन को सफल करें.

गांधीजी का सपना था, नेहरु को भी अपना था.
घर घर में खुशहाली हों, पूरा इसे हम करें.

शिक्षा, संघर्ष और एकता, आंबेडकर का नारा था.
सबको शिक्षा सबको ज्ञान, फूले को भी प्यारा था.
बच्चे माता और पिता को, शिक्षा से बढ़ाना हैं. इस भारत को साक्षर करें.

व्यर्थ हैं दंगे, व्यर्थ हैं झगडे, मानवता के खिलाफ हैं,
हिन्दू मुस्लिम सिख इसाई, सबके सब इंसान हैं,
पानी, धरती, नदियाँ, खेती, सबके साथ समान हैं
इस ज्ञान को आगे करें.

डॉ बुद्धेश्वर यु. दुपारे, प्रधान वैज्ञानिक
(कृषि विस्तार)
ईमेल : soyext@gmail.com

इंदौर एक समृद्ध शहर

प्राचीन समय में
इंदौर एक समृद्ध शहर
हुआ करता था
30 सिनेमाघर थे...
7 कपड़ा मिल थी....
अम्बानी से बड़े हुकुमचंद सेठ थे,
सब तरफ हरियाली थी
नवलखा में नों लाख पेड़ थे...
पलासिया नाम के गांव में पलास के पेड़ थे
हवा बंगला में बेहतरीन हवा चलती थी...
कान्ह नदी में कल - कल
पानी बहता था...
बड़े - बड़े तालाब थे,
सब तरफ डामर की सड़कें थी,
जाम ना के बराबर था...
अपनापन इतना की लोग दिवाली पर मिलने घर - घर जाते थे...
नेताओ में अपने दम पर कुछ करने का दम था,
सब मिलकर नर्मदा ले आये थे...
आबो हवा इतनी अच्छी थी
की लोग इंदौर को शबे मालवा कहते थे...
उत्सव प्रिय शहर था,
अनंत चतुर्दशी की झांकी सबसे बड़ा उत्सव था...
फिर कुछ विकास पुरुष आये
उनको शहर का विकास करने की चूल मची...
भोली जनता ने भी उनको सर माथे बैठाया,
नेताओ, अधिकारियों ने
जनता की सोच से कही आगे की सोचते हुए

डॉ. दिलीप कुमार वर्मा एवं रविन्द्र पंवार
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षे.के. इन्दौर - 452001 (म.प्र.)
ईमेल : mailmedilipverma@gmail.com

पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखको के लिए दिशा निर्देश

भा. कृ. अनु.प. राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर राजभाषा हिन्दी में अर्धवार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है, जिसमें सभी रचनाएँ जैसे आलेख, कविताएँ इत्यादि प्रकाशित की जाती है।

1. पत्रिका के प्रकाशन के लिए लेखकगण कृषि संबंधित आर्थिक, सामाजिक विषयो पर आलेख भेज सकते है।
2. आलेख के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देश है-
   - क. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यवस्थित करें शीर्षक, लेखकों के नाम व पता, संवादी लेखक ईमेल, परिचय, परिचर्चा, निष्कर्ष, आभार (यदि आवश्यक हो तो) एवं संदर्भ।
   - ख. परिचय परिचय में लगभग 250-300 शब्द होने चाहिए तथा इसमें विषय की सामान्य जानकारी के साथ इसके महत्व तथा उपयोग के बारे में लिखे।
   - ग. परिचर्चा इस भाग में लगभग 1500-2000 शब्द होने चाहिए, जिसमें सारणी, ग्राफ आदि सम्मिलित हो।
   - घ. निष्कर्ष- इस भाग में लगभग 100-150 शब्द होने चाहिए, साथ ही विषय-वस्तु का भावी परिपेक्ष्य भी सम्मिलित हो।
   - ङ. संदर्भ इस सूची में किसी भी संदर्भ का अनुवाद करके न लिखे अर्थात् संदर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दे। यदि संदर्भ हिन्दी व अंग्रेजी दोनो भाषाओ के हो तो पहले हिन्दी वाले संदर्भ लिखे तथा इन्हे हिन्दी वर्णमाला के अनुसार तथा बाद में अंग्रेजी वाले संदर्भ अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सूचीबध्द करें।
   - च. सारणी तथा चित्रो को उनके शीर्षक के साथ आलेख में क्रमांकित करके यथास्थान पर सम्मिलित करें।
3. पत्रिका के प्रकाशन के लिए लघु नोट, कविताएं तथा कहानियाँ भी भेज सकते है। बशर्ते ये रचनाएँ स्वयं द्वारा रचित होनी चाहिए।
4. रचनाएं यूनिकोड फॉन्ट में टाईप करके भेजे, ताकि वो आसानी से किसी भी कम्प्यूटर में पढ़ी जा सके व सम्पादित की जा सके।
5. संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादकगण के पास सुरक्षित है।
6. प्रकाशन के लिए भेजी गई रचनाओ पर अंतिम निर्णय प्रकाशक यानी निदेशक, भा. कृ. अनु.प. राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर का रहेगा।
7. आलेखो में चित्र, ग्राफ, तथ्यो की सत्यता या नकल / असल एवं कहानियों और कविताओं आदि रचनाओं के लिए लेखक जिम्मेदार होंगे।
8. लेखकगण अपनी रचनाएँ soyvritika@gmail.com या punam 124@rediffmail.com पर ईमेल द्वारा भेज सकते है।
9. पत्र व्यवहार के लिए पताः निदेशक, भा.कृ.अनु.प. राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर रहेगा।

राजभाषा पत्रिका

सोयवृत्तिका

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान
खंडवा रोड़, इन्दौर – 452001

ICAR - NATIONAL SOYBEAN RESEARCH INSTITUTE
KHANDWA ROAD, INDORE - 452001

Phone : 0731-2476188
Email ID : dsrdirector@gmail.com
Website : icar-nsri.res.in

JOIN NOW

NSRI Soy Farmers

ICAR - National Soybean Research Institute

@icarnsri

ISBN
978-93-5779-772-6